Microtek Group Of Institutions

Subject Name : **Company Law & auditing**

Syllabus Covered :**BCOM 2nd Year**

(Purvanchal University)

विषय सूची

अध्याय 1	कम्पनी का परिचय	5
अध्याय 2	कम्पनी का प्रवर्त्तन तथा निर्माण	23
अध्याय 3	पार्षद् अन्तर्नियम	31
अध्याय 4	पार्षद् सीमानियम	41
अध्याय 5	प्रविवरण	53
अध्याय 6	ऋण लेने का अधिकार, ऋण–पत्र एवं प्रभार	64
अध्याय 7	प्रबन्ध एवं प्रशासन	76
अध्याय 8	कम्पनी सभाएँ एवं प्रस्ताव	95
अध्याय 9	अंकेक्षण का परिचय	108
अध्याय 10	कम्पनी अंकेक्षक	118
अध्याय 11	अनुसन्धान	128
अध्याय 12	अंकेक्षण रिपोर्ट एवं आन्तरिक अंकेक्षण	135
अध्याय 13	आंतरिक निरीक्षण प्रणाली	148
अध्याय 14	प्रमाणन, सम्पत्तियों तथा दायित्वों का सत्यापन	157
अध्याय 15	कम्पनी अंकेक्षण	181

अध्याय-1
कम्पनी का परिचय
(Introduction of Company)

गत दो शताब्दियों से विश्व के उत्पादन में बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, अर्थात एक ओर तो औद्योगिक क्रांति हुई तथा दूसरी ओर बड़े पैमाने पर उत्पादन प्रणाली का उद्‌गम। इस प्रकार विश्व का आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक कलेवर ही परिवर्तित हो गया। बाजार का क्षेत्र राष्ट्रीय से अन्तराष्ट्रीय हो गया। अतः विश्व की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए अधिक मात्रा में वस्तुओं के उत्पादन की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी जिसके लिए बड़े पैमाने पर पूँजी की व्यवस्था करना आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य–सा प्रतीत होने लगा। अतः बड़े व्यापार के संचालन के लिए जितनी मात्रा में पूँजी आवश्यक थी, उसे पूरा करना एकाकी व्यापार या साक्षेदारी के लिए सम्भव नहीं था। इसके फलस्वरूप संयुक्त पूँजी कम्पनी की उद्‌गम हुआ

जिस प्रकार एकाकी व्यवसाय, की कमियों को दूर करने लिए साक्षेदारी संगठन का प्रारूप हमारे सामने आया, उसी प्रकार साक्षेदारी संगठन के दोषों व दुर्बलताओं ने व्यावसायिक संगठन के एक नए प्रारूप को जन्म दिया जिसे कम्पनी कहते है। कम्पनियों का प्रादुर्भाव कब हुआ? इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु ऐसा अनुमान है कि कम्पनी का प्रादुर्भाव सबसे पहले इटली में 12 वीं शताब्दी में हुआ। भारत में कम्पनी संगठन का प्रारम्भ अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् और कम्पनी अधिनियम 1850 पारित होने के बाद हुआ।

कम्पनी का अर्थ

(Meaning of Company)

अर्थ **(Meaning):-** अंग्रेजी शब्द 'Company' की उत्पति लेटिन शब्द 'Companis' से हुई है। Companis वास्तव में दो शब्दों 'कम' (Com) तथा 'पेनिस' (Panis) से मिलकर बना है। कम का अर्थ है साथ–साथ और पेनिस (Panis) का अर्थ 'रोटी' से है। प्रारम्भ में कम्पनी का आशय ऐसे व्यक्तियों के समूह से था जो अपना खाना 'साथ–साथ खाते थे। एल्फ्रेड पामर (Alfred Palmer) के अनुसार "प्राचीन समय में व्यापारी वर्ग के लोग सार्वजनिक भोजनादि के समय पर अपनी व्यावसायिक समस्याओं के बारे में विचार–विमर्श करना उचित समझते थे।" धीरे–धीरे ऐसे व्यापारी अपना संघ से होता है जिसमें संयुक्त पूँजी लगी हो।

सामान्य अर्थ में कम्पनी लाभ के लिए बनाई गई कुछ व्यक्तियों की ऐच्छिक संस्था है जिसकी पूँजी हस्तांतरणशील सीमित दायित्व वाले अंशों में विभाजित होती है तथा जिसका रजिस्ट्रेशन अर्थात् समामेलन (Incorporation) एक कत्रिम व्यक्ति के रूप में कम्पनी अधिनियम के अधीन होता है।

कम्पनी की परिभाषा

(Definition of Company)

कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 3(1)(i) एंव (ii) के अनुसार, "कम्पनी का तात्पर्य इस अधिनियम के अधीन निर्मित तथा पंजीकत कम्पनी या विद्यमान कम्पनी से है। 'विद्यमान कम्पनी' का आशय किसी ऐसी कम्पनी से है जिसका निर्माण तथा पंजीकरण पिछले कम्पनी अधिनियमों में से किसी एक के अधीन किया गया हो।"

अध्याय-2
कम्पनी का प्रवर्त्तन तथा निर्माण
(Promotion and Formation of a Company)

कम्पनी, विधान द्वारा निर्मित एक कत्रिम व्यक्ति है अतः इसका निर्माण स्वतः तथा आकस्मिक नहीं है। इसके निर्माण के लिए एक लम्बा क्रम पूरा करना पड़ता है। निर्माण एक प्रक्रिया है और इसे विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। आरम्भ से लेकर उस समय तक जबकि कम्पनी अपना व्यापार प्रारम्भ करती है, जितनी कार्यवाहियाँ की जाती हैं, उन्हें चार भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) कम्पनी का प्रवर्तन (Promotion of Company)

(2) कम्पनी का समामेलन या रजिस्ट्रेशन (Incorporation or Registration of Company)

(3) पूँजी अभिदान (Capital Subscription)

(4) व्यापार प्रारम्भ (Commencement of Business)

एक निजी कम्पनी समामेलन का प्रमाण–प्रत्र प्राप्त होने के तुरंत बाद अपना व्यापार आरम्भ कर सकती है जबकि एक सार्वजनिक कम्पनी को जनता से पूँजी एकत्रित करनी पड़ती है और व्यापार आरम्भ करने से पूर्व व्यापार व्यापार आरम्भ करने का प्रमाण–पत्र प्राप्त करना पड़ता है।

कम्पनी का प्रवर्त्तन
(Promotion of Company)

अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition):- कम्पनी निर्माण में प्रवर्त्तन पहली सीढ़ी है जिसके आधार पर कम्पनी के निर्माण हेतु आवश्यक कार्यवाही की जाती है। प्रवर्त्तन का अर्थ प्रारम्भ से है। कम्पनी का निर्माण प्रारम्भ करने से पूर्व कुछ लोग मिलकर किसी व्यवसाय को शुरू करने की कल्पना करते हैं अर्थात उन लोगों के मन में व्यवसायिक अवसर के बारे में विचार आता है उस पर वे गहन अध्ययन व जाँच–पड़ताल करते हैं तथा व्यवसाय की शुरूआत की योजना बनाते हैं तथा इन प्रश्नों पर विचार करते हैं कि किये जाने वाले व्यवसाय का क्षेत्र क्या होगा, इसकी पूँजी किस प्रकार प्राप्त होगी, इसके लिए साम्रगी, श्रम, मशीनें आदि कहाँ से प्राप्त होंगी, इसकी स्थापना के लिए क्या–क्या वैधानिक कार्यवाहियाँ करनी होंगी। इस कम्पनी की स्थापना अथवा निर्माण करने में अथवा उसे वैधनिक अस्तित्व (legal existence) प्रदान करने में जो लोग सहायता करते हैं उन्हें हम प्रवर्त्तक (promoter) कहते हैं और सम्बन्ध में उन्हों जो भी क्रियाएं करनी पड़ती हैं उन सभी क्रियाओं को ही प्रवर्तन (promotion) कहते हैं।

प्रवर्त्तक
(Promoter)

जो व्यक्ति कम्पनी की स्थापना करने का विचार अपने मस्तिष्क में लाता में लाता है और अपने विचारों को साकार रूप देने के लिए विभिन्न प्रकार के कार्य करता है उसे प्रवर्त्तक कहते हैं। वह इसके लिए कानूनी सलाहकारों, बैंकरों, दलालों और विशेषज्ञों से परामर्श लेता है और सभी प्रकार की बातें निश्चित करता है।

प्रवर्त्तक, देश के औद्योकिग उत्थान के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण सेवा करते हैं। इन्होंने पश्चिमी यूरोप और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के औद्योगिक उत्थान में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

इंग्लैण्ड ने इनको 'Creater of Wealth' और 'Economic Prophet' का नाम दिया है। प्रवर्त्तकों, कम्पनी के निर्माण के लिए बहुत अधिक दायित्व अपने पर लेते हैं। किसी भी समय उनके द्वारा कम्पनी के निर्माण का विचार यदि सही न हो तो काफी मात्रा में धन और समय की हानी होती है।

एक व्यक्ति, फर्म, संस्था अथवा कम्पनी प्रवर्त्तक के रूप में कार्य कर सकती है। कोई व्यक्ति किसी विशेष समय प्रवर्त्तक की स्थिति में है अथवा नहीं, प्रत्येक मामले के तथ्य पर निर्भर है। प्रवर्त्तक एक ऐसा व्यक्ति है जो कम्पनी के निर्माण की योजना बनाता है एवं उसको वास्तविक रूप दे देता है। धारा **62(6)** के अन्तर्गत यह स्पष्ट कर दिया गया है कि वकील, लेखाकार, इन्जीनियर आदि विशेषज्ञ जो अपने व्यावसायिक रूप में प्रवर्त्तक की सहायता करते हैं, प्रवर्तक नहीं होते।

प्रवर्त्तकों के प्रकार

(Types of Promoter)

1. **पेशेवर प्रवर्त्तक (Professional Promoter):** पेशेवर प्रवर्त्तक वह व्यक्ति अथवा कम्पनी होते हैं जिनका मुख्य कार्य कमीशन के बदले में नई कम्पनियों की स्थापना/प्रवर्त्तन करना होता है। कम्पनी का प्रवर्त्तन करना इनका मुख्य व्यवसाय होता है।
2. **सामयिक प्रवर्त्तक (Occasional Promoter):** यह वह प्रवर्त्तक होते हैं जो अपने व्यवसाय के साथ–साथ कभी–कभी कम्पनी के प्रवर्त्तन का कार्य भी करते हैं। इनका प्रमुख व्यवसाय कम्पनियों का प्रवर्त्तन नहीं होता है।?
3. **वित्तीय प्रवर्त्तक (Financial Promoter):** यह प्रवर्त्तक प्रवर्त्तन कार्य में वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं।
4. **विशेष संस्थाएँ (Specialised Institutions):** कुछ इस प्रकार की संस्थाएँ होती हैं जो कम्पनियों के निर्माण/प्रवर्त्तन के लिए स्थापित होती हैं।

प्रवर्त्तक का पारिश्रमिक

(Remuneration of Promoter)

कम्पनी के निर्माण में बहुमूल्य सेवाएँ प्रदान करने के प्रतिफल स्वरूप प्रवर्तक का पारिश्रमिक नकद अथवा आंशिक रूप में नकद तथा शेष शेयरों एवं ऋण–पत्रों के रूप में दिया जा सकता है। परन्तु यदि कम्पनी के समामेलन के पश्चात् प्रवर्तक का इस सम्बन्ध मं कम्पनी के साथ कोई स्पष्ट संविदा नहीं, हुआ है तो उस स्थिति में प्रवर्तक अपने पारिश्रमिक तथा अन्य प्रारम्भिक खर्चो को प्राप्त करने के लिए कम्पनी पर वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता क्योंकि उसने एक ऐसे व्यक्ति के लिए कार्य किया जिसका जन्म होना बाकी था।

प्रवर्त्तक का महत्त्व

(Importance of the Promotor)

प्रवर्तक देश के आर्थिक विकास की रीढ़ की हड्डी है। देश की व्यापारिक तथा औद्योगिक प्रगति में प्रवर्तक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कम्पनियों के निर्माण के सम्बन्ध में प्रवर्तकों का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण है। प्रवर्तक के द्वारा ही कम्पनी की नींव रखी जाती है। प्रवर्तक नये उद्योग या व्यापार की स्थापना की कल्पना को अंकुरित करता है तथा उसे साकार करने का प्रयास करता है। वह कम्पनी का भविष्य का दायित्व अपने ऊपर लेकर, वास्तव में बहुत बड़ा जोखिम अपने ऊपर लेता है। बाद में यदि किसी कारण कम्पनी असफल है तो हानि का समस्त भार प्रवर्तक के कन्धों पर ही पड़ता है।

वास्तव में प्रवर्तक ही जनता के संचित एवं निष्क्रिय (saved and inoperative) धन को औद्योगिक विनियोग के लिए आकर्षित करते हैं। यह कथन बिल्कुल ठीक है कि प्रवर्तकों के बिना देश का आर्थिक तथा औद्योगिक विकास सही दिशा में नहीं हो सकेगा। वह देश जिसमं कुशल तथा अनुभवी प्रवर्तक होते हैं, औद्योगिक दष्टि से बहुत प्रगति कर लेता है। यही कारण है कि विभिन्न देशों में प्रवर्तकों को बहुत–सी सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं, जिससे ये लोग व्यावसायिक सम्भावनाओं का सही मूल्यांकन कर सकें तथा अपनी क्रियाओं को आसान बना सकें।

डॉ. हेनरी हॉगलेंड (Dr. Henry E. hoagland) ने प्रवर्तक के महत्त्व को बड़ी सुन्दर भाषा में समझाया है। उनके अनुसार, "एक सफल प्रवर्तक सम्पत्ति का निर्माता तथा आर्थिक पैगम्बर होता है। यह उस वस्तु की कल्पना करता

है जिसका अस्तित्व नहीं है। वह जनता को वस्तुएँ तथा सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिए व्यावसायिक उपक्रमों का निर्माण करता है।" ("A successful promoter is a creater of wealthe. He is an economic prophet. He is able to visualise what does not yet exist and to organise business enterprise to make the products available to the using public." -Dr. Henery E. Hoagland).

संक्षेप में, प्रवर्तकों द्वारा ही कम्पनियों को जीवन प्रदान किया जाता है। हमारे देश में प्रवर्तकों का अभाव होने के कारण ही औद्योगिक प्रगति मन्द रही है। स्वतंत्रता के पश्चात् यद्यपि सरकार ने इस क्षेत्र में बहुत कुछ किया है और कम्पनियाँ काफी प्रगति कर रही हैं, लेकिन फिर भी अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

प्रवर्त्तकों के अधिकार

(Rights of promoters)

1. **वैधानिक प्रारम्भिक व्यय प्राप्त करने का अधिकार (Right to Get Legitimate Preliminary Expenses):** कम्पनी के समामेलन के पूर्व प्रवर्तकों को विविध प्रकार के व्यय करने पड़ते हैं। ये व्यय कम्पनी के लिए उस समय किये जाते हैं जब कम्पनी का अस्तित्व नहीं होता और, परिणमस्वरूप, इनके सम्बन्ध में प्रवर्तकों तथा कम्पनी के बीच कोई अनुबन्ध नहीं होता। ऐसी दशा में, व्यावहारिक और नैतिक स्थिति यह है कि प्रवर्तकों के व्ययों का भुगतान प्रायः कम्पनी कर देती है। अन्यथा भविष्य में नई कम्पनियों की स्थापना के लिए प्रवर्तक आगे नहीं आयेंगे।
2. **सह-प्रवर्त्तकों से आनुपातिक राशि प्राप्त करने का अधिकार (Right to Get Proportionate Amount form Co&promoters):** यदि प्रविवरण में मिथ्यावर्णन के आधार पर सह–प्रवर्तकों में से किसी एक प्रवर्तक को क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है तो वह प्रवर्तकों से आनुपातिक राशि प्राप्त कर सकता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रवर्त्तकों द्वारा कमाए गए गुप्त लाभों के लिए भी प्रवर्तक व्यक्तिगत तथा संयुक्त रूप से उत्तरदायी होते हैं।
3. **पारिरमिक पाने का अधिकार (Right to Get Remuneration):** प्रवर्तक कम्पनियों का निर्माण करने व चलाने में कठिन परिश्रम करते हैं इसलिए कम्पनियाँ उन्हें उनके प्रतिफल के रूप में पारिरमिक देती हैं। प्रवर्तकों द्वाराकी गई सेवाओं के लिए पारिश्रमिक उन्हें निश्चित धन के रूप में अथवा कम्पनी के लिए खरीदी गई सम्पत्ति को अधिक मूल्य पर बेचकर अथवा ऐसी सम्पत्ति पर एक निश्चित दर से कमीशन देकर अथवा कम्पनी में कोई महत्वपूर्ण पद देकर दिया जा सकता है। परिश्रमिक नकद अथवा अंशों एवं ऋण–पत्रों के रूप में भी दिया जा सकता है।

प्रवर्तकों के दायित्व

(Liabilities of Promoters)

प्रवर्तकों का कम्पनी–प्रवर्तनों में महत्वपूर्ण स्थान होता है। जहाँ प्रवर्तकों को कुछ अधिकार दिए गए हैं वहाँ उन पर कुछ दायित्व भी डाले जाते हैं। प्रवर्तकों के दायित्व का क्षेत्र बहुत व्यापक है, परन्तु महत्वपूर्ण दायित्वों को नीचे समझाया गया हैः

1. **गुप्त लाभ प्रकट करने तथा भुगतान करने का दायित्व (Liability to Disclose and Pay the Secret Profits):** कम्पनी स्थापित होने के बाद कम्पनी की ओर से यदि प्रवर्तकों ने कोई गुप्त लाभ कमाया है, तो उन्हें इसका हिसाब कम्पनी को देना पड़ेगा और यह सब गुप्त लाभ कम्पनी को वापिस करना होगा।
2. **बिना विवरण दिए हुए सम्पत्ति के क्रय से होने वाली हानि के लिए दायित्व (Liability for the Loass on Purchae of Assets for Which no Account is Given):** यदि प्रवर्तक कम्पनी को बिना पूरा विवरण दिए किसी सम्पत्ति का क्रय करते हैं और उससे कम्पनी को हानि होती है, तो कम्पनी इस हानि के लिए प्रवर्तकों पर मुकदमा चला सकती है और वे उनके लिए उत्तरदायी होंगे।

3. **अनुबंधों के पूरा न होने तक दायितव (Liability upto Completion of Contract):** कम्पनी की ओर से जो अनुबंध प्रवर्तक के साथ किए जाते हैं प्रवर्तक उनके लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है जब तक अनुबन्ध पूरा न हो जाए।
4. **प्रविवरण में कपट के लिए दायितव (Liability for Fraud in Prospectus):** प्रवर्तक जो कम्पनी के प्रविवरण के निर्गमन में भाग लेते हैं, प्रविवरण में किए गए कपट के लिए अंशधारियों के प्रति उत्तरदायी होते है।
5. **मत होने पर दायित्व (Liability on Death):** यदि किसी प्रवर्तक की मत्यु हो जाती है तो उसके द्वारा दिए जाने वाले रूपयों के लिए कम्पनी के प्रति उत्तरदायी होती है।
6. **दिवालिया होने पर दायित्व (Liability on Insolvency):** किसी प्रवर्तक के दिवालिया हो जाने पर उसकी सम्पत्ति कम्पनी के लिए उत्तरदायी होती है।
7. **कपट या कर्त्तव्य-भंग की दशा में दायित्व (Liability in Case of Fraud and Misfeasance):** यदि प्रवर्तकों के कपट या कर्त्तव्य–भंग के कारण कम्पनी को कोई हानि उठानी पड़ती है तो प्रवर्तक इस हानि की पूर्ति के लिए उत्तरदायी होते हैं।
8. **प्रविवरण की वैधानिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होने पर दायित्व (Liability if not Fulfilling the Statutory Requirements of Prospectus):** यदि प्रविवरण की वैधानिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होने के कारण अंशधारियों को कोई हानि उठानी पड़ती है तो प्रवर्तक अंशधारियों के प्रति इस हानि के लिए उत्तरदायी होते है।

प्रवर्त्तक के कार्य

(Functions of Promoter)

एक कम्पनी या तो पूर्णतः नये सिरे से आरम्भ होती है या चालू कम्पनी को क्रय करती है या विद्यमान कम्पनियों को संयोजित किया जाता है। इन सभी दशाओं में एक प्रवर्तक को विविध कार्य करने पड़ते हैं। कौन–कौन से कार्य प्रवर्तकों को करने पड़ते हैं यह उनके द्वारा स्थापित की जाने वाली कम्पनी के स्वभाव, वैधनिक प्रतिबन्ध तथा उस समय की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसलिए कम्पनी प्रवर्तकों के कार्य का क्षेत्र बहुत विस्तत है। इसके द्वारा सामान्य रूप से किये जाने वाले कार्यो का वर्णन नीचे किया गया हैः

1. कम्पनी के निर्माण का विचार बनाना और उसकी सम्भावनाओं को देखना।
2. कम्पनी को आरम्भ करने से पहले की समस्याओं जैसे स्थान, कच्चा माल इत्यादि पर विचार करना।
3. यचिद कम्पनी का निर्माण किसी विद्यमान व्यापार को खरीद कर करना है तो विक्रेताओं के साथ ठहराव करना।
4. प्रथम संचालकों के रूप में कार्य करने वाले व्यक्तियों का चुनाव करना तथ उनकी सहमति प्राप्त करना।
5. कम्पनी का नाम, उद्देश्य एवं पूँजी का निर्धारण करना।
6. कम्पनी के लिए बैंकर्स, अंकेक्षक, दलाल एवं वैधानिक सलाहकार आदि चुनना।
7. पार्षद् सीमा नियम, पार्षद् अन्तर्नियम एवं प्रविवरण तैयार करना।
8. कम्पनी के रजिस्ट्रेशन के समय उपस्थि रहना।
9. सम्पत्ति विक्रेता, अभिगोपक तथा प्रबन्ध अभिकर्ता इत्यादि के साथ प्रारम्भिक अनुबन्ध करना।

10. समामेलन प्रमाण पत्र रजिस्ट्रार से प्राप्त करना।
11. प्रारम्भिक व्ययों का भुगतान करना।
12. पूँजी निर्गमन की व्यवस्था करना।

कम्पनी का निर्माण या समामेलन या रजिस्ट्रेशन

(Floatation or Incorporation or Registration of Company)

कम्पनी के प्रवर्त्तन के पश्चात् निर्माण की दूसरी अवस्था आती है समामेलन। इसके अन्तर्गत कुछ प्रारम्भिक क्रियाएँ सम्पन्न करने के पश्चात् प्रपत्रों को रजिस्ट्रार के कार्यालय में जमा कराना पड़ता है। इसके बाद आवश्यक फीस जमा करके समामेलन का प्रमाण–पत्र किया जाता है। किसी भी कम्पनी का अस्तित्व ही समामेलन (रजिस्ट्रेशन) के पश्चात् होता है। इसीलिए कहा जाता है कि "प्रवर्तन कम्पनी को गर्भ का रूप देता है और समामेलन उसे गर्भ से निकाल कर एक कत्रिम व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है।" जब तक कम्पनी का समामेलन नहीं हो जाता, उसे वैधानिक दष्टि से कम्पनी नहीं कहा जा सकता तथा इसका पथक् अस्तित्व नहीं होता। एक कम्पनी के समामेलन की विधि ा को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **नाम की प्राप्ति (Availability of Name):** कम्पनी का कोई भी नाम रखा जा सकता है बशर्ते कि यह नाम किसी विद्यमान कम्पनी से मिलता–जुलता न हो। कम्पनी के नाम के सम्बन्ध में आज्ञा प्राप्त करने के लिए कम्पनी के रजिस्ट्रार की सहायता से एक प्रार्थना–पत्र 'Department of Company Law Administration' को प्रस्तुत करना होता है। इस प्रार्थना–पत्र को प्रस्तावित फीस के साथ प्रस्तुत करना चाहिए। रजिस्ट्रार 14 दिन के अन्दर नाम के बारे में सूचना भेज देता है और इस सूचना के तीन महीने तक रजिस्ट्रार यह नाम कम्पनी के लिए रखता है।
2. **लाइसेंस का प्राप्त करना (Licence under Industries Development and Regulation Act, 1951):** एक प्रार्थना–पत्र आज्ञा प्राप्त करने के लिए सचिव उद्योग मन्त्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली को भेजना होता है। यह केवल उन्हीं कम्पनियों के लिए आवश्यक है जो इस अधिनियम की सीमा में आती हैं।
3. **पूँजी निर्गमन नियंत्रक की आज्ञा (Permission of the Controller of Capital Issues):** यदि किसी कम्पनी की अंशपूँजी एक करोड़ रूपए से अधिक है तो इस कम्पनी को आज्ञा प्राप्त करने के लिए एक प्रार्थना–पत्र 'Controller of Capital Issues, Ministry of Finanace, Department of Economic Affairs, New Delhi' को भेजना होता है।
4. दलालों, अंकेक्षकों, बैंकर्स, इंजीनियर और अभिगोपकों (Underwriters) को निश्चित करना होता है।
5. पार्षद् सीमानियम, अन्तर्नियम और प्रविवरण तैयार करना और उनकी छपाई की व्यवस्था करना।
6. एक विवरण तैयार करना जिसमें कम्पनी का नाम, रजिस्टर्ड कार्यालय, प्रस्तावित पूँजी और संचालकों व प्रबंधकों के नाम और पते लिखे हों।

उपर्युक्त क्रियाओं के बाद कम्पनी का समामेलन कराने के लिए उस राज्य के रजिस्ट्रार के पास जिसमें कम्पनी का रजिस्टर्ड आफिस स्थापित होना है, प्रवर्त्तक एक आवदेन पत्र प्रस्तुत करता है। आवेदन पत्र के साथ निम्नलिखित प्रलेख फाइल किए जाते हैं–

1. **पार्षद् सीमानियम (Memorandum of Association):** पार्षद् सीमानियम के बिना किसी भी कम्पनी का समामेलन नहीं हो सकता। यह कम्पनी का प्रमुख प्रलेख है। पब्लिक कम्पनी की दशा में कम से कम सात और

प्राइवेट कम्पनी की दशा में कम से कम दो व्यक्तियों के इस प्रलेख पर हस्ताक्षर होने चाहिएं। प्रत्येक हस्ताक्षरकर्ता को कम से कम एक अंश लेना आवश्यक होता है। इस पर आवश्यकतानुसार स्टाम्प लगी होनी चाहिए।

2. **पार्षद् अन्तर्नियम (Articles of Association):** इस प्रलेख में पार्षद् सीमानियम में दिए उद्देश्यों को पूरा करने के लिए और कम्पनी को सुचारू रूप से चलाने के लिए बनाए नियमों का उल्लेख होता है। इस प्रलेख पर भी उन व्यक्तियों के हस्ताक्षर होने चाहिएं। जिन्होंने पार्षद्–सीमानियम पर हस्ताक्षर किए हैं। अन्तर्नियम छपे तथा पैराग्राफों में विभक्त होना चाहिए। लेकिन पब्लिक कम्पनी के लिए अन्तर्नियम तैयार करना आवश्यक नहीं है। यदि वह चाहे तो इसके स्थान पर सारणी 'अ' (Table 'A') स्वीकार कर सकती हैं। ऐसी दशा में पार्षद् सीमानियम को रजिस्ट्रार के पास भेजते समय 'बिना अन्तर्नियमों के रजिस्टर्ड' लिख देना चाहिए।

3. **कम्पनी के रजिस्टर्ड कार्यालय के स्थान की सूचना (Information about the Place of Head Office of the Company):** कम्पनी के रजिस्टर्ड कार्यालय के स्थान और स्थिति की सूचना भी रजिस्ट्रार के कार्यालय में भेजनी पड़ती है। यह सूचना रजिस्ट्रेशन के बाद ३० दिन के अन्दर भी दी जा सकती है।

4. **संचालको की सूची (List of Directors):** उन व्यक्तियों की सूची भी भेजनी पड़ती है जो कम्पनी के संचालक के रूप में कार्य करने के लिए सहमत हो गए हैं। इस सूची में प्रत्येक ऐसे व्यक्ति का नाम, पता, व्यवसाय और अन्य विवरण होता है। प्राइवेट कम्पनी की दशा में इसे भेजने की आवश्यकता नहीं है।

5. **संचालकों की लिखित सहमति (Written Consent of the Directors):** जिन व्यक्तियों ने कम्पनी में संचालक बनना स्वीकार कर लिया है उनकी लिखित सहमति रजिस्ट्रार के पास भेजनी आवश्यक है। सहमति में यह स्पष्ट होना चाहिए कि वह कम्पनी में योग्यता अंश लेगा तथा उसके लिए भुगतान करेगा।

6. **प्रबन्धक/पूर्णकालिक संचालक अथवा प्रबन्धक की नियुक्ति के लिए किए गए ठहराव की प्रति (Copy of the Agreement Regarding appointment of Managing/whole Time Director or Manager):** कंपनी (संशोधन) अधिनियम, 1988 की धारा 33 (C) के अनुसार यदि कम्पनी किसी व्यक्ति के साथ ऐसा कोई ठहराव करती है जिसके द्वारा उसे कम्पनी का प्रबन्ध/पूर्णकालीन संचालक या प्रबन्धक नियुक्त किए जाने का प्रस्ताव है तो ऐसे ठहराव की प्रति भी रजिस्ट्रेशन के लिए रजिस्ट्रार के यहाँ प्रस्तुत करना आवश्यक है। धारा 33 (C)

7. **वैधानिक घोषण (Statutory Declaration):** कम्पनी के समामेलन के समय एक वैधानिक घोषणा रजिस्ट्रार के पास भेजनी होती है कि रजिस्ट्री के लिए समस्त वैधानिक आवश्यकताँ पूरी की जा चुकी है। यह घोषणा निम्न व्यक्तियों में से कोई भी कर सकता है।

8. **निर्धारित शुल्क देना (Payment of Prescribed Fee):** उपरोक्त प्रपत्रों के साथ निर्धारित शुल्क भी कम्पनी के रजिस्ट्रार के पास भेजना पड़ता है। यह शुल्क कम्पनी अधिनियम की धारा 611 के अनुसार होता है। इस शुल्क का भुगतान भारतीय रिजर्व बैंक में भारत के सरकारी खाते में (Into the public account in the Reserve Bank of India) जमा किया जाता है। भारतीय कम्पनी अधिनियम की 10वीं सूचनी में इस शुल्क की दरें दी गई हैं।

निर्धारित शुल्क के अतिरिक्त पाँच रूपये 'फाइलिंग फीस' (Filing Fee) के भी देने पड़ते हैं।

उपरोक्त कार्यवाही पूरा हो जाने के पश्चात् रजिस्ट्रार कम्पनी के समामेलन सम्बन्धी प्रलेखों का निरीक्षण और जांच करेगा। तब वह संतुष्ट हो जाता है कि सभी आवश्यक वैधानिक कार्यवाहियां पूरी कर ली गई हैं तो समामेलन का प्रमाण–पत्र निर्गमित करेगा।

समामेलन का प्रमाण-पत्र

(Certificate of Incorporation)

उपर्युक्त प्रलेखों को प्राप्त कर लेने पर, यदि रजिस्ट्रार इस बात से सन्तुष्ट हो जाता है कि कम्पनी द्वारा सभी आवश्यक वैधानिक कार्यवाहियाँ पूरी कर ली गई हैं तथा आवश्यक शुल्क का भी भुगतान कर दिया गया है तो वह एक समामेलन प्रमाण–पत्र निर्गमित कर देगा। इसमें वह अपने हस्ताक्षर द्वारा यह प्रमाणित करेगा कि कम्पनी का समामेलन की तिथि से, जो कि समामेलन प्रमाण पत्रों में उल्लेखित होती है सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति तथा अन्य सदस्य एक समामेलित संस्था के रूप में हो जाते हैं। एक निजी कम्पनी ऐसी तिथि से अपना व्यापार भी प्रारम्भ कर सकती है। धारा 34(1)

समामेलन का प्रभाव (Effects of Incorporation): कम्पनी के समामेलन के निम्न प्रभाव होते हैं–

1. कम्पनी एक समामेलित संस्था बन जाती है।
2. समामेलन के प्रमाण–पत्र को न्यायालय मं कम्पनी के अस्तित्व के प्रमाण के रूप में किया जा सकता है।
3. कम्पनी एक वैधानिक व्यक्ति बन जाती है और उसका अस्तित्व सदस्यों से अलग माना जाने लगता है। जिसकी एक अलग सार्वमुद्रा (Common Seal) होती है।
4. कम्पनी का अस्तित्व स्थायी हो जाता है।
5. समामेलन का प्रमाण–पत्र प्राप्त करते ही एक प्राइवेट कम्पनी अपना व्यापार प्रारम्भ कर सकती है।

पूँजी अभिदान

(Capital Subscription)

एक निजी कम्पनी अथवा वह सार्वजनिक कम्पनी जिसमें अंश–पूँजी नहीं हो समामेलन के तुरन्त पश्चात् अपना व्यापार आरम्भ कर सकती है। अतः 'पूँजी अभिदान अवस्था' और 'व्यापार आरम्भ करने की अवस्था' अंश–पूँजी वाली सार्वजनिक कम्पनी पर ही लागू होती है।

पूँजी अभिदान की व्यवस्था के अन्तर्गत कम्पनी को आवश्यक पूँजी एकत्रित करने के लिए निम्नलिखित कार्यवाही करनी होती हैः

प्रविवरण जारी करना एवं अभिदान स्वीकार करना

(To Issue Prospectus and Accept Subscription)

कम्पनी जनता को प्रविवरण जारी करती है और उसकी एक प्रति रजिस्ट्रार को भेजती है। अंशों के लिये आवेदन–पत्र कम्पनी का बैंकर प्राप्त करता है। यदि कम्पनी को न्यूनतम अभिदान (minimum subscription) प्राप्त हो जाता है तो सचालकगण अंशों के आबंटन का प्रस्ताव पास करके आवेदकों को आबंटन पत्र भेज देते हैं और रजिस्ट्रार को आबंटन रिटर्न (Return of Allotment) भेज दिया जाता है। यदि कम्पनी प्रविवरण जारी करने की तिथि से 120 दिन के अन्दर न्यूनतम अभिदान की राशि प्राप्त करने में असमर्थ रहती है तो कम्पनी अंशों का आबंटन करने की अधिकारी नहीं रहती तथा आवेदन पर प्राप्त धन लौटाना पड़ता है।

यदि कोई अंश पूँजी वाली कम्पनी प्रविवरण का निर्गमन नहीं करती है तो उसे अंशों या ऋणपत्रों के प्रथम आबंटन के कम से कम तीन दिन पहले स्थानापन्न प्रविवरण (Statement in lieu of prospectus) रजिस्ट्रार के पास रजिस्ट्री के लिए भेजना आवश्यक है। इसके पश्चात् उसे आबंटन सम्बन्धी सामान्य प्रक्रिया जैसे, आबंटन–पत्र भेजना, अंश

प्रमाण–पत्र निर्गमित करना, आदि का पालन करना पड़ता है।

व्यापार प्रारम्भ करने का प्रमाण-पत्र

(Certificate of Commencement of Business)

समामेलन का प्रमाण–पत्र प्राप्त कर लेने के पश्चात एक प्राइवेट कम्पनी तुरन्त ही अपना व्यापार करती है अर्थात् इस कम्पनी के लिए समामेलन का प्रमाण–पत्र ही 'व्यापार प्रारम्भ करने का प्रमाण–पत्र' होता है। धारा 149 (7)

एक पब्लिक कम्पनी अपना व्यापार रजिस्ट्रेशन के तुरन्त बाद प्रारम्भ नहीं कर सकती है। उसे उन सभी कार्यवाहियों को पूरा करना पड़ता है जो कम्पनी अधिनियम की धारा 149 में दी हुई है।

1. **प्रविवरण निर्गमित करने वाली कम्पनियाँ (Companies issuing prospectus):** एक अंश–पूँजी वाली पब्लिक कम्पनी, जिसने प्रविवरण का निर्गमन किया है, तब तक अपना व्यापार प्रारम्भ नहीं कर सकती, जब तक कि निम्न कार्यवाहियाँ पूरी न कर ले–

   (i) पूर्णतया नकदी में दिए जाने वाले अंशों का आंबटन न्यूनतम अभिदान राशि (minimum subscription) के बराबर किया गया है।

   (ii) कम्पनी के प्रत्येक संचालक ने अपने द्वारा खरीदे गए अंशों पर अन्य व्यक्तियों के समान आवेदन तथा आबंटन की बकाया राशि का भुगतान कर दिया हो।

   (iii) यदि किसी मान्य स्कन्ध विपणि (recognised-stock exchange) में अंशों या ऋणपत्रों के क्रय या विक्रय की आज्ञा प्राप्त करने के लिए प्रार्थना–पत्र नहीं दिया गया है, तो अंश या ऋणपत्रों के संबंध ा में आवेदकों को कोई भी धनराशि लौटाने को शेष नहीं रही है।

   (iv) किसी संचालक या सचिव द्वारा इस बात की प्रमाणित घोषण रजिस्ट्रार के पास फाइल करनी चाहिए कि उपर्युक्त (i), (ii) तथा (iii) की शर्तें पूरी की जा चुकी है। धारा 149 (1)

2. **प्रविवरण-पत्र निर्गमित न करने वाली कम्पनी की दशा में (In case of a company not issuing the prospectus):** यदि किसी सार्वजनिक कम्पनी ने जनता को प्रविवरण निर्गमि नहीं किया है तो उसे व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाण–पत्र प्राप्त करने के लिये कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 149 (2) के अन्तर्गत निम्न शर्तें पूरी करनी होती हैं–

   (i) प्रविवरण का स्थानापन्न विवरण (Statement in lieu of prospectus): रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत कर दिया गया है।

   (ii) कम्पनी के प्रत्येक संचालक ने अपने द्वारा लिए गए अथवा लेने के लिए अनुबन्धित प्रत्येक अंश पर, जिसका भुगतान नकद में किया जाता है, अंशधारियों द्वारा आवेदन तथा आंबटन पर किए जाने वाले भुगतान के बराबर भुगतान कर दिया है।

   (iii) कम्पनी के संचालक या सचिव ने इस बात की घोषणा रजिस्ट्रार के पास फाइल कर दी है कि उपर्युक्त शर्तें पूरी कर दी गयी है।

   उपर्युक्त औपचारिकताओं को पूरा करने के पश्चात् रजिस्ट्रार व्यापार आरम्भ करने का प्रमाण–पत्र निर्गमित कर देता है। ऐसा प्रमाण–पत्र इस बात का निश्चयात्मक प्रमाण होगा कि कम्पनी को व्यापार आरम्भ करने तथा उधार लेने के अपने अधिकार को प्रयोग करने का अधिकार प्रापत है। धारा 149 (3)

अध्याय-3
पार्षद् सीमानियम
(Memorandum of Association)

कम्पनी का रजिस्ट्रेशन कराने के लिए विभिन्न प्रलेखों को रजिस्ट्रार के पास भेजा जाता है जिनमें सबसे महत्वपूर्ण प्रलेख कम्पनी का पार्षद् सीमानियम है। कम्पनी का रजिस्ट्रेशन बिना पार्षद् सीमानियम की सुपुर्दगी के नहीं हो सकता। इसलिए इस प्रलेख को जीवन प्रदान करने वाला प्रलेख भी कहते हैं। यह कम्पनी का चार्टर कहलाता है और यह वह पत्थर है जिस पर कि कम्पनी के भवण का निर्माण होना है। कम्पनी का पार्षद् सीमानियम, कम्पनी की कार्यसीमा निर्धारित करता है और उद्देश्यों को बताता है। यह बाहरी जगत् और कम्पनी के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। कम्पनी इसके द्वारा निर्धारित सीमा के विपरीत कोई कार्य नहीं कर सकती।

परिभाषा
(Defination)

कम्पनी अधिनियम की धारा 2 (28) के अनुसार, सीमानियम से आशय एक कम्पनी के ऐसे पार्षद् सीमानियम से है जो पहले किसी भी कम्पनी सन्नियम अथवा इस अधिनियम के अधीन मूल रूप से बनाया गया है अथवा समय–समय पर परिवर्तित किया गया है।

कम्पनी अधिनियम द्वारा दी गई परिभाषा में पार्षद् सीमानियम का प्रयोग उसके महत्व और सही अर्थ हो प्रकट नहीं करता। अतः इसका सही अर्थ निम्नलिखित परिभाषाओं से समझा जा सकता है–

सीमानियम का उद्देश्य अंशधारियों, लेनदारों तथा उन सब व्यक्तियों को, जो कम्पनी के साथ व्यवहार करते है, कम्पनी के सम्पूर्ण कार्यक्षेत्र से अवगत कराना है।

पार्षद् सीमानियम की विशेषताएँ

(Features or Characteristics of Memorandum of Association)

विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण करने से पार्षद् सीमानियम की निम्नलिखित विशेषताएँ होता है।

1. पार्षद् सीमानियम प्रत्येक कम्पनी का आधारभूत प्रलेख होता है क्योंकि प्रत्येक कम्पनी को समामेलन करने के लिए इसे अनिवार्य रूप से बनना पड़ता है।
2. यह कम्पनी का एक प्रकार से ेविधान है क्योंकि इसमें कम्पनी के अधिकारों व सीमाओं का वर्णन होता है।
3. सीमानियम में आसानी से परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। इसमें परिवर्तन केवल अधिनियम की विशेष शर्तों एवं औपचारिकताओं को पूरा करने के पश्चार्त निश्चित सीमाओं में विशेष कार्यों एवं परिस्थितियों में ही किया हा सकता है।
4. यह एक सार्वजनिक प्रलेख है और कम्पनी से व्यवहार करने पाले व्यक्ति को इसकी विषय–सामग्री की पर्याप्य सूचना मान जी जाती है।
5. यह कम्पनी के उन अधिकारों और क्षेत्र को निर्धारित करता है जिनके बाहर कम्पनी कोई कार्य नहीं कर सकती तथा अधिकारों एंव क्षेत्र के बाहर किए गए कार्यों को कनूनी मान्यता नहीं मिलती।
6. सीमानियम बाहरी व्यक्तियों तथा कम्पनी के मध्य सम्बन्धों तथा कार्यों का नियमन करता है।

पार्षद् सीमानियम के उद्देश्य

(Objects of Memorandum of Association)

1. उन व्यक्तियों को, जोकि कम्पनी में पूँजी प्रदान करना चाहते हैं, उन्हें इस बात की जानकारी देना कि किस सीमा नक जोखिम होगा।
2. बाहरी व्यक्तियों को जो कि कम्पनी के साथ व्यवहार एवं अनुबन्ध करना चाहने हैं, उन्हें कम्परी को अनुबन्ध करने की क्षमता (Contractual capacity) के बारे में जानकारी देना अर्थत् कम्पनी के साथ किया जाने वला अनुबन्ध कम्पनी के उद्देश्यों के उन्तर्गत है अथवा नहीं। 1.[Cotman Vs. Brougham (1918) A.C. 514]

महत्व

(Improtance)

उक्त परिभषाएं पार्षद् के क्षेत्र एवं पहत्व को स्पष्ट करनी है। वास्तव में ज्ञापन–पत्र (पार्षद् सीमानियम) वह आध ारशिला है जिस पर कम्पनी का निर्माण आधरित होता है। इसमें कम्पनी का नाम, कम्पनी के पंहीकत कार्यालय का पता, कम्पनी में शेयर–पूँजी है अथवा नही, कम्पनी शेयरों द्वारा सीमित है अथवा गारण्टी द्वारा, तथा कम्पनी के कार्य–क्षेत्र एवं अध्किारों की सीमाओं का उल्लेख होता है। यह एक ऐसा प्रलेख है जो कम्पनी की संविदा करने की क्षमता (capacity of contract) की सीमाएँ निर्धारित करताहै। इसमें उल्लिखित कार्य–क्षेत्र के बाहर कम्पनी कोई भी कार्य नहीं कर सकती। कम्पनी यदि इसकी सीमा के बाहर कोई कार्य करती है तो वह शक्ति–बाह्य (Ultra Vires) माना जाता है और कम्पनी पर आबद्धकारी नहीं होता।

बाहरी व्यक्तियों के लिए ज्ञापन–पत्र कम्पनी का संविधान होता है। यह एक सार्वजनिक प्रलेख है और कम्पनी से व्यवहार करने वाले व्यक्ति नाम–मात्र मूल्य देकर इसकी प्रतियाँ प्राप्त कर सकते हैं। यह रजिस्ट्रार के कार्यालय में किसी भी व्यक्ति द्वारा देखा जा सकता अतः यह एक सर्वमान्य धारणा है कि कम्पनी से व्यवहार करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इस प्रलेख में दी गई सारी बातों की जानकारी है। कम्पनी से व्यवहार करने वाला प्रत्येक व्यक्ति इसकी व्यवस्थाओं से आबाद्ध होता है तथा वह शक्ति बाह्य कार्यों के लिए कम्पनी को दोषी नहीं बना सकता। शायद यही कारण है कि बिना केन्द्रीय सरकार या न्यायालय या कम्पनी लॉ बोर्ड की पूर्व–अनुमति के कोई भी कम्पनी अपने ज्ञापन–पत्र में परिवर्तन नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त अधिनियम में निर्दिष्ट कुछ दशाओं में एवं निर्दिष्ट सीमा तक ही इसमें परिवर्तन किया जा सकता है। परिवर्तन सम्बन्धी अधिनियम के जटिल उपबन्धों को देखते हुए इसके कम्पनी का अपरिवर्तनीय चार्टर भी माना जाता है।

धारा 15 के अनुसार प्रत्येक कम्पनी का ज्ञापन–पत्र छपा हुआ एवं पैराग्राफों में विभाजित होना चाहिए तथा प्रत्येक पैराग्राफ पर क्रम–संख्या अंकित होनी चाहिए। इस पर प्रत्येक अभिदाता (Subscriber) द्वारा हस्ताक्षर होने चाहिएँ। हस्ताक्षर ऐसे साक्षी द्वारा प्रमाणित होने चाहिएँ जो स्वयं अभिदाता न हो।

पार्षद् सीमानियम की वैधानिक आवश्यकताएँ

(Legal Requirments of Memorandum of Association)

कम्पनी अधिनियम की धारा 15 के अनुसार, कम्पनी के पार्षद् सीमानियम में निम्न आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान देना तथा पूरा करना आवश्यक है।

1. पार्षद् सीमानियम मुद्रित (Printed) तथा अनुच्छेदों (Paragraphs) में विभाजित होता चाहिए।
2. प्रत्येक अनुच्छेद पर क्रम–संख्या अंकित होनी चाहिए।
3. पार्षद् सीमानियम पर सभी प्रथम अर्थात् प्रत्येक अभिदाता (Suscriber) के हस्ताक्षर होने चाहिए। उनका नाम, पता, व्यवसाय आदि भी लिखा होना चाहिए।
4. ऐसे हस्ताक्षर कम–से–कम एक गवाह द्वारा प्रमाणित होने चाहिए। कोई भी अभिदाता (Subscriber) अपने स्वयं के हस्ताक्षर को प्रमाणित नहीं कर सकता है, और न ही वे एक–दूसरे के हस्ताक्षरों को प्रमाणित कर सकते हैं।

5. एक प्राइवेट कम्पनी के पार्षद् सीमानियम पर कम–से–कम दो सदस्यों के तथा पब्लिक कम्पनी के पार्षद् सीमानियम पर कम–से–कम सात सदस्यों के हस्ताक्षर होने आवश्यक है।
6. सदस्यों के स्थान पर उनके अधिकृत एजेण्ट पार्षद् सीमानियम पर हस्ताक्षर कर सकते हैं।
7. हस्ताक्षर के समय, यदि आवश्यक हो तो तारीख की मुहर (Date Stamp) का प्रयोग किया जा सकता है।

पार्षद् सीमानियम पर हस्ताक्षर कौन कर सकता है?

(Who May be singatory onMemorandumof Association)

1. **एक कम्पनी** – कम्पनी एक वैधनिक व्यक्ति होती है, अतः पार्षद् सीमानियम की अधिदाता (Subscriber) बन जपती है। परन्तु धारा 254 के अनुसार वह कम्पनी की संचालक नहीं बन सकती क्योंकि कम्पनी एक कृत्रिम व्यक्ति होती है। अतः वह अपने अधिकृत प्रतिनिधि के द्वारा हस्ताक्षर कर सकती है।
2. **एक विवाहित, दिवालिया या विदेशी** – जोविदेश में दहता है, पार्षद् सीमानियम का अभिदाता बन सकता है। परन्तु देश का शत्रु, पार्षद् सीमानियम का हस्ताक्षरकर्ता नहीं बन सकता है।
3. **एक फर्म** – एक फर्म वैधानिक व्यक्ति नहीं होती, अतः किसी पार्षद् सीमानियम की अभिदाता बन सकती है। परन्तु उस फर्म का साझेदार अभिदाता बन सकता है।
4. **एक अवयस्क** – एक अवयस्क की स्थिति संदिग्ध है। भारतीय कम्पनी अधिनियम के अनुसार एक अवयस्क करने की क्षमता नहीं है और अवयस्क के साथ किया गया अनुबन्ध प्रारम्भ से ही व्यर्थ (ab initio void) माना जाता है। दूसरी तरफ, इंग्लैण्ड में एक अवयस्क के साथ किया गया अनुबन्ध व्यर्थनीय (Voidable) होता है। क्योंकि अधिनियम में अवयस्क 'व्यक्ति' माना जाता है, अतः वह पार्षद् सीमानियम पर हस्ताक्षर कर सकता है।

पार्षद् सीमानियम की विषय-सामग्री

(Contents or Clauses or Subject Matter of Memorandum of Association)

कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 13 अनुसार प्रत्येक कम्पनी को अपने पार्षद् सीमानियम में छः बातों का उल्लेख करना अनिवार्य होता है। ये बातें हैं–

1. कम्पनी का नाम
२. कम्पनी का रजिस्टर्ड कार्याालय
3. कम्पनी के उद्देष्य
4. दायित्व
5. कम्पनी की पूँजी
6. संध एवं हस्ताक्षर वाक्या

पार्षद् सीमानियम की विषय–सामग्री के प्रत्येक शीर्षक का विस्तत विवरण निम्न प्रकार से किया गया है।

नाम वाक्य

(Name Clause)

इस वाक्य में वह नाम लिखा जाता है, जिस नाम से कम्पनी रजीस्टर्ड कराई जाती है। कम्पनी का नाम न केवल कम्पनी की पहचान (Identification) के लिए ही आवश्यक है बल्कि यह उसके व्यक्तिगत अस्तित्व का भी प्रतीक होता है। कम्पनी को उपने पाम का चुनाव करने में पूरी स्वतन्त्रता है। अतः कम्पनी अपनी इच्छानुसार होई भी पाम रख सकती है, किन्तु नाम का चुनाव करने समय निम्नलिखित वैधनिक प्रतिबन्धों का विशेष ध्यान रखना चाहिए–

(a) शेयरों द्वारा सीमीत सार्वजनिक कम्पनी अथवा निजी कम्पनी की दशा में, नाम के अन्त में क्रमशः लिमिटेड (Ltd.) या प्राइवेट लिमिटेड (Private Ltd.) शब्द लिखना आवश्यक है। धारा 25 में इस नियम का एक उपवाद दिया गया

है जिसके अनुसार यदि कोई सीमीत दायित्व वाली कम्पानी, वाणिज्य, कला, विज्ञान या धर्म आदि को प्रोत्साहन देने के लिए बनाई गई है और जो अपने लाभ को सदरस्यों में न बाँट कर अपने उद्देश्य को प्रोत्साहन देने के लिए प्रयोग करती है, तो केन्द्रीय सरकार कम्पनी को उपने नाम से लिमिटेड शब्द हटाने की अनुमति दे सकती है। गांरटी द्वारा सीमिज कम्पनियों की दशा में कम्पनी के नाम के अन्त में पूर्व–कथित शब्दों का प्रयोग आवश्यक है। असीमित कम्पनीयों की दश में केवल कम्पनी का नाम ही दिया जाता चाहिए। यह महत्वपूर्ण है कि कम्पनी के प्रस्मावित नाम में कम्पनी शब्द का प्रयोग करना आवश्यक नहीं है।

(b) धारा 20के अनुसार, नाम ऐसा नहीं होना चाहिए जो केन्द्रीय सरकार के मत में अवांछनीय हो। किस तरह के नाम अवांछनीय होंगे इसका अधिनियम में कही उल्लेख नहीं किया गया है और इस प्रकार इस दिशा में केन्द्रीय सरकार को असीमित अधिकार दे दिए गए हैं। सामान्यतः निम्न प्रकार ो नामों को अवांछनीय माना जाता है–

(i) ऐसा नाम जो किसी विद्यामान कम्पनि अथवा फर्म (चाहे पंजीकृत हो या अपंजीकृत) के नाम से मिलता–जुलता है जिससे जनता को धेखा होने की सम्भावना है (ब्रिटिश वैक्यूम क्लीनर कं. बनाम न्यू वैक्यूम क्लीनर क. लि.)। एंसे नामों को अवांछनीय इसलिए माना जाता है क्योंकि यदि यह प्रतिबन्ध न हो तो नई कम्पानियाँ विद्यमान कम्पनियों के समान नाम रखकर उरकी खयाति को हाति पहुँचा सकती है।

(ii) ऐसा नाम हो भ्रामोत्पादक (misleading) है, उदाहरणार्थ, ऐसा नाम जिससे केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, नगर–पालिका या अन्य स्थानीय सता से किसी प्रकार के सम्बन्ध का बोध होता है, अथवा ऐसा नाम जिससे कम्पनी एक विशिष्ट प्रकार की संस्था जैसे 'सहाकारी समिति', 'भवन निर्माण समिति' प्रतीत होती हो जबकि वास्तव में ऐसी बात न हो।

यदि असावधानी या अन्य किसी कारण से एक कम्पनी का पंजीकरण ऐसे नाम से हो जाता है जो दूसरी कम्पनी के नाम से पिलता–जुलता है तो न्यायालय निषेधज्ञा द्वारा नई कम्पनी को उस नाम का प्रयोग करने से रोक देगी।

यह पहत्वपूर्ण है कि यदि दोनों कम्पनियों के नाम में व्यापार के स्वभाव को प्रकट करने वाला कोई शब्द है या साधारणतया प्रयोग किया जाने वाला कोई शब्द है तो उस शब्द के प्रयोग पर रेक लगाने के लिए न्यायालय निर्षधाज्ञा जारी नहीं करेगा।

कम्पनी का रजिस्टर्ड कार्यालय अथवा स्थान वाक्य

(Registered Office of the Company or Situation Clause)

कम्पनी अधिनियम की धारा 12 (1) (ब) के अनुसार प्रत्येक कम्पनी के पार्षद् सीमानियम में उस राज्य का नाम लिखना चाहिए जिसमें कम्पनी का रजिस्टर्ड कार्यालय रहेगा। यहाँ यह ध्यान देना आवश्यक है कि पाषद् सीमानियम में कम्पनी के रजिस्टर्ड कार्यालय का पता नहीं लिखा जाता वरन् उस राज्य का नाम लिखा जाता है जिसमें रजिस्टर्ड कार्यालय स्थापित किया जायेगा। जैसे, यदि एक कम्पनी का रजिस्टर्ड कार्यालय सोनीपत में रखा जायेगा तो पार्षद् सीमानियम में सोनीपत का पता न लिखकर हरियाणा लिखा जायेगा।

प्रत्येक कम्पनी को उस दिन से, जिस दिन वह अपना व्यापार आरम्भ करती है या समामेलन के 30 दिन के अन्दर (इनमें से जो भी तिथि पहले आती हो) उस स्थान को निश्चित कर लेना चाहिए जहाँ कि उसका रजिस्टर्ड कार्यालय रहेगा। पत्र–व्यवहार की दष्टि से ऐसा करना अत्यन्त आवश्यक है। रजिस्टर्ड कार्यालय में पते की सूचना समामेलन तिथि के 30 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार को देनी चाहिए। रजिस्ट्रार इस पते को अपने यहाँ नोट कर लेता है। इसी पते पर भविष्य में पत्र–व्यवहार किया जाता है।

कम्पनी के उद्देश्य अथवा उद्देश्य वाक्य

(Objects of the Company or Object Clause)

धारा 13 (1) (स) व (द) के अनुसार, पार्षद् सीमानियम का यह सबसे प्रमुख तथा महत्वपूर्ण वाक्य है, जिसमें कम्पनी के उद्देश्यों का विवरण होता है, और वह कम्पनी के कार्यक्षेत्र की सीमाएँ भी निर्धारित करता है, जिसके बाहर कम्पनी कोई भी

कार्य नहीं कर सकती। यदि इन सीमाओं अर्थात् उद्देश्यों के बाहर कोई भी कार्य किया जाता है तो वह अधिकारों के बाहर कार्य (Ultra Vires) माना जाता है तथा पूर्णतया व्यर्थ (Void) होता है और कानून की दष्टि में उसका कोई महत्व नहीं होता।

कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1965 लागू होने (अर्थात् 15 अक्टूबर 1965) के पश्चात् समामेलित होने वाली कम्पनियों को अपने उद्देश्य वाक्य को दो उप–विभागों में बाँटना आवश्यक हो गया है–

(a) **मुख्य उद्देश्य (Main Objects):** इस उप–विभाग में कम्पनी के मुख्य उद्देश्य, जिनकी प्राप्ति के लिए कम्पनी समामेलन के पश्चात् प्रयत्न करेगी तथा सहायक व सम्बद्व उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो, का उल्लेख किया जाता है।

(b) **अन्य उद्देश्य (Other or Auxiliary Objects):** जिन उद्देश्यों का उल्लेख पहले उप–विभाग में नहीं किया जा सका है वहाँ इस उप–विभाग में अन्य उद्देश्यों का उल्लेख किया जाता है।

सहायक एवं सम्बद्व उद्देश्य

(Subsidiary or Incidental Objects)

सहायक एवं सम्बद्व उद्देश्य से तात्पर्य ऐसे उद्देश्यों से है जो कम्पनी के मुख्य उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक या उनके अनुकूल हैं। इनके आधार पर केवल मुख्य व्यापार से सम्बन्धित कार्य ही किए जा सकते हैं। इन शब्दों के लिखने से कम्पनी के अधिकार क्षेत्र में किसी प्रकार की वद्वि नहीं होती। इनके आधार पर कम्पनी कोई बिल्कुल नया व्यापार नहीं कर सकती, भले ही वह व्यापार कम्पनी के लिए अत्यन्त लाभप्रद क्यों न हो।

यह उल्लेखनीय है कि कोई कार्य कम्पनी के मुख्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु केवल इसलिए सहायक एवं सम्बद्व नहीं मान लिया जाएगा क्योंकि वह कम्पनी के लिए अत्यन्त लाभप्रद है जबकि वास्तव में वह कार्य मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए न तो जरूरी है और न ही उससे सम्बन्धित है।

कम्पनी द्वारा अपने उद्देश्यों को उल्लिखित करने के दो मुख्य उद्देश्य हैः

1. सदस्यों को यह सूचित करना कि कम्पनी उनकी पूँजी का प्रयोग अपने कारोबार में किस प्रकार से करेगी।
2. ऋणदाताओं तथा कम्पनी से व्यवहार करने वाले व्यक्तियों को कम्पनी के अधिकारों की सूचना देना।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कम्पनी को अपना उद्देश्य वाक्य बड़ी सावधानी से निर्धारित करना चाहिए। यद्यपि कम्पनी किसी भी उद्देश्य के लिए स्थापित की जा सकती है, लेकिन निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए कम्पनी स्थापित करना वर्जित हैः

1. **अनैतिक (Immoral):** कम्पनी का उद्देश्य अनैतिक नहीं होना चाहिए जैसे वेश्यालय चलाना, आदि
2. **अवैधानिक (Illegal):** किसी अवैधानिक कार्य को करने के लिए कम्पनी स्थापित नहीं की जा सकती, जैसे लॉटरी निकालना, जुआ घरा चलाना आदि।
3. **लोकनीति के विरूद्व (Opposed to Public Policy):** किसी लोकनीति (जनहित) विरोधी कार्य के लिए भी कम्पनी स्थापित नहीं की जा सकती जैसे एकाधिकार स्थापित करना, विदेशी शत्रु से व्यापार करना आदि।
4. **भारतीय कम्पनी अधिनियम का उल्लंघन (Violation of Indian Companies Act):** किसी ऐसे कार्य को करने के लिए कम्पनी स्थापित नहीं की जा सकती, जो भारतीय कम्पनी अधिनियम के विरूद्व हो जैसे सार्वजनिक कम्पनी द्वारा अपने अंश स्वयं खरीदना, पूँजी में से लाभांश का भुगतान करना।

दायित्व वाक्य

(The Liability Clause)

कम्पनी अधिनियम की धारा 13 (2) के अनुसार, प्रत्येक अंशों द्वारा तथा गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी के पार्षद सीमानियम में यह उल्लेख अवश्य होना चाहिए कि कम्पनी के सदस्यों का दायित्व सीमित है। (The liability of

members is limited)। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सार्वजनिक कम्पनी को अपने नाम के अन्त में 'लिमिटेड' तथा प्रत्येक निजी कम्पनी को 'प्राइवेट लिमिटेड' शब्द लिखना आवश्यक है। यदि धारा 25 के अनुसार किसी कम्पनी ने अपने नाम से 'लिमिटेड' या प्राइवेट लिमिटेड' शब्द हटाने की अनुमति सम्बन्धी लाइसेन्स प्राप्त कर लिया है तो इसका विवरण देना आवश्यक है कि कम्पनी के सदस्यों का दायित्व सीमित है। असीमित दायितव वाली कम्पनी के पार्षद् सीमानियम में इस वाक्य को नहीं लिखा जाता है। क्योंकि इस प्रकार की कम्पनी के सदस्यों का दायित्व असीमित होता है तथा सदस्य व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होते हैं।

सीमित दायित्व का अर्थ

(Meaning of limited liability)

सीमित दायित्व वाक्य का अर्थ है कि अंशधारियों का दायित्व उनके द्वारा खरीदे गए अंशों के अंकित मूल्य (Face value) की अदत्त राशि (Unpaid Amount) तक तथा गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी की दशा में सदस्यों के द्वारा दी गई गारण्टी की धन राशि तक सीमित है, जैसे – किसी व्यक्ति ने 10 रू. मूल्य के 100 अंश खरीदे तथा उसने इन अंशों पर आवेदन–पत्र तथा आबण्टन पर 5 रू. प्रति अंश के हिसाब से भुगतान कर दिया है, तो कम्पनी के समापन की दशा में इस अंशधारी से 5 रू. अदत्त (unpaid amount) के हिसाब से इस सदस्य का दायित्व 500 रू. की अदत्त राशि तक सीमित हैं इसी प्रकार गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी की दशा में किसी सदस्य ने 1,000 रू. तक सीमित है।

परन्तु इस नियम का एक अपवाद है। यदि किसी समय कम्पनी के सदस्यों की संख्या वैधानिक न्यूनतम संख्या से कम रह जाती है और कम्पनी इस कम संख्या के होते हुए भी 6 महीने से अधिक समय तक व्यापार जारी रखती है तो इस अधिक अवधि में प्रत्येक व्यक्ति, जो कम्पनी का सदस्य रहा है और उसे इस बात की जानकारी थी कि कम्पनी सदस्यों की संख्या न्यूनतम से कम होते हुए भी व्यापार चला रही थी उस सयम कम्पनी द्वारा उठाए गए समस्त दायित्वों के लिए उत्तरदायी होगा।

धारा 45

पूँजी वाक्य
(Capital Clauses)

1. अंशपूँजी वाली कम्पनी के पार्षद् सीमानियम के पूँजी वाक्य में कम्पनी की अधिकत पूँजी तथा उसका निश्चित मूल्य के अंशों में विभाजन का वर्णन होना चाहिए। कम्पनी जितनी पूँजी से रजिस्टर्ड की जाती है, उसे रजिस्टर्ड (Registered), अधिकत (Authorised) अथवा नाम मात्र (Nominal) पूँजी कहते हैं। कम्पनी किसी एक समय पर पार्षद् सीमानियम में दी गई संख्या से अधिक अंश निर्गमित (Issue) नहीं कर सकती है। कम्पनी को व्यापार की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कम्पनी की अधिकत पूँजी निश्चित करनी चाहिए। पार्षद् सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने नाम के सामने लिए जानेवाले अंशों की संख्या लिखनी चाहिए तथा प्रत्येक हस्ताक्षरकर्त्ता (Signatory) को कम–से–कम एक अंश अवश्य लेना चाहिए। धारा 13 (4)
2. कम्पनी की अंश पूँजी केवल समता (Equity) तथा पूर्वाधिकार अंश (Pregerence share) निर्गमित कर सकती है। किन्तु इन अंशों को असमान अधिकार नही दिए जा सकते हैं। धारा 85 तथा 89
3. निजी कम्पनी (जो किसी सार्वजनिक कम्पनी की सहायक नहीं है) किसी भी प्रकार के तथा असमान अधिकार वाले अंश निर्गमित कर सकती है। धारा 90

संघ तथा हस्ताक्षर वाक्य
(Association and Subscription Clause)

यह पार्षद् सीमानियम का अन्तिम वाक्य होता है और इस वाक्य में सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति इस बात की घोषणा करते हैं कि वे कम्पनी का निर्माण करने के लिए इच्छुक हैं और अपने नामों के समक्ष लिखे अंशों

को क्रय करने के लिए तैयार हैं। पार्षद् सीमानियम एक सार्वजनिक कम्पनी के कम–से–कम सात और निजी कम्पनी में कम–से–कम दो सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिए और यह हस्ताक्षर एक या एक से अधिक साक्षी द्वारा प्रमाणित होने चाहिए।

पार्षद् सीमानियम का संघ वाक्य निम्न है–

"हम निम्न व्यक्ति, जिनके नाम व पते नीचे दिए हुए हैं, इस बात के इच्छुक हैं कि हमारा निर्माण इस पार्षद् सीमानियम के अधीन कम्पनी के रूप में हो जाए तथा हम अपने नाम के सम्मुख लिखे हुए अंशों की संख्या कम्पनी की पूँजी में लेना स्वीकार करते है।"

पार्षद् सीमानियम में परिवर्तन
(Alteration or Change in Memorandum of Association)

सामान्यतः पार्षद् सीमानियम को एक अपरिवर्तनीय प्रलेख माना गया है। वास्तव में इसके अन्तर्गत दी हुई बातों का परिवर्तन आसानी से नहीं किया जा सकता। यह कहा जाता है कि "पार्षद् सीमानियम एक अपरिवर्तनीय प्रलेख है जिसमें परिवर्तन केवल राजनियम की व्यवस्थाओं के अनुसार ही किया जा सकता है।" (Memorandum of Association is an unalterable document alterable only in accordance with provisions of law)

नाम खण्ड में परिवर्तन

(Alteration of Name Clause)

कोई कम्पनी "विशेष संकल्प" पारित करके तथा केन्द्रीय सरकार की लिखित अनुमति प्राप्त करके अपना नाम परिवर्तित कर सकती है। परन्तु जब किसी सार्वजनिक कम्पनी की निजी कम्पनी में अथवा किसी निजी कम्पनी को सार्वजनिक कम्पनी में परिवर्तित किया जाता है और इसके फलस्वरूप कम्पनी के नाम में केवल 'प्राइवेट' शब्द जोड़ना या हटाना है तो ऐसा परिवर्तन करने के लिए केन्द्रीय साकार की अनुमति की आवश्यकता नहीं होती। धारा 21

यदि भूल या अन्य किसी कारण से कोई कम्पनी किसी ऐसे नाम से पंजीकृत कर दी जाती है, जो केन्द्रीय सरकार से मत में किसी अन्य विद्यमान कम्पनी से नाम से मिलता जुलता है या अवांछनीय है, तो ऐसी दशा में कम्पनी एक "साधारण संकल्प" पारित तथा केन्द्रीय सरकार से अनुमति प्राप्त करके उस नाम को बदल सकती है। उर्पयुक्त स्थिति में, कम्पनी के पंजीकरण के 12 महीने के अन्दर कम्पनी को पूर्व–कथित रीति से अपना नाम परिवर्तित कर लेना चाहिए जब तक कि उचित कारण होने पर केन्द्रीय सरकार उपर्युक्त अवधि को बढ़ा न दे। धारा 22

नाम में परिवर्तन का संकल्प पारित करने के 30 दिन के भीतर कम्पनी को इसकी एक प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के पास भेजनी होती है। इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि भी, आदेश की तिथि के 3 महीने के भीतर, रजिस्ट्रार के पास भेजनी होती है। इसक पश्चात् रजिस्ट्रार अपने "रजिस्ट्रर" में कम्पनी के पुराने नाम के स्थान पर नया नाम लिख देगा तथा इस नाम में कम्पनी को समामेलन का नया प्रमाण–पत्र जारी कर देगा। इस प्रमाण–पत्र के जारी किए जाने के बाद ही नया नाम प्रभावशाली होता है तथा कम्पनी नये नाम का प्रयोग करने की अधिकारी होती है। धारा 23)

पंजीकृत कार्यालय खण्ड में परिवर्तन

(Alteration of Registered Office Clause)

यदि कम्पनी के पंजीकत कार्यालय को एक ही नगर में एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना है तो इसके लिए संचालक–मंडल को एक संकल्प पारित करना होता है तथा परिवर्तन के 30 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार को नये पते की सूचना देनी होती है।

यदि कम्पनी के पंजीकृत कार्यालय को एक ही राज्य में एक नगर से दूसरे नगर में ले जाना है तो इसके लिए संचालक–मंडल को एक संकल्प पारित करना होता है तथा इसकी एक प्रतिलिपि 30 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार को भेजनी होती है। परिवर्तन कर लेने के 30 दिन के अन्दर पंजीकृत कार्यालय के नये पते की सूचना भी रजिस्ट्रार के पास भेजनी होती है।

विधि

(Procedure of Alteration)

1. एक विशेष प्रस्ताव पास करना चाहिए तथा इसकी प्रतिलिपि 30 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार के यहाँ भेजनी चाहिए।

धारा 17(1)

2. कम्पनी लॉ बोर्ड परिवर्तन की पुष्टि की जानी चाहिए धारा 17 (2)
3. कम्पनी लॉ बोर्ड परिवर्तन की पुष्टि करने से पूर्व इस सम्बन्ध में संतुष्ट होना चाहिए कि (अ) परिवर्तन से प्रभावित होने वाले सभी (ऋणपत्रधारी, लेनदार तथा अन्य सभी को) परिवर्तन की उचित सूचना दे दी गयी है, तथा (ब) कम्पनी के लेनदारों की स्वीकृति प्राप्त हो गई है या उनके ऋणों एवं दावों का भुगतान कर दिया गया है या उनके लिए जमानत का प्रबन्ध कर लिया गया है। धारा 17 (3)
4. कम्पनी लॉ बोर्ड परिवर्तन की पुष्टि सम्बन्धी इस आवेदन–पत्र के सम्बन्ध में रजिस्ट्रार को एक सूचना भेजेगा। रजिस्ट्रार को भी परिवर्तन के सम्बन्ध में अपनी आपत्तियों या सुझाव देने के लिए उचित समय दिया जाएगा।

धारा 17 (4)

5. कम्पनी लॉ बोर्ड अपनी राय के अनुसार निश्चित शर्तों पर परिवर्तन की आंशिक या पूर्ण पुष्टि का आदेश दे सकता है। धारा 17 (5)
6. कम्पनी लॉ बोर्ड सभी प्रकार के सदस्यों और लेनदारों के अधिकरों एवं हितों का ध्यान रखता है।
7. इस परिवर्तन या हस्तांतरण को स्वीकति देने वाले आदेश की प्रतिलिपि दोनों राज्यों के रजिस्ट्रारों को प्रस्तुत की जानी चाहिए तथा इन दोनों रजिस्ट्रारों को अपने–अपने रजिस्टरों में इस परिवर्तन का लेखा करना चाहिए। धारा 18 (3)
8. रजिस्ट्रेशन का प्रमाण–पत्र प्राप्त होने के बाद कम्पनी का रजिस्टर्ड कार्यालय नये स्थान पर स्थानान्तरण कर दिया जाता है। 30 दिन के अन्दर नये स्थान के पते की सूचना नये राज्य के रजिस्ट्रार को दे देनी चाहिए।

उद्देश्य वाक्य में परिर्वतन

(Alteration in Object Clause)

उद्देश्य वाक्य मं परिवर्तन करना अत्यनत कठिन है, क्योंकि विधान द्वारा इसके परिवर्तन के लिए सीमाएँ निर्धारित की गई हैं। ये सीमाएँ धारा 17 में दी गई हैं। इन सीमाओं के बाहर कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

कम्पनी अधिनियम की धारा 17 (i) के अधीन उद्देश्य वाक्य में परिवर्तन तभी किया जा सकता है, यदिः

1. परिवर्तन, व्यापार को अधिक कार्य–क्षमता से चलाने के लिए आवश्यक हो;
2. अपने मुख्य उद्देश्य को उन्नत साधनों द्वारा प्राप्त करने की आवश्यकता हो;
3. परिवर्तन, व्यवसाय के स्थानीय क्षेत्र को बढ़ाने के लिए आवश्यक हो;
4. किसी सहायक व्यवसाय को मुख्य उद्देश्य के साथ लाभ की दष्टि से शामिल किया जा सकता हो;
5. सीमानियम के किसी एक उद्देश्य को प्रतिबन्धित करने के लिए;
6. कम्पनी के व्यवसाय का समस्त या कोई भाग बेचने के लिए;

7. किसी अन्य कम्पनी या व्यक्तियों के समूह के साथ एकीकरण के लिए।

परिवर्तन की विधि (Procedure of Alteration): उद्देश्य वाक्य मं परिवर्तन करने के लिए निम्नलिखित विधि अपनाई जाती हैः

1. **विशेष प्रस्ताव (Special Resolution):** सर्वप्रथम कम्पनी के सदस्यों की साधारण सभा बुलाकर उसमें इस आशय का एक विशेष प्रस्ताव स्वीकार करना होगा तथा उसकी पुष्टि के लिए कम्पनी लॉ बोर्ड को भेजना होगा।

2. **कम्पनी लॉ बोर्ड द्वारा पुष्टिकरण (Ratification by Company Law Board):** इसके पश्चात् परिवर्तन के पुष्टिकरण हेतु कम्पनी लॉ बोर्ड (कम्पनी संशोधन अधिनियम 1974 द्वारा "न्यायालय" शब्द के स्थान पर कम्पनी लॉ बोर्ड का नाम दिया है।) के समक्ष आवेदन किया जाना चाहिए। परिवर्तन की पुष्टि करने से पूर्व कम्पनी लॉ बोर्ड निम्नलिखित बातों के बारे में सन्तुष्टि करेगाः

   (क) कि कम्पनी के ऋण–पत्रधारियों, लेनदारों व अन्य सभी व्यक्तियों को, जिनके हित परिवर्तन से प्रभावित होने वाले हों, समुचित सूचना दे दी गई है;

   (ख) कि परिवर्तन का विरोध करने वाले प्रत्येक लेनदार के ऋण का या तो भुगतान कर दिया गया है या उसकी सहमति प्राप्त कर ली गई;

   (ग) कि प्रस्तावित परिवर्तन की सूचना रजिस्ट्रार को भी दी गई है ताकि वह परिवर्तन के सम्बन्ध में अपने सुझाव या आपत्ति, यदि कोई हो, व्यक्त कर सकें; तथा

   (घ) कि कम्पनी के सदस्यों एवं लेनदारों के हितों को ध्यान में रखते हुए परिवर्तन उचित तथा न्याय संगत है।

   उपर्युक्त बातों से संतुष्ट होने के बाद कम्पनी लॉ बोर्ड, ऐसी शर्तों के अधीन जिन्हें वह उचित समझे, उस परिवर्तन को या तो पूर्णतः या अंशतः पुष्ट करते हुए आदेश जारी कर सकता है।

3. **परिवर्तन की रजिस्ट्री (Effect of Non-registration of Alteration):** बोर्ड द्वारा पुष्टि किए जाने की आज्ञा की एक प्रमाणित प्रतिलिपि तथा सीमानियम की छपी हुई एक प्रतिलिपि, बोर्ड की अनुमति की तिथि से 3 महीने के भीतर कम्पनी के रजिस्ट्रार के पास प्रस्तुत करनी पड़ती है। रजिस्ट्रार एक महीने के भीतर परिवर्तन का रजिस्ट्रेशन कर अपने हस्ताक्षरों से प्रमाणित करेगा। ऐसे रजिस्ट्रेशन के बाद ही परिवर्तन प्रभावशाली होगा। धारा 18

4. **परिवर्तन की रजिस्ट्री न करने का प्रभाव (Effect of Non-registration of Alteration):** यदि कम्पनी लॉ बोर्ड की अनुमती की तिथि के 3 महिने के अन्दर रजिस्ट्रेशन के लिए कार्यवाही नहीं की जाती है तथा कम्पनी ऐसे प्रपत्रों को रजिस्ट्रार को प्रस्तुत नहीं करती तो उक्त अवधि की समाप्ति पर सारी कार्यवाही व्यर्थ हो जाती है।

दायित्व खण्ड में परिवर्तन

(Alteration of Liability Clause)

सीमित दायित्व वाली कम्पनी अथवा गारंटी द्वारा सीमित कम्पनी के शेयरधारियों के दायित्व को उस समय तक असीमित नहीं किया जा सकता जब तक ऐसा करने के लिए प्रत्येक सम्बन्धित सदस्य स्पष्ट रूप से सहमत न हो। परन्तु यदि कम्पनी एक क्लब (Club) या उसके समान कोई अन्य संस्था है तो ज्ञापन–पत्र में ऐसा परिवर्तन वैध होगा जिसके फलस्वरूप सदस्यों द्वारा उच्चतर दर पर आवर्ती (recurring) या सामयिक चन्दा देने की व्यवस्था की जाए, भले ही सदस्य कथित परिवर्तन से आबाद्ध होन के लिए लिखित रूप में अपनी सहमति किया जा सकता है यदि अन्तर्नियमकवली ऐसा करने की अनुमति दे तथा सम्बन्धित अधिकारी अपने दायित्व को असीमित करने के लिए पूर्व सहमति प्रदान कर दें धारा 323। परिवर्तन संकल्प पारित करना तिथि से प्रभावशाली होगा। संकल्प पारित करने

के 30 दिन के अन्दर परिवर्तन की सूचना सम्बन्द्ध प्रपत्रों सहित रजिस्ट्रार के पास भेजी जानी आवश्यक है।

असीमित दायित्व वाली कम्पनी को सीमित दायित्व वाली कम्पनी के में परिवर्तित करने के लिए एक विशेष संकल्प पारित करना तथा न्यायालय की स्वीकति प्राप्त करनी होती है। विशेष सेकल्प पारित करने की तिथि के 30 दिन के अन्दर एक प्रतिलिपि तथा न्यायालय पुष्टिकरण आदेश तिथि के 3 महीने के अन्दर आदेश की एक प्रतिलिपि, रजिस्ट्रार के पास भेजी जानी चाहिए। परिवर्तन रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकरण करने की तिथि से प्रभावशाली होगा। यह उल्लेखनीय है कि उक्त परिवर्तन करने के लिए ज्ञापन–पत्र में दायित्व खण्ड नया जोड़ा जाता है क्योंकि असीमित दायित्व वाली कम्पनी के ज्ञापन पत्र में यह खण्ड मूल रूप से नहीं होता।

पूँजी वाक्य में परिवर्तन

(Alteration in Capital Clause)

कम्पनी अपने पूँजी वाक्य में भी परिवर्तन कर सकती है। परन्तु वह ऐसा तभी कर सकती है। जबकि इस सम्बन्ध से कम्पनी के अन्तर्नियम में आवश्यक प्रावधान हो। इस अन्तर्नियम में इस सम्बन्ध में कोई व्यवसायी न हो तो उस दशा में पहले अन्तर्नियम का परिवर्तन करके उसमें इसकी व्यवस्था करनी होगी। पूँजी की मात्रा में या तो वद्धि करने की या कम करने की आवश्यकता पड़ सकती है या उसके पुर्नगठन की आवश्यकता हो सकती है। तीनों दशाओं में पूँजी में परिवर्तन के लिए निम्न व्यवस्था है:

(अ) **पूँजी में वद्धि करना (Increase of Capital)** अन्तर्नियमों में व्यवस्था होने पर एक अंश–पूंजी वाली कम्पनी अपनी व्यापक सभा (General Meeting) में साधारण प्रस्ताव पास होने की दशा में इसकी सूचना 30 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार के पास भेज देनी चाहिए। इस परिवर्तन की सूचना न भेजने की दशा में कम्पनी तथा कम्पनी का प्रत्येक दोषी अधिकार 50 रूपये प्रतिदिन की दर से आर्थिक दण्ड का भागी हो सकता है धारा 97

(ब) **अंश पूँजी में कमी करना (Reduction of Share Capital):** अपने अन्तर्नियमों में व्यवस्था होने पर कोई भी अंश पूँजी वाली कम्पनी एक विशेष प्रस्ताव पास करके नये अंशों का निर्गमन करके अपनी पूँजी में वद्धि कर सकती है। पूँजी में वद्धि किये जाने का प्रस्ताव पास करके तथा कम्पनी लॉ बोर्ड से उसकी पुष्टि कराकर निम्नलिखित तरिके से अपनी अंश पूँजी में कमी कर सकती है: (i) जो अंश पूर्ण दत्त (Fully Paid) नही है, उनके उदत्त भाग की देयता को रद्द करके, (ii) जो पूर्णदत्त अंश नष्ट हो गया है, उसको रद्द (Cancel) करके, (iii) अधिक पूँजी को अंशधारियों को वापस (Pay of) करके, पूँजी में कमी की सकती है।

उपर्युक्त तरीकों से जिस कम्पनी की पूँजी में कमी कर दी जाए, उसके नाम के आगे यह वाक्य कि पूँजी 'और कम की गई' (And Reduced) जोड़ देना चाहिए।

(स) **पूँजी का पुनर्गठन करना (Re- oranisation of Share Capital):** निम्न कार्यवाहियों के द्वारा पूँजी का पुनर्गठन किया जा सकता है:

(i) पूर्णदत्त अंशों (Fully paid shares) को स्कन्ध (Stock) में बदलना।

(ii) स्कन्ध को पुनः पूर्णदत्त अंशों में बदलना।

(iii) पार्षद् सीमानियम द्वारा निर्धारित मूल्य से कम मूल्य के अंशों में उपविभाजित करना।

(iv) अंश–पूँजी को पार्षद् सीमानियम द्वारा निर्धारित मूल्य से अधिक मूल्य के अंशों में परिवर्तित करना।

इन सब स्थितियों में एक साधारण प्रस्ताव का पास करना पर्याप्त है जिसकी सूचना यथासमय रजिस्ट्रार को दे दी जाये।

यदि अन्तर्नियमों में एसी व्यवस्था नहीं है तो सर्वप्रथम विशेष प्रस्ताव पारित करके अन्तर्नियमों में परिवर्तन किया जाना चाहिए। अंशपूँजी में परिवर्तन सम्बन्धी प्रस्ताव होने की तिथि से 30 दिन के भीतर प्रस्ताव की एक प्रति के साथ परिवर्तित सीमानियम की प्रति रजिस्ट्रार की भेजी जानी चाहिए, जो परिवर्तित सीमानियम का रजिस्ट्रेशन कर लेगा। प्रस्ताव पारित करने की तिथि से ही परिवर्तन लागू हो जाता है।

अध्याय-4
पार्षद् अन्तर्नियम
(Articles of Association)

कम्पनी का दूसरा महत्वपूर्ण प्रलेख जो प्रवर्त्तकों द्वारा तैयार किया जाता है और समामेलन के उद्देश्य से रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है पार्षद् सीमा अन्तर्नियम है। कम्पनी का पार्षद् सीमानियम उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्रकट करता है जबकि अन्तर्नियम उन आन्तरिक नियमों को प्रस्तुत करता है जिनसे कि निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति का जा सके। पार्षद् सीमानियम कम्पनी का चार्टर होता है और मुख्य प्रलेख के रूप में स्वीकत किया जाता है जबकि अन्तर्नियम कम्पनी का सहायक प्रलेख माना जाता है।

कम्पनी अधिनियम धारा 2 (2) के अनुसार, "पार्षद् अन्तर्नियम का आशय एक कम्पनी के ऐसे पार्षद् अन्तर्नियम से है जो कि पिछले कम्पनी अधिनियमों अथवा इस अधिनियम के अधीन मूलरूप से बनाया गया अथवा समय–समय पर परिवर्तित किया गया हो।"

डिपार्टमेंन्ट ऑफ कम्पनीज अफेअरस के अनुसार, "पार्षद् अन्तर्नियम कम्पनी ओर उसके सदस्यों के बीच अनुबन्ध है जिसके अर्न्तगत सदस्यों के आपसी अधिकार निश्चित होते हैं।" ("The Articles of Association is a contract between the company and its members setting out the rights of members inter se under the contract."- Department of Company Affairs, 1st Nov., 1975)

पार्षद् अन्तर्नियम की उपुर्यक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि पार्षद् अन्तर्नियम कम्पनी के पार्षद् सीमानियम के अधीन बनाये गए ऐसे नियम तथा उपनियम हैं जिनसे कमपनी के आन्तरिक मामलों को नियन्त्रित एवं नियमित किया जाता है।

अन्तर्नियम की विशेषताएँ

(Characterstics of Articles of Association)

उपर्युक्त परिभाषा का विश्लेषण करने से अन्तर्नियम की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैः–

1. अन्तर्नियम कम्पनी के सीमानियम के अधिन होते हैं।
2. अन्तर्नियम एक सार्वजनिक प्रलेख है जिसका रजिस्ट्रार के पास रजिस्ट्रेशन होता है।
3. अन्तर्नियम कम्पनी के आन्तरिक नियम होते हैं तथा अंशधारियों के हित के लिए होते हैं।
4. अन्तर्नियम सदस्यों के आपसी अधिकारों से सम्बन्धित होते हैं।
5. अन्तर्नियम अफसरों (Officers) के कर्त्तव्यों, अधिकारों तथा शक्तियों को स्पष्ट करते हैं।
6. ये व्यापार के संचालन को नियंत्रित तथा नियमित करते हैं।
7. इनमें कम्पनी की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन किए जा सकते हैं, इसलिए ये परिवर्तनशील हैं।
8. इनमें कम्पनी के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सम्बन्धित साधनों तथा रीतियों का वर्णन होता है।
9. अन्तर्नियम कम्पनी तथा सदस्यों के पारस्परिक अधिकारों तथा इनके बीच पारस्परिक अधिकारों तथा इनके बीच पारस्परिक समझौते का कार्य करते हैं।

पार्षद् अन्तर्नियम की प्रकति, उद्देश्य एवं महत्व
(Nature, Objects and Importance of Articles of Associations)

पार्षद् अन्तर्नियम पार्षद् सीमानियम के सहायक माने जाते हैं। पार्षद् अन्तर्नियमों का प्रमुख उद्देश्य कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध को नियन्त्रित करना तथा कम्पनी के अधिकारों को परिभाषित करना है। पार्षद् अन्तर्नियमों का महत्व पार्षद् सीमानियम के सन्दर्भ में आँका जाता है। पार्षद् अन्तर्नियमों द्वारा कम्पनी की आन्तरिक व्यवस्था के सन्दर्भ में पूर्ण जानकारी प्रदान की जाती है। इसलिए पार्षद् अन्तर्नियमों को कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध का महत्वपूर्ण प्रलेख माना जाता है। इस प्रलेख का महत्व निम्नलिखित कारणों से और अधिक स्पष्ट होता है:

1. अन्तर्नियम में उन नियमों एवं उपनियमों का उल्लेख किया जाता है जो कम्पनी के उद्देश्यों को कार्य रूप देने में सहायक होते हैं। अतः अन्तर्नियमों कम्पनी के दैनिक प्रशसन की बाधाओं को दूर करने में सहायता करता है।
2. अन्तर्नियम कम्पनी के अधिकारियों तथा अशंधारियों के बीच में सम्बन्ध स्थापित करता है। प्रत्येक सदस्य कम्पनी को और कम्पनी प्रत्येक सदस्य को इन्हें मानने के लिए बाध्य कर सकती है। कम्पनी का एक सदस्य दूसरे सदस्य को भी इन्हें मानने के लिए कानूनी रूप से विवश कर सकता है।
3. कम्पनी के साथ अनुबन्ध करने वाले बाहरी व्यक्तियों को अन्तर्नियमों का ज्ञान होना चाहिए। अन्तर्नियमों का उल्लंघन होने पर वह अनुबन्ध को लागू नहीं करा सकता है। यदि अनुबन्ध करने के समय उसे अन्तर्नियमों के उल्लंघन का ज्ञान हो तो अनुबन्ध को लागू नहीं कराया जा सकता है।
4. कम्पनी कुछ कार्यों को तभी कर सकती है जबकि अन्तर्नियमों में उनको करने का अधिकार दिया गया हो; जैसे–अंशों का अपहरण करना। इस प्रकार कम्पनी के अन्तर्नियम कम्पनी के कार्यों का नियमन भी करते हैं।

कम्पनी के अन्तर्नियम इसके सीमानियम के सहायक माने जाते हैं और इसमें उल्लिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भिन्न–भिन्न नियमों की व्याख्या करते हैं। फलस्वरूप, ये सीमानियम की शर्तों व व्यवस्थाओं के प्रतिकूल नहीं हो सकते।

आवश्यकता अथवा अन्तर्नियमों को रजिस्टर कराने का दायित्व
(Necessity or the Obligation to Register Articles)

धारा 26 के अनुसार, "अंशों द्वारा सीमित पब्लिक कम्पनी की दशा में पार्शद् सीमानियम के साथ अन्तर्नियमों का रजिस्ट्रेशन कराना आवश्यक नहीं है। परन्तु, भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की कम्पनियों का रजिस्ट्रेशन होता है तथा सभी के लिए अन्तर्नियमों के रजिस्ट्रेशन के सम्बन्ध में निम्नलिखित अलग–अलग व्यवस्थाएँ हैं;

1. **अंशों द्वारा सीमित पब्लिक कम्पनी में आवश्यक न होना:** अंशों द्वारा सीमित पब्लिक कम्पनी के लिए समामेलन के समय अन्तर्नियम का रजिस्ट्रेशन कराना आवश्यक नहीं हैं। अन्तर्नियमों का बनाना इस प्रकार कम्पनी की इच्छा है अर्थात् अन्तर्नियमों का रजिस्ट्रेशन कराया भी जा सकता है और नही भी। यदि वह अपने अन्तर्नियमों का रजिस्ट्रेशन नहीं कराती है तो ऐसी अवस्था में कम्पनी अधिनियम की प्रथम अनुसूची की सारणी 'अ' (Table 'A' of Schedule I) स्वतः ही लागू हो जाती है। इस दशा में कम्पनी के पार्षद् सीमानियम पर 'बिना अन्तर्नियमों के रजिस्टर्ड (Registered Without Articles) लिखा जाना, आवश्यक है।
2. **अंशों द्वारा सीमित प्राइवेट कम्पनी में आवश्यक होना:** अंशों द्वारा सीमित प्राइवेट कम्पनी के अन्तर्नियमों में कम्पनी अधिनियम की धारा 3 (1)(iii) की व्यवस्थाओं का उल्लेख आवश्यक है। ये व्यवस्थाएँ हैं–(i) अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध, यदि कोई हो, (ii) कम्पनी के सदस्यों की संख्या, भूतपूर्व व वर्तमान कर्मचारियों को छोड़कर, 50 तक सीमित रखना, तथा (iii) अंशों तथा ऋणपत्रों को खरिदने के लिए जनता को आमांत्रित करने पर प्रतिबन्ध।

   अतः आवश्यक है कि ऐसी कम्पनी पार्षद् सीमानियम के साथ पार्षद् अन्तर्नियमों का भी रजिस्ट्रेशन कराए तथा उस पर उन्हीं व्यक्तियों के हस्ताक्षर होने चाहिए जिन्होंने पार्षद् सीमानियम पर हस्ताक्षर किए थे।
3. **गारंण्टी द्वारा सीमित कम्पनियों में आवश्यक होना:** गारंण्टी द्वारा सीमित कम्पनियों को पार्षद् सीमानियम के साथ पार्षद् अन्तर्नियमों की भी रजिस्ट्री कराना चाहिए। ऐसी कम्पनियों के अन्तर्नियमों में उन सदस्यों की संख्या का उल्लेख होना चाहिए जिससे कम्पनी का रजिस्ट्रशन हुआ या होगा।

4. **असीमित कम्पनियों में आवश्यक होना:** असीमित कम्पनियों के लिए आवश्यक है कि वह पार्षद् सीमानियम के साथ अपने अन्तर्नियमों की रजिस्ट्री भी कराए और उस पर उन्ही व्यक्तियों के हस्ताक्षर होने चाहिए जिन्होंने पार्षद् सीमानियम पर किए थे। यदि ऐसी कम्पनी में अंश पूँजी है तो पंजीकत की जाने वाली पूँजी की राशि का उल्लेख होना चाहिए।

पार्षद् अन्तर्नियमों की विषयवस्तु अथवा विषय-सामग्री
(Contents or Subject-Matter of Article of Association)

अन्तर्नियम कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध सम्बन्धी नियम एवं उपनियम मात्र होते हैं। साधारणतया अन्तर्नियमों में उन सब नियमों को सम्मिलित किया जाता है जो कम्पनी अधिनियम की अनुसूची की सारणी 'अ' में दिए हुए हैं–

1. सारणी 'अ' के कौन–कौन से नियम किस सीमा तक लागू होंगे?
2. प्रारम्भिक अनुबन्धों की पुष्टिकरण की विधि।
3. अंश पूँजी का विभिन्न अंशों में विभाजन, अंश हस्तान्तरण, अंश अपहरण, पूँजी में परिवर्तन तथा सदस्यों के मताधिकर।
4. अंशों के निर्गमन तथा आबंटन की विधि।
5. न्यूनतम अभिदान राशि का निर्धारण।
6. अंश प्रमाण–पत्र तथा अंश अधिपत्र निर्गमन की विधि।
7. अंशों पर याचना सम्बन्धी नियम।
8. अंश पूँजी में वद्धि, कमी तथा पुनर्गठन की विधि।
9. अभिगोपन कमीशन का भुगतान।
10. अंशों एवं ऋण–पत्रों पर कमीशन व दलाली का भुगतान।
11. अंशों का एकीकरण तथा उपविभाजन।
12. कम्पनी की सामान्य सभाओं की विधि, सूचना, कार्यवाहक संख्या, स्थगन, प्रोक्सी मतदान एवं सभापति सम्बन्धी नियम।
13. संचालकों की संख्या, नियुक्ति, योग्यताएँ, पारिश्रमिक, अधिकार तथा कर्त्तव्य।
14. लेखा पुस्तकें तथा उनके रखने की विधि।
15. सदस्यों को सूचना देने की विधि।
16. लाभों का पूँजीकरण।
17. अंकेक्षकों की नियुक्ति, अधिकार, कर्त्तव्य तथा उनका पारिश्रमिक आदि।
18. प्रबन्ध संचालक, संचालक, सचिव तथा मैनेजर की नियुक्ति सम्बन्धी प्रावधान।
19. संचालक मण्डल के अधिकर।
20. कम्पनी की सार्वमुद्रा का प्रयोग।
21. समापन सम्बन्धी व्यवस्था।

उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त कम्पनी अधिनियम की विभिन्न धाराओं में ऐसा प्रावधान है कि कम्पनी कुछ महत्त्वपूर्ण अधिकारों का प्रयोग तब तक नहीं कर सकती है जब तक कि कम्पनी के अन्तर्नियमों में उन अधिकारों के प्रयोग करने की व्यवस्था न हो जैसे–

1. भारत से बाहर कम्पनी की सार्वमुद्रा का प्रयोग। धारा 50
2. अंशों तथा ऋण–पत्रों के लिए कमीशन देने का अधिकार। धारा 76
3. शोध्य पूर्वाधिकार अंश निर्गमन करने का अधिकार। धारा 80

4. बिना माँगी हुई अदत्त पूँजी को स्वीकार करने का अधिकार। धारा 92
5. अंशों पर केवल दत्त राशि (Paip-up Capital) के अनुपात में ही लाभांश देने का अधिकार। धारा 93
6. अंश पूँजी में परिवर्तन का अधिकार।
7. अंश पूँजी में कमी करने का अधिकार। धारा 100
8. अंशधारियों के अधिकारों में परिवर्तन करने का अधिकार। धारा 106
9. कम्पनी सदस्यों अथवा ऋणपत्रधारियों के अंशों या ऋणपत्रों के हस्तान्तरण की रजिस्ट्री को अस्वीकार करने का अधिकार। धारा 111 (1)
10. अंश अधिपत्र (Share warrant) निर्गमन का अधिकार। धारा 114
11. अंश अधिकपत्रवाहक को निश्चित उद्देश्य के लिए कम्पनी का सदस्य मानने का अधिकार। धारा 115
12. शोधनीय ऋणपत्रों के भुगतान के बाद पुनः ऋणपत्र निर्गमन करने का अधिकार। धारा 121 (1) a
13. सदस्यों या ऋणपत्रधारियों का ब्रांच रजिस्टर विदेश में रखना। धारा 157
14. संचालकों की संख्या की सीमा निर्धारित करने के लिए; धारा 258
15. अतिरिक्त संचालकों की नियुक्ति करने के लिए; धारा 260
16. ~~संचालकों के आकस्मिक रिक्त होने वाले स्थानों की पूर्ति के लिए; धारा~~ 262
17. आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर संचालकों की नियुक्ति करने के लिए; धारा 265
18. न्यूनतम सदस्यों की संख्या के अभाव में कम्पनी की सभा को दूसरे सप्ताह करने के लिए; धारा 288
19. संचालकों का पारिश्रमिक; धारा 309
20. वैकल्पिक (Alternate) संचालकों की नियुक्ति के लिए; धारा 313
21. संचालकों आदि के दायित्व को असीमित करने के लिए; धारा 232
22. कम्पनी की सम्पत्ति का विवरण; धारा 511

इसी प्रकार के अधिनियम में अन्य अनेक अधिकार हैं।

पार्षद् अन्तर्नियमों का परिवर्तन
(Alteration of Articles of Association)

पार्षद् अन्तर्नियम कम्पनी के आन्तरिक नियम होते हैं, इनमें कम्पनी द्वारा आसानी से परिवर्तन किया जा सकता है। परन्तु परिवर्तन करते समय धारा ३१ की निम्न व्यवस्थाओं का पालन करना होता है;

1. **कम्पनी की स्थिति यथावत् रहने पर-** परिवर्तन नहीं होता है तो कम्पनी अपने अन्तर्नियमों को कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थाओं तथा अपने पार्षद् सीमानियम की शर्तो के अधीन एक विशेष प्रस्ताव द्वारा परिवर्तित कर सकती है।
2. **कम्पनी की स्थिति में परिवर्तन हो जाने पर-** यदि एक पब्लिक कम्पनी अपने अन्तर्नियमों में ऐसा परिवर्तन उस समय प्रभावशाली न होगा जब नक कि केत्द्रय सरकार की सहमति इस परीवर्तन के लिए प्राप्त न हो जाए। केन्द्रय सरकार की सहमति प्राप्त हो जाने पर कम्पनी को परिवर्तित अन्तर्नियमों की एक छपी हुइ प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के पास, सहमति प्राप्ति की तिथिा से एक महिने के अन्दर भेज देना चाहिए।

   अन्तर्नियमों में किया गया परिवर्तन उसी प्रकार र्वध होगा जैसे कि मूल अंतर्नियमों की दशा में होता है और इसे एक विशेष प्रस्ताव द्वारा उसी प्रकार फिर परीवार्तित किया जा सकता है।

अन्तर्नियमों के परिवर्तन पर प्रतिबन्ध

(Restrictions on the Alteration of Articles)

पार्षद अन्तर्नियमों में परीवर्तन करने के लिए कई प्रकार के नियमों का पालन करना है जिन्हें अनतर्नियमों के परिवर्तन पर प्रतिबन्ध कहा जा सकता है। ये प्रतिबन्ध र्वधानिक (Statutory), न्यायिक (Judicial) अथवा विधि सम्बन्धी (Procedural) हो सकते हैं, जो इस प्रकार हैंः

1. वैधानिक प्रतिबन्ध

(Statutory Restriction)

(i) ***विशेष प्रस्ताव वास करना (To Pass Special Resolution)–*** अन्तर्नियमों में कोई भी परिवर्तन केवल विशेष प्रस्ताव द्वारा ही किया जा सकता है। साधारण प्रस्ताव से कोई भी परिवर्तन नहीं किया जस सकता। यदि कम्पनी के अन्तर्नियमों में साधारण प्रस्ताव की व्यवस्था की भी गई है तो भी इस व्यवस्था का कोइ महत्व नहीं है।

धारा 31

(ii) ***परिवर्तन कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थओं के विपरीत नहीं होना चाहिए (Alteration Must not be Inconisistent with the Provisions of the Companies Act)***– अन्तर्नियमों में किया गया कोई भी परीवर्तन कम्पनी अधिनियम अथवा किसी भी प्रचलित राजनियम की व्यवस्थाओं के कवरुद्ध नहीं होरना चाहिए। यदि परिवर्तन इनके विरुद्ध है तो ऐसा परीवर्तन व्यर्थ मान ाजायेगा। धारा 31

(iii) **परिवर्तन पार्षद् सीमानियम के विपरीत नहीं होना चाहिए *(Alteration Must not be Inconsistent with Memorandum of Association)–*** अन्तर्नियम कम्पनी के पार्षद् सीमानियम के अधीन होते हैं और उसकी अवहेलना नहीं कर सकते। अतः अन्तर्नियमों में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता जो सीमानियम की व्यवस्थाओं या शर्तों का उल्लंघन करता हो। यदि परिवर्तन सीमानियम के प्रतिकूल है तो वह परिवर्तन अधिकारों के बाहर एवं व्यर्थ होगा। धारा 31

(iv) ***केन्द्रीय सरकार की सहमति (Consent of Central Government)–*** यदि अन्तर्नियमों में परिवर्तन किसी पब्लिक कम्पनी को प्राइवेट कम्पनी में परिवार्तित करने के लिए किया गया है तो चह उस समय तक प्रभावशाली नहीं होगा जब तक कि केन्द्रीय सरकार की सहमति प्राप्त न कर ली हो।

केन्द्रीय सरकार की अनुमति प्राप्त होने के एक महीने के अन्दर अन्तर्नियमें की छपी हुई प्रतिलिपि कम्पनी द्वारा रजिस्ट्रार के पास भेजना आवश्यक है। धारा 31 (2) (स)

(v) ***सदसयों की लिखित सहमति (Written Consent of Members)–*** यदि कम्पनी अन्तर्नियमों मे इस प्राकार रका परीवर्तन किया गया है जिसके कारण किसी सदस्य को अधिक अंश लेने पड़ते हैं अथवा उसका दायित्व बढ़ जाता है तो परिवर्तन तब तक प्रभावशाली नहीं होगा जब तक उस सदस्य की लिखित सहमति प्राप्त नकर ली गई हो। धारा 38

(vi) ***कम्पनी लॉ बोर्ड की आज्ञा (Confirmation by Company Law Board)–*** यदी कम्पनी अधिनियम की याराएँ 397 व 398 के अन्तर्गत तथा कुप्रबन्ध से सदस्यों को सरक्षण प्रदान करने के लिए कम्पनी लॉ बोर्ड कम्पनी को अन्तर्नियमों में परिवर्तन करने के लिए आदेश देता है। कम्पनी कोई ऐसा परिवर्तन करने के लिए आदेश देता है कम्पनी कोई ऐसा परिवर्तन नहीं कर सकती हो ऐसी आज्ञा के विपरीत या बाहर हो।

2. *न्यास सम्बन्धी प्रतिबन्ध (Judicial Restrictions)*

(i) ***सद्भावना से तथा कम्पनी के लाभ के लिए (In Good Faith and for Company's)–*** अन्तर्नियमों में किये गए परिवर्तन सद्भावना से तथा कम्पनी के लाभ के लिण होना चाहिए। यदि कोई परिवर्तन कम्पनी के सामान्य हित में न होकर किसी विशेष वर्ग या बहुसंख्यक अंशाधारियों के हित में है तो ऐसा परिवर्तन अवैध होगा।

(ii) ***परिवर्तन अवैध व्यापार के लिए नहीं किया जना चाहिए (Alteration Should not be for Illegal Business)*** अन्तर्नियमों में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए जो अवैधानिक हो। उदाहरणार्थ,

अन्तर्नियमों में कोई भी ऐसा परिवर्तन नहीं किया जा सकता जिससे की कम्पनी को कोई अवैध व्यापार चलाने का अधिकार मिल जाए, जैसे लॉटरी का व्यापार (जो कि राजनियम द्वारा वर्जित है)।

(iii) ***परिवर्तन अधि-संख्यक सदस्यों द्वारा अल्प-संख्यक सदस्यों पर कपट के लिए नहीं होना चाहिए (Alteration Should not be a Fraud on Minority by Mojority)***—यदि बहुसंख्यक सदस्य उल्पसंख्यक सदस्यों को दबाने या उनके साथ कपट करने के विचार से, अन्तर्नियमों में कोई ऐसा परिवर्तन करने हैं जिसके परिणमस्वरूप केवल उन्हीं को लाभ होता है और अल्पसंख्यक उस लाभ से वंचित रह जाते हों, तो न्यायालय उन्हें इस प्रकार का परिवर्तन करने की अनुमति नहीं देगा।

(vi) परिपर्तन के कारण किसी तीसरे पक्षकार के साथ अनुबन्ध का खण्डन नहीं होना चाहिए (Alteration Must not Cause Breach of Contract with Third Party)—मेकआर्थर बनाम गुल्फ लाइन (Mc Arthar Vs. Gulf line) के विवाद में दिए गए निर्णय के अनुसार कम्पनी के अन्तर्नियमों में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए जिससे ततीय पक्षकर के साथ किए गए अनुबन्ध का खण्डन होता हो। ऐसा करने पर कम्पनी को दूसदे पक्षकार को अनुबन्ध से हुई हानि की क्षतिपूर्ति करनीहोगी। इस प्रकार किसी सदस्य के आंशों को वैधरूप से लिसरे पक्षकार को हस्तांतरित करने के बाद, कम्पनी इन अंशों पर ग्रहणाधिरि (Lien) का प्रयोग करने के लिए अन्तर्नियमों में परिवर्तन नही कर सकती।

3. **विधि सम्बन्धी परिवर्तन (Procedural Restrictions)**

(i) ***रजिस्ट्रार को प्रस्ताव की प्रति भेजना (Srnding the Copy of Resolution to the Registrar)***—परिवर्तन के लिए विशेष प्रस्ताव पास करने की तिथि के 30 दिन के अन्दर प्रस्ताव की एक प्रतिलिपि रजिस्ट्रार को भेजी जानी चाहिए। धारा 192 (1)

(ii) ***परिवर्तित पार्षद् अन्तर्नियमों की प्रातिलिपि रजिस्ट्रार के पास भेजना (Sending the Copy of Altered Articles of Association to the Registar)***—अन्तर्नियमों में परिवर्तन के लिए केन्द्रय सरकार से अनुमति प्राप्त करने के एक महिने के अन्दर परिवर्तन की एक छपी हुई या टाइप प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के पास भेजी जानी चहिए। यदि कम्पनी इस नियम का उललंधत करती है तो कन्पनी तथा कम्पनी के प्रत्योक अधिकारी पर, जो इसका दोषी है, 50 रुपये तक आर्थिक इण्ड इगाया जा सकता है।

(iii) ***परिवर्तित पार्षद् अन्तर्नियमों की प्रातिलिपि सदस्यों को भेजना (Sending Copy of Altered Areticles of Association to members)***—एक कम्पनी के सदस्य द्वारा प्रार्थना किए जाने पर तथा एक रुपया प्रत्येक प्रतिलिपि के लिए शुल्क जमा कर देने पर कम्पनी आवेदन के 7 दिन के अन्दर परिवर्तित अन्तर्नियमों की प्रतिलिपि उस सदस्य के पास भेज देगी। धारा 39

(iv) ***पार्षद अन्तर्नियमों की प्रतिलिपि में सभी परिवर्तनों का समावेश होना चाहिए ;।सस ंसजमतंजपवदे उनेज इम पदबसनकमक पद जीम बवचल वि ंतजपबसमे वि ंवबपंजपवदद्ध***—जब कम्पनी के पार्षद्अन्तर्नियमों में परिवर्तन कर लिया जाता है तो परिवर्तन की तिथि के बाद जो भी इसकी प्रतिलिपि निग्रमित की जाती ह। वह परिवर्तन के अनुसार जोती चाहिए। यदि कम्पनी प्रतिलिपियों को परिवर्तन के अनुसार नहीं भेजती है तो कम्पनी और कम्पनी के पंत्योक अफसर पर, जो इसका दोषी है, प्रत्येक दोष के लिए 10 रुपये तक आर्थिक दण्ड लागाया जा सकता है। धारा 40

पार्षद सीमानियम एवं अन्तर्नियमों के वैधनिक प्रभाव

(Legal Effects of Memorandum and Atricles)

सीमानियम थिा अन्तर्नियम के वैधानिक प्रभावों के सम्बन्ध में कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 36 के अन्तर्गत यह कहा गया है कि—

''पंजीकृत होने के बाद सीमानियम और अन्तर्नियम कम्पनी तथा इसके सदस्यों को इस तरह से बाध्य (Bind) करने हैं जैसे कि उन पर कम्पनी तथा प्रतेक सदस्य ने हस्ताक्षर किए हों और उनहोंने उनकी समस्त प्रावधनों को मानने की स्वीकृति दी हो। धारा 36 (1)

पार्षद सीमानियम या अन्तर्नियम के अधीन किसी भी सदस्य द्वारा कम्पनी को दिया गया धन कम्पनी के लिए ऋण की तरह माना जएगा। धरा 36 (2)

उपर्युक्त प्रावधानों का यह प्रभाव होता है कि कम्पनी के सीमानियम और अन्तर्नियमों के द्वारा कम्पनी थिा सदस्यों के बीच अनुबन्धीय (Contractual Relation) उत्पन्न होते हैं–

1. कम्पनी के सदस्यों का कम्पनी के प्रति (Members to the Company)
2. कम्पनी का सदस्यों के प्रति (Company to the Member)
3. सदस्यों में आपस में (The Members interse)
4. कम्पनी का बाहरी व्यक्तियों के प्रति (Company to the outsiders)

1. **सदस्य का कम्पनी के प्रति बाध्य होना (Members is Bound to the Company):** कम्पनी का प्रत्येक सदस्य सीमानियम तथा अन्तर्नियमों की व्यवस्थाओं का पालन करने के लिए एक वैधानिक वचन द्वारा कम्पनी के प्रति बाध्य है। यदि वह इन व्यवस्थाओं का खण्डन करता है तो इसके लिए वह उत्तरदायी होगी। कोई भी सदस्य कम्पनी को ऐसे कार्य करने से रोकने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है जो 'अधिकारों के बाहर' (ultra-vires) हो। चदि कम्पनी अनियमित रूप से किसी सदस्य के अंश जब्त कर लेती है तो वह उस सदस्य द्वारा वाद प्रस्तुत करने पर निरस्त (repudiate) कर दिया जाएगा।

3. **सदस्यों की परस्पर बाध्यता (Binding Between Membrs or Members Inter se):** कम्पनी अधिनियम इस सम्बन्ध में मौन है कि प्रत्येक सदस्य किस सीमा तक अन्तर्नियम द्वारा एक दूसरे को बाध्यता करता है। अन्तर्नियम और/अथवा सीमानियम कम्पनी के सदस्यों के मध्य परस्पर कोई स्पष्ट समझौते का निर्माण नहीं करते। यही कारण है कि सामान्य स्थिति में कम्पनी के प्रति किसी गलत कार्य का उपचार प्राप्त करने के लिए अथवा कम्पनी के किसी प्राप्य धन को प्राप्त करने के लिए, एक सदस्य दूसरे सदस्य पर वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता। उक्त दशाओं में वाद प्रस्तुत करने का अधिकार केवल कम्पनी को है और, यदि कम्पनी समापन की स्थिति में है तो उसके निस्तारक (Liquidator) द्वारा ही प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यदि कोई अंशधारी याचना–राशि का भूगतान नहीं करता तो केवल कम्पनी ही उस पर दावा कर सकती है, और यह उचित भी है क्योंकि यदि अन्य अंशधारियों को उस पर दावा करने की अनुमति दे दी जाए तो उसके विरुध हजारों दावे (यदि सदस्यों की संख्या इतनी अधिक हो) किऐ जा सकते हैं जो असंगत होगा और कम्पनी का दैनिक कार्य संचालन कठिन हो जायेगा।

   यद्यापि कम्पनी के पार्षद् सीमानियमों और पार्षद अन्तर्नियमों के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से सदस्यों में आपस में कोई सम्बन्ध सपित नहीं होता है परन्तु फिर भी कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियम कम्पनी के एक सदस्य और दूसरे सदस्य में अप्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करते हैं और कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियमों की व्यसस्थाओं के अन्तर्गत सदस्य एक–दूसरे के प्रति उत्तरदायी होते हैं। अतः कम्पनी के प्रत्येक सदस्य को कमपनी के पार्षद् अन्तर्दियमों का पालन करना चाहिए। यदि कुछ समय सदस्य इन नियमों का पालन नहीं करते हैं तो अन्य सदस्य कम्पनी के निस्तारण के सकय इस पर वाद प्रस्तुत पर सकने हैं।

4. **कम्पनी अथवा सदस्यों का बाहरी व्यक्ति के प्रति बाध्य न होना (Neither the Company nor the Members are Bound to Outsiders):** बाहरी व्यक्ति से आशय ऐसे व्यक्ति से है जो कम्पनी का सदस्य दहीं है। अन्तर्नियम कम्पनी तथा बाहरी बाहरी व्यक्तियों के बीच अनुबन्ध का निर्माण कर सकते हैं। कोई भी बादरी व्यक्ति किसी उन्तर्नियम को आधार मानकर कम्पनी के विरूद्ध दावा नहीं कर सकता। इस प्रकार कम्पनी के पार्षद् सीमानियम तथा अन्तर्नियम बाहरी व्यक्तियों व तीसरे पक्षकारों (Outsiders or third parties) के बीच अनुबंधीय सम्बन्ध (Contractual Relations) स्थापित नहीं करते हैं।

पार्षद् सीमानियम व अन्तर्नियम में अंतर

(Distinction Between Memorandun and Article)

पार्षद् सीमानियम व अन्तर्नियम में अंतर

यद्यपि दोतों ही प्रलेख कम्पनी का व्यवहार प्रारम्भ करने के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं फिर भी दोनों में कुछ आधारभूत अन्तर हैं जोकि निम्न हैं–

1. पार्षद् सीमानियम कम्पनी का चार्टर होता है और कम्पनी तथा बाहरी जगत् में सम्बन्ध स्थपित करता है जबकि अन्तर्नियम सहायक प्रलेख होता है तथा कम्पनी अैर सदस्यों में सम्बन्ध स्थपित करता है।
2. सीमानियम उद्देश्यों की विवेचना करता है तथा कार्यक्षेत्र का निर्धारण करता है जबकि अन्तर्नियम कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध के लिए बनाया जाता है।
3. पार्षद सीमानियम एक महत्त्वपूर्ण प्रलेख होने के नाते इसमें परिवर्तन करना आसान नहीं जबकि अन्तर्नियम सहायक प्रलेख होने की वजह से कवशेष प्रस्ताव पास करके परिवर्तित किया जा सकता है।
4. समामेलन के लिए सीमानियम की रजिस्ट्रार के सुपूर्दगी सभी कम्पानियों के लिए अनिवार्या ह। जबकि अंशों द्वारा सीमीत कम्पनी के लिए अन्तर्नियम की सुपुर्दगी अनिवार्य नहीं ह। तथा उसी स्थिति में Table A लागू हो जाती जै।
5. पार्षद् सीमानियम के विरुद्ध किए गए कार्य पूर्णस्वरूप से व्यर्थ होते हैं जोकित अन्तर्नियम के विरुद्ध किए गए कार्यो की पुष्टि की जा सकती ह। यदि वह कार्य सीमानियम के अन्तर्गत हो।
6. यदि कोई अनुबन्ध सीमानियम के विरुद्ध कम्पानी के साथ कर लिया गया ह। जो कम्पनी को उस अनुबन्ध को पूरा करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता लेकिन यदि अनूबन्ध अन्तर्नियम के कवरुद्ध है तो उसके पूरा करने के लिए कम्पनी को बाध्य किया जा सकता है।

सीमानियम तथा अन्तर्नियमः सार्वजतिक प्रलेख

(Memorandum and Articles : Public Documents)

कम्पनी के सीमानियम तथा अन्तर्नियमों का रजिस्ट्रार के कार्यालय में रजिस्ट्रेशत हो जाने पर वे सार्वजनिक प्रलगख बन जरते हैं। चूँकी ये सार्वजनिक प्रलेख हैं, अतः कम्पनी के साथ व्यवहार करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उन्हें देखने का अधिकार हैं। धारा 610 के अनुसार कोई भी व्यक्ति सीमानियम तथा अन्तर्नियमों के प्रन्योक निरीक्षण के लिए एक रुपया शुल्क (Fee) देकर इनका निरीक्षण कर सकता है और यदि इनमें से कुछ नोट करना चाहे जो कर सकता है।

रचनात्मक सूचना तथा आंतरिक प्रबन्ध का सिद्धान्त

(Constructive Notice and Docrtine of Indoor Management)

रचनात्मक सूचना

(COnstructive Notice)

साधरणतया नियम यह है कि प्रत्येक बाहरी व्यक्ति को कम्पनी के साथ सम्बन्ध स्थापित करने से पहले कम्पनी के सीमानियम तथा अन्तर्नियमों को भली–भाँति समझ लेना चाहिए।

न्यायालय भी इस बात को मानता है कि जो व्यक्ति कम्पनी के साथ व्यवहार कर रहा है सीमानियम तथा अन्तर्नियमों की सूचनाओं को जानता है। यह भी मान लिया जाता है कि उन व्यक्तियों ने इन प्रलेखों को केवल पढ़ ही नहीं लिया है बल्कि इनके उचित आशय को समझ भी लिया है। अतः इन व्यक्तियों को इन प्रलेखों की विषय–सामग्री

की सूचना पार्षद् सीमानियम तथा पार्षद् अन्तर्नियमों के सम्बन्ध मे रचनात्मक सूचना (Constructive notice of memorandum and articles) कही जाती है।

यदि कोई व्यक्ति कम्पनी के साथ सम्पर्क स्थापित करने के पश्चात अन्तर्नियमों की अनभिज्ञता के कारण हानि उठाता है तो इसका परिणाम उसी को सहन करना पड़ेगा। उदाहरण के लिए, यदि अन्तर्नियमों में यह व्यवस्था है कि एक विनिमय–पत्र पर दो संचालकों के हस्ताक्षर होने की आवश्यकता है, तो एक व्यक्ति, जिसके पास केवल एक संचालक द्वारा हस्ताक्षरित विनिमय पत्र है, उस पर भुगतान प्राप्त करने का अधिकारी नही है।

आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धान्त

(Doctrine of Indoor Management)

रचनात्मक सूचना के सिद्धान्त का एक अपवाद है जिसे आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धान्त कहते हैं। सीमा नियम तथा अन्तर्नियमों मे दी हुई व्यवस्थाओं के लिए उचित कार्यवाही की या नही, यह क्रिया आन्तरिक प्रबन्ध से सम्बन्धित है। कम्पनी के साथ सद्भावनापुर्व व्यवहार करने वाले बाहरी व्यक्तियों को यह मान लेने का अधिकार है कि सभी आन्तरिक कार्यवाहियाँ नियमानुसार कर ली गई हैं। उनका यह उत्तरदायित्व तो है कि वे कम्पनी के सीमानियम तथा अन्तर्नियमों को इस बात का पता लगाएँ कि प्रस्तावित व्यवहार तथा उन प्रलेखों मे कोइ असंगति अथवा विरोधाभास नही है। परन्तु वे इससे अधिक कुछ करने को बाध्य नही हैं। चूँकि बाहरी व्यक्ति कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध से कोई सम्बन्ध नहीं रखते हैं।

बाहरी व्यक्तियों को यह मान लेने का अधिकार प्राप्त है कि कम्पनी का आन्तरिक प्रबन्ध नियमित रुप से चल रहा है। इस प्रबन्ध के औचित्य पर शंका करना बाहरी व्यक्तियों का कर्त्तव्य नही है।

आन्तरिक संचालन के सिद्धान्त के अपवाद

(Exceptions to Doctrine of Indoor Management)

1. **अनियमितता का ज्ञान (Knowledge of Irregularity)** –एक व्यक्ति को जो कि कम्पनी के साथ रह रहा है, यदि इस अनियमितता का ज्ञान है कि कम्पनी जो कार्य कर रही है वह अधिकारों के विरूद्ध है तो उसे आन्तरिक संचालन सिद्धान्त के अन्तर्गत लाभ प्राप्त करने का अधिकार नही है।
2. **लापरवाही आन्तरिक संचालन के सिद्धान्त (Negligence)**–अगर कोई व्यक्ति कम्पनी का सीमानियम और अर्न्तनियम देखने का कष्ट नही करता और अनियमितता के बारे मे कोई छानबीन नही करता तो उसे आन्तरिक संचालन सिद्धान्त के अन्तर्गत लाभ प्राप्त करने का अधिकार नही है।
3. **जालसाजी (Forgery)**–यह सिद्धान्त उस समय लागु नही हुआ माना जाता तबकि उस प्रलेख मे जो कि बाहरी जगत द्वारा विश्वास किया गया है, कोइ मिथ्या वर्णन न हो। यदि कम्पनी के अधिकारियों द्वारा कोई छल–कपट किया जाता है तो उसके लिए कम्पनी उत्तरदायी नही होती।
4. **अन्तर्नियमों की अनभिज्ञता (No Knowledge of Articles)**–इस सिद्धान्त का प्रयोग ऐसे व्यक्ति के पक्ष मे नही किया जा सकता जिसने वास्तव मे पार्षद अर्न्तनियमों को नही देखा और उन पर विश्वास करके कार्य नही किया। सामान्य जानकारी होने के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण बात यह है कि बाहरी व्यक्ति को कम्पनी के उस व्यक्ति की प्रत्यक्ष अधिकार की जानकारी अवश्य होनी चाहिए जिसके द्वारा कम्पनी के साथ अनुबन्ध कर रहा है।
5. **प्रत्यक्ष अधिकार से बाहर (Beyond Apparent Authority)**–यदि कम्पनी की तरफ से उसका एजेन्ट तीसरे पक्ष के साथ अपने अधिकारों की सीमा के बाहर अनुबन्ध करता है तो उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर होने के कारण व्यर्थ होगा। कम्पनी ऐसे अनुबन्धों के लिए बाध्य नही होती। [Annand Bihari Lal Vs. Dinshaw & Co., A.I.R. 1942]।

अधिकार के बाहर का सिद्धान्त

(The Doctrine of Ultra-vires)

कम्पनी के ऐसे कार्य जो कम्पनी अन्तर्नियम अथवा सीमानियम या पार्षद अन्तर्नियम के क्षेत्र से परे होते हैं अन्तर्नियम 'अनाधिकत क्रियाएँ' या 'अधिकारों से बाहर कार्य' कहलाते हैं। प्रत्येक कम्पनी का निर्माण कुछ कार्यो को ही करने के लिए होता है। यह कार्य कम्पनी के सीमानियम के उद्देश्य वाक्य मे दिए होते हैं। अतः कम्पनी का कार्य–क्षेत्र कम्पनी के सीमा नियम मे वर्णित किया गया है या उद्देश्य वाक्य से स्पष्ट रूप से सम्बन्धित नहीं है। अतः यदि कम्पनी द्वारा ऐसा कोई कार्य किया जाता है जो उद्देश्य वाक्य मे नही दिया गया है या उससे सम्बन्धित नही है या उसके विपरित है अथवा अधिनियम के विरूद्ध है तब ऐसा कार्य 'अनाधिकत कार्य', 'अधिकारों से बाहर किया हुआ कार्य' अथवा 'शक्ति के बाहर' का कार्य कहलाता है। अधिकारों के बाहर किया हुआ कार्य व्यर्थ होता है और उसका कोई वैधनिक प्रभाव नही होता है। ऐसे कार्यो को कम्पनी के सभी सदस्यों की सर्वसम्मति से भी वैध नही बनाया जा सकता है, और न ही ऐसे कार्यो की पुष्टि की जस सकती है।

इस सिद्धान्त की मुख्यतः दो उद्देश्य हैं–

(i) यह अशंधारियों के हितों की रक्षा करता है। इससे वह सन्तुष्ट रहते हैं कि उनकी पूंजी का केवल उन्हीं कार्यो के लिए प्रयोग किया जायेगा लिरका उल्लेख सीमानियम के उद्देश्य वाक्य में किया गया है। (ii) यह कम्पनी से व्यवहार करने पाले बाहरी व्यक्तियों जैसे लेनदार आदि के हितों की रक्षा करता है क्येंकि उन्हें विश्वास होता है कि उनके द्वारा दी गई राशि का दुरूपयोग नहीं किया जायेगा।

सारांश में 'अनाधिकृत कार्यो' अथवा 'अधिकारों से बाहर कार्यो' के निम्न ४ रूप हो सकते हैं–

1. **यदि कार्य कम्पनी अधिनियम के बाहर है (Ultra vires Companies Act)**–यदि कम्पनी कोई ऐसा कार्या करती है जो कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत 'अधिकारों से बाहर है'; जेसे–पूँजी से लाभांश का भुगतान करना, कानूनी औपचारिकताओं के बिना पूँजी में कमी करना, गैर कानूनी ढंग से पूँजी का निर्गमन करना आदि, तो ऐसी स्थिति में समस्त अंशधारी मिलकर भी उसकी पुष्टि कर दें तब भी इस कार्य को वैध नहीं बनाया जस सकता। इस सम्बध में निम्न वाद महत्त्वपूर्ण है–

   A Lakshmanswami Mudaliar Vs. L.I.C. of India, Air. (1963) S.C. 1185.

2. **ऐसा कार्य जो पार्षद् सीमानियम के बाहर है (Ultra-vires the Memorandum of Association)**–ऐसे कार्या पूारी तरह व्यर्थ (void) होता है। इनका कोई कानूनी प्रभाव नहीं होता चाहे सभी सदस्य इसकी पुष्टि कर दें।

3. **यदि कोई कार्या अन्तर्नियमें के बाहर है (Ultra-vires the Article of Association)**– ऐसे कार्य जो पार्षद् अन्तर्नियमों से बाहर हैं लेकिन पार्षद् सीमानियम के अन्तर्गत होते हैं तो साधारण सभा में एक विशेष प्रस्ताव स्वीकृत करके अन्तर्नियमों में परिवर्तन करके ऐसे कार्यो की पुष्टि की जा सकती है।

4. **यदि कोई कार्य संचालकों की शक्ति से बाहर होते हैं (Ultra-vires the Director)**–ऐसे कार्य जो संचानलकों को दिए गए अधिकारों से बाहर हैं किन्तु कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत हैं तो समस्त अंशधारियों द्वारा मिलकर कम्पनी की साधारण सभा में प्रस्ताव मास करके पूष्टि कर सकते है।

   कोई कार्य कमपनी के अधिकार क्षेत्र के अन्दर है अथवा नहीं, यह एक तथ्य सम्बन्धी प्रश्न है। इसका निर्णय इस बात पर निर्भर करता ह। कि पार्षद् सीमानियम में की गई शब्दावली अर्थ क्या लगाया जाता है। लोकिन एक बाहरी व्यक्ति अधिकार के गर्भित आश्वासन को भंग करने के अभियोग में संचालकों को वयाक्तिगत रूप

से उत्तरदायी ठहरा सकता है, चाहे सम्बान्धित व्यवहार कम्पनी या संचालकों को दी गई शक्ति, अधिकारों के बाहर हो।

अधिकारों के बाहर व्यवहारों का प्रभाव

(Effects of Utra-vires Transaction)

यद्यपि अधिकारों के बाहर कार्य व्यर्थ होते हैं लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि कम्पनी और उसके अधिकरियों का कोई दिायित्व नहीं होता। दायित्वों का विचार निम्न सन्दर्भ में किया जा सकता हैः

1. **व्यर्थ अनुबन्ध (Void Contract)**– कम्पनी के अधिकारों के बाहर किया गया कार्य पूर्ण रूप से व्यर्थ है और एक व्यर्थ कार्य का कम्पनी के सभी सदस्यों की सहमति से भी पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता। अतः कम्पनी ऐसे कार्यो के लिए बाध्य नहीं हैं।
2. **निषेधज्ञा (Injunction)**- यदि कम्पनी अंशधारियों द्वारा विनियोजित धन का प्रयोग सीमानियम में वर्णित उद्देश्यों के बाहर करती है तो कम्पनी का कोई भी सदस्य इस सम्बन्ध में न्यायालय से निषेधाज्ञा प्राप्त कर सकता ह। और उस कार्य को करने से कम्पनी को अथवा संचालकों को रोक सकता है।
3. **संचालकों का व्यक्तिगत दायित्व (Personal Liability of Directors)**– कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत कम्पनी के धन को उसके अधिकत उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयोग किया जा सकता है। अतएव यदि कम्पनी का कोई संचालक कोई अनाधिकत भुगतान कर देता है तो उसे ऐसी धन–राशि का वापस करने के लिए विवश किया जा सकता है। परन्तु यदि यह सिद्ध कर दिया जाये कि पाने वाले को इस बात का पता था कि भुगतान कम्पनी को शक्ति के बाहर है तो संचालक पाने वाले से क्षतिपूर्ति कराने का अधिकारी है।
4. **अधिकारों के बाहर प्राप्त की गई सम्पत्ति (Ultra-vires Acquired Property)** - यदि सम्पत्ति खरीदने में कम्पनी के धन का अधिकार के बाहर प्रयोग किया गया है तो कम्पनी का सम्पत्ति पर अधिकार सुरक्षित रहेगा। क्योंकि यद्यपि वह सम्पत्ति दोषपूर्ण ढ़ग से प्राप्त की गई है, किन्तु सामूहिक पूँजी का प्रतिनिधित्व करती है। अधिकारों के बाहर प्राप्त की गई सम्पत्ति के सम्बन्ध में कम्पनी की स्थिति अवयस्क की तरह होती है।
5. **अधिकार का आश्वासन भंग (Breach of Warranty of Authority)** – संचालक कम्पनी के एजेण्ट होते है अतः इनका यह कर्त्तव्य है कि वे कम्पनी के अधिकारों के अन्तर्गत ही कार्य करें। यदि वे किसी बाहरी व्यक्ति को कम्पनी के साथ ऐसे अनुबन्ध करने के लिए प्रेरित करते हैं जिसके लिए कम्पनी को अधिकार नहीं है तो इस व्यक्ति को होने वाली सभी हानि के लिए संचालक उत्तरदायी होंगे।
6. **अधिकारों के बाहर गलत कार्य (Ultra-vires Torts)**– यदि कम्पनी के कर्मचारी सीमानियम के उद्देश्य वाक्य के बाहर किसी व्यापार के सम्बन्ध में कोई गलत कार्य (जैसे किसी व्यक्ति या सम्पत्ति को हानि पहुंचाना) करते हैं तो कम्पनी को उसके लिये उत्तरदायी ठहराई जा सकती है जो कि उन्होंने कम्पनी के कानूनी कारोबार को करने के दौरान किये हों।

अधिकारों से बाहरी सिद्धान्त के अपवाद

(Exceptions to the Doctrine of Ultra-vires)

ये अपवाद निम्नलिखित हैं–

1. यदि कोई कार्य संचालकों के अधिकारों के अधिकारों की सीमा के बाहर है और कम्पनी के अधिकार–क्षेत्र के अन्दर है तो इसकी पुष्टि की जा सकती है।

2. यदि कोई कार्य कम्पनी के अन्तर्नियम के बाहर है तो अन्तर्नियम में परिवर्तन करके इसकी पुष्टि की जा रही है।
3. यदि कार्य अनियमित ढ़ग से किया गया है लेकिन कम्पनी के कार्य–क्षेत्र के अन्दर है तो सभी अंशधारी मिलकर इसकी पुष्टि कर सकते है।
4. यदि कम्पनी किसी व्यक्ति को अधिकार से बाहर अनुबन्ध के अन्तर्गत रूपया उधार प्रदान करती है तो उसकी वसूली के लिए दावा कर सकती है।
5. यदि कम्पनी किसी अन्य पक्ष से अधिकार से बाहर अनुबन्ध के अन्तर्गत ऋण लेती है और इस ऋण का उपयोग अपने उन ऋणों के भुगतान करने के लिए करती है जो कि कार्य–क्षेत्र में आते हैं तो ऋण देने वाला उस लेनदार का स्थान ले लेता है जिसे अदायगी दी गई है।
6. यदि कम्पनी के संचालकों ने मिथ्य वर्णन करके अधिकार से बाहर ऋण प्राप्त कर लिया है तो ऋण की अदायगी के लिए संचालक व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होंगे।

अधिकत कार्यो का सिद्धान्त

(Doctrine of Intra vires)

ऐसे कार्य जो कम्पनी के सीमानियम तथा कम्पनी के अन्तर्नियमों के कार्यक्षेत्र में होते हैं उनको अधिकत कार्य कहते हैं। इन कार्यो के लिए कम्पनी ठीक उसी प्रकार बाध्य होती है जिस प्रकार कि एक एजेण्ट के कार्ये के लिए उसका नियोक्ता उत्तरदायी कार्यो के लिए कम्पनी द्वारा सीमानियम के उद्देश्यों को प्राप्त करने की सीमा में किये गए सभी कार्यो के लिए कम्पनी उत्तरदायी होती है। कम्पनी को अपने कार्य संचालन के लिए रूपया उधार लेने, भूमि को बेचने, सम्पत्तियों को गिरवी रखने के गर्भित अधिकार प्राप्त होते हैं। कम्पनी को कुछ कार्यो के लिए अधिकार अन्तर्नियमों द्वारा दिए जाते हैं, जैसे–अंशों का निर्गमन, संचालकों की नियुक्ति, अंशों का अपहरण करना आदि।

3. कम्पनी की ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा।
4. कम्पनी की ओर से किसी अन्य संस्था द्वारा, जैसे–
   1. स्टेट बैंक आफ इण्डिया का मर्चेण्ट बैंकिंग विभाग (S.B.I. Mutual Fund Ltd.)
   2. विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं के द्वारा,
   3. राज्य की वित्तीय संस्थाओं के द्वारा (S.F.Cs.)
   4. अभिगोपक (Under writers)
5. एक व्यक्ति के द्वारा या उसकी ओर से किसी अन्य संस्था द्वारा जिसकी रूचि कम्पनी के पंजीकरण में है।
6. निर्गमन गह (Issue House) द्वारा जनता के लिए विक्रय–प्रस्ताव (Offer for sale)।

क्या प्रविवरण का निर्गमन आवश्यक है?
(Is the Issue of Prospectus Compulsory)

यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक कम्पनी प्रविवरण निर्गमित करे। एक निजी कम्पनी पर जनता के लिए अंश व ऋण–पत्र बेचने का प्रस्ताव करने पर प्रतिबन्ध होता है इसलिए वह प्रविवरण निर्गमित नहीं कर सकती। लेकिन एक अंशों द्वारा सीमित सार्वजनिक कम्पनी पूँजी जनता से प्राप्त करती है उसके लिए प्रविवरण निर्गमित करना आवश्यक है, परन्तु जिस कम्पनी के संचालक अपनी पूँजी निजी साधनों से एकत्रित करते हैं उसके लिए प्रविवरण निर्गमित करना आवश्यक नहीं है, लेकिन उसे भी रजिस्ट्रार के पास प्रविवरण का स्थानापन्न विवरण–पत्र (Statement in lieu of Prospectus) भेजना पड़ता है।

प्रविवरण का निर्गमन कब आवश्यक नहीं?
(When Prospectus Need not be Issued?)

निम्नलिखित अवस्थाओं में प्रविवरण को जारी करने की आवश्यकता नहीं होतीः

1. जबकि अंशों व ऋण–पत्रों का निर्गमन केवल विद्यमान अंशधारियों अथवा ऋण–पत्रधारियों को जाना हो।
2. यदि ऐसे अंशों तथा ऋणपत्रों का निर्गमन होना हो जो पहले निर्गमित किये गये अंशों या ऋण–पत्रों से पूर्णतया मिलते हुए हों और जिनका प्रमाणित स्कन्ध बाजार (Recognised Stock Exchage) में व्यवहार किया जाता हो।
3. यदि अंशों तथा ऋण–पत्रों के लिए जनता को निमन्त्रण देना वर्जित हो, जैसे निजी कम्पनी की दशा में।
4. यदि आवेदन–पत्र किसी ऐसे व्यक्ति के यथार्थ निमन्त्रण (bonofide Invitation) के सम्बन्ध में निर्गमित किया गया हो, जो कि अंशों का ऋण–पत्रों के लिए कम्पनी के साथ अभिगोपन (Underwriting) का अनुबन्ध करता हो।

प्रविवरण के निर्गमन एवं रजिट्रेशन से सम्बन्धित वैधानिक आवश्यकतायें
(Legal Registration Regarding Issue and Registration of Prospectus)

प्रविवरण निर्गम एवं रजिस्ट्रेशन के सम्बन्ध में कम्पनी अधिनियम मे कुछ प्रावधान दिये गये हैं। प्रविवरण का निर्गमन तभी वैध माना जाता है जब उसमें निम्नलिखित आवश्यकताएं पूरी होती हैं।

1. **समामेलन के पश्चात् निर्गमन (Issue after Incorporation):** किसी कम्पनी का निर्गमन सामान्यतः उससे समामेलन के पश्चात् किया जाता है। जबकि धारा 55 एक इच्छित कम्पनी (Intended Company) के सम्बन्ध में प्रविवरण जारी करने की अनुमति देती है।

अध्याय-6

ऋण लेने का अधिकार, ऋण-पत्र एवं प्रभार (Borrowing Powers, Debentures and Charges)

कम्पनी अधिनियम कम्पनियों को ऋण लेने के लिए अधिकत नहीं करता है। परन्तु व्यापारिक कम्पनियों को ऋण लेने का गर्भित अधिकार प्राप्त है और प्राप्त ऋण के लिए कम्पनी अपनी सम्पत्तियों की प्रतिभूति देने का अधिकार रखती है। कम्पनी प्रायः अपने पार्षद सीमानियम द्वारा ऋण प्राप्त करने के लिए अधिकत होती है। यद्यपि किसी व्यापारिक कम्पनी के पार्षद सीमानियम में ऋण लेने के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा हुआ है तब भी व्यापारिक कम्पनी ऋण प्राप्त कर सकती है। जहाँ तक प्रश्न गैर–व्यापारिक कम्पनियों के ऋण लेने के सम्बन्ध में है–जैसे वाणिज्य, विज्ञान और कला को प्रोत्साहन देने के लिए स्थापित की गई कम्पनी। ऐसी कम्पनी उस समय तक ऋण प्राप्त करने के अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकती जब तक कि कम्पनी अपने पार्षद सीमानियम या अन्तर्नियम द्वारा अधिकत न हो। धारा 149 (1) के अनुसार, एक निजी कम्पनी अपने इस अधिकार का प्रयोग समामेलन के तुरन्त पश्चात् कर सकती है। परन्तु एक सार्वजनिक कम्पनी इस अधिकार का प्रयोग व्यापार प्रारम्भ करने के प्रमाण–पत्र के प्रापत होने पर ही कर सकती है।

एक कम्पनी वैधानिक रूप से ऋण कब ले सकती है या ऋण लेने के अधिकार का प्रयोग

(When may a Company lawfully Borrow Money or Exercise of Borrowing Power)

कम्पनी अधिनियम के अनुसार, एक कम्पनी ऋण लेने के अधिकार को उस समय तक प्रयोग नहीं कर सकती है जब तक कि कम्पनी को व्यापार प्रारम्भ करने का अधिकार न हो। अतः एक प्राइवेट कम्पनी समामेलन का प्रमाण–पत्र (Certificate of Commencement of Business) मिलने पर ही अपने इस अधिकार का प्रयोग कर सकती है इससे पूर्व नहीं। लेकिन एक सार्वजनिक कम्पनी अंशों व ऋण–पत्रों को समामेलन के पश्चात् एक साथ जनता को खरीदने के लिए प्रसतुत कर सकती है। धारा 149

कम्पनी के अन्तर्नियमों में प्रायः यह व्यवस्था की जाती है कि ऋण लेने का अधिकार या तो संचालकों को होगा या इसका प्रयोग कम्पनी की व्यापक सभा में किया जाएगा। व्यावहारिक जीवन में होता यह है कि एक निश्चित सीमा तक ऋण लेने का अधिकार संचालकों को प्रदान कर दिया जाता है और यदि ऋण उस सीमा से अधिक हो तो केवल सभा की स्वीकति से ही लिया जा सकता है।

धारा 293 के अनुसार संचालकों द्वारा लिया जाने वाला ऋण चुकता पूँजी तथा स्वतंत्र संचय (paid up capital and free reserve) के जोड़ से अधिक नहीं होना चाहिए। यह इस प्रकार है कि किसी पब्लिक कम्पनी या इसकी किसी सहायक कम्पनी के संचालक, साधारण सभा में कम्पनी की सहमति प्राप्त किए बिना इतनी राशि उधार नहीं लेंगे जो पहले से प्राप्त किए गए ऋणों (सामान्य व्यवसाय के दौरान कम्पनी के बैंकरों से प्राप्त अस्थयी ऋणों को छोड़कर) को शामिल करके कम्पनी की चुकती पूँजी तथा उसके स्वतंत्र संचय के योग से अधिक है।

ऋण लेने के अधिकारों पर प्रतिबन्ध
(Restriction on the Borrowing Powers of a Company)

एक कम्पनी के ऋण लेने के अधिकारों पर निम्नलिखित प्रतिबन्ध हैं:

1. एक सार्वजनिक कम्पनी व्यापार प्रारम्भ करने का प्रमाण–पत्र प्राप्त करने के बाद तथा निजी कम्पनी समामेलन का प्रमाण–पत्र मिलने पर ही ऋण प्राप्त कर सकती है। किन्तु एक सार्वजनिक कम्पनी व्यापार

आरम्भ करने का प्रमाण–पत्र प्राप्त करने के साथ ही अंशों व ऋण–पत्रों को एक साथ जनता को क्रय करने के लिए प्रस्तावित कर सकती है। धारा 149

2. एक सार्वजनिक कम्पनी व्यापक सभा की सहमति के बिना अपनी प्रदत्त पूंजी व स्वतंत्र कोषों के कुल योग की राशि से अधिक ऋण नहीं ले सकती। यहाँ स्वतंत्र कोष से आशय ऐसे संचय (Reserve) से है जो किसी विशेष उद्देश्य के लिए न रखा गया हो।

3. यद्यपि व्यापारिक कम्पनियों को ऋण लेने का गर्भित अधिकार होता है परन्तु कोई भी कम्पनी पार्षद् सीमानियम व पार्षद अनतर्नियम की व्यवस्थाओं के विरूद्व ऋण नहीं ले सकती है अन्यथा ऐसा ऋण अधिकारों से बाहर का ऋण माना जाएगा।

4. कम्पनी को ऋण लेने का अधिकार है लेकिन कम्पनी द्वारा लिए गए ऋण उसकी सम्पत्तियों पर प्रभार उत्पन्न करते हैं। यदि कम्पनी के पार्षद् सीमानियम व पार्षद् अनतर्नियमों में विपरीत व्यवस्था न हो तो कम्पनी की अभी तक न माँगी गयी पूँजी पर भी ऋण प्रभार उत्पन्न करते हैं। लेकिन ऋण सुरक्षित पूँजी (Reserve Capital) पर प्रभार उत्पन्न नहीं करते। कम्पनी सुरक्षित पूँजी की प्रतिभूति पर कोई ऋण नहीं ले सकती।

अधिकारों के बाहर ऋण
(Ultra Vires Borrowing, or Borrowing Beyond Powers)

यदि कोई कम्पनी अपने सीमानियम अथवा अन्तर्नियमों में दिए हुए अधिकारों से अधिक राशि ऋण के रूप में लेती है तो इसे 'अधिकारों से बाहर ऋण लेना' (Borrowing beyond powers) कहते हैं और वह व्यर्थ (Void) होता है। ऐसे ऋण–

1. कम्पनी के लिए अधिकारों के बाहर, या
2. संचालकों के लिए अधिकारों के बाहर हो सकते हैं।

कम्पनी के अधिकारों के बाहर ऋण
(Borrowing which are Ultra-vires the Company)

कम्पनी के अधिकारों के बाहर या अधिकारों से अधिक सभी कार्य व्यर्थ (Void) होते हैं। अतः यदि कोई कम्पनी अपने अधिकारों से बाहर या अधिकारों से अधिक कोई ऋण लेती है तो ऐसा ऋण कम्पनी के लिए 'अधिकार के बाहर' होने के कारण व्यर्थ होता है। इस स्थिति में किसी वैध ऋण का निर्माण नहीं होता। इस प्रकार के ऋण के लिए दी गई जमानत प्रभावहीन तथा व्यर्थ होती है और किसी भी पुष्टीकरण द्वारा ऋण को कानूनी नहीं बनाया जा सकता।

परिणाम
(Consequences)

जब कोई कम्पनी अपने अधिकारों से बाहर कोई ऋण लेती है तो वह व्यर्थ होता है। ऐसा ऋण तथा उसके लिए दी गई प्रतिभूति व्यर्थ तथा अप्रवर्तनीय है और किसी भी प्रकार के पुष्टिकरण से उस ऋण को वैध नहीं बनाया जा सकता है। कम्पनी ऐसे ऋण के भुगतान के लिए वैधानिक रूप से बाध्य नहीं है तथा ऐसे ऋणों का भुगतान न करने पर ऋणदाता कम्पनी पर कोई अभियोग नहीं चला सकता है।

ऋण अधिकारों के बाहर होने पर ऋणदाता के अधिकार
(Lender's Rights When Borrowing is Ultra-vires)

यदि कोई ऋण कम्पनी के लिए 'अधिकारों के बाहर' है, तो कम्पनी के विरूद्ध किसी कानूनी ऋण का निर्माण नहीं होता ऐसे ऋणों का भुगतान न करने पर ऋणदाता कम्पनी पर कोई अभियोग नहीं चला सकता है। परन्तु ऐसे ऋणदाता को निम्नलिखित अधिकार होते हैं, दूसरे शब्दों में, ऋणदाता के लिए निम्नलिखित उपचार (remedies) उपलब्ध हैं–

(a) **पहचान एवं खोज (Indentification and Tracing):** यदि ऋणदाता कम्पनी के अधिकारों के बाहर दी हुई इस अधिक राशि (जो या तो कम्पनी के पास मूल रूप से मौजूद हो या उस राशि से खरीदी गई सम्पत्ति

के रूप में हो) को पहचान सकता है तो ऋणदाता खोज आदेश (Tracing Order) प्राप्त करके उस सम्पत्ति को प्रापत कर सकता है क्योंकि इस राशि पर कम्पनी को कोई अधिकार नहीं होता है।

यदि विशिष्ट सम्पत्ति का पता न भी लगाया जा सके तो भी कम्पनी के समापन पर ऋणदाता सम्पत्त्यिों में की गई ऐसी वद्धि, जो अधिकारों से अधिक ऋण लेकर की गई हो, दिखाई न हो, तो उसे प्राप्त करने का अधिकारी होगा।

(b) **निषेधाज्ञा (Injunction):** यदि कम्पनी को दी गई राशि अभी खर्च नहीं की गई है तो ऋणदाता कम्पनी को उस राशि को खर्च करने से रोकने के उद्देश्य से निषेधज्ञा प्राप्त कर सकता है।

(c) **स्थान ग्रहण (Subrogation):** यदि कम्पनी ने 'अधिकारों के बाहर ऋण' की राशि अपने लेनदारों का भुगतान करने के लिए प्रयोग की है तो ऋणदाता उन लेनदारों के सभी अधिकार प्रापत कर लेता है। परन्तु मूल लेनदारों को यदि कोई प्राथमिकता (Priority) प्राप्त रही हो तो उसे ऐसी कोई प्राथमिकता नहीं दी जाएगी।

(d) **संचालकों पर वाद (Suit against the directors):** यदि ससंचालकों ने अपने अधिकारों से अधिक ऋण लिया है तो ऋणदाता अधिकार का आश्वासन (Warranty of authority) भंग करने के लिए संचालकों पर व्यक्तिगत रूप से वाद प्रस्तुत कर सकता है।

संचालकों के लिए अधिकारों के बाहर ऋण

(Borrowings Which are Ultra-vires the Directors)

कोई भी ऋण कम्पनी के अधिकारों के अन्तर्गत है, परन्तु संचालकों के अधिकारों के बाहर है तो उसे 'संचालकों के अधिकारों के बाहर' कहते हैं। यदि ऐसे ऋण की पुष्टि हो जाती है तो कम्पनी उस राशि के भुगतान के लिए बाध्य होगी। जब कम्पनी द्वारा ऐसे ऋण की पुष्टि नही की जाती है तो आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धान्त (Doctrine of Indoor Management) तथा एजेन्सी के सामान्य सिद्धान्त ऐसे ऋणदाता के हितों की रक्षा करेंगे जो यह सिद्ध कर दे कि उन्होंने धन–राशि सद्भावनापूर्वक (good faith) उधार दी थी परन्तु कम्पनी संचालकों पर क्षतिपूर्ति का दावा कर सकती है।

ऋण लेने की विधियाँ

(Methods of Borrowing)

यदि कम्पनी ऋण लेने के लिए अधिकत हो, तो निम्नलिखित विधियों द्वारा ऋण ले सकती है–

1. बैंक अधिविकर्ष द्वारा (By Bank Overdraft)
2. विनिमय–पत्र, हुण्डी या प्रतिज्ञापत्र के निर्गमन द्वारा
3. साधारण ऋण लेकर (Ordinary loan)
4. ऋण–पत्रों के निर्गमन द्वारा
5. रहन (Pledge) के द्वारा
6. कम्पनी की स्थायी अथवा अस्थायी सम्पत्तियों को प्रभार या प्रबन्धक (Charge or Mortgage) के रूप में रखकर।
7. जनता से निक्षेप (Deposits) प्राप्त करके।
8. बैंक से नकद–उधार (Cash Credit)।

ऋण-पत्र

(Debentures)

अर्थ एवं परिभाषा

(Meaning and Definition)

डिबेंचर शब्द लेटिन भाषा के डिबेयर (Debere) शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ ऋणदायी (to owe) होता है। ऋण–पत्र का आशय ऐसे प्रलेख से है जो किसी से ऋण लेने का कार्य करता है अथवा उसकी स्वीकति देता है।

अतः ऋण–पत्र कम्पनी द्वारा लिए गए ऋण का स्वीकति–पत्र होता है जिसे कम्पनी अपनी सार्वमुद्रा के अन्तर्गत निर्गमित करती है और जिस पर ऋण की राशि, ब्याज की दर, भुगतान की शर्तें तथा अन्य शर्तों का वर्णन होता है।

धारा 2 (12) के अनुसार – "ऋण–पत्र में ऋण–पत्र, स्टॉक, बॉण्ड तथा कम्पनी की अन्य प्रतिभूतियाँ सम्मिलित की जाती हैं, चाहे वे कम्पनी की सम्पत्तियों पर प्रभार उत्पन्न करें या न करें।"

ऋण-पत्र के लक्षण अथवा विशेशताएँ

(Features or Characteristics of Debentures)

उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर ऋण–पत्र की निम्नलिखित विशेषताएँ प्रकट होती हैं–

1. यह कम्पनी द्वारा निर्गमित किया जाता है और सामान्यतया ऋण की स्वीकति के प्रमाण–पत्र के रूप में होता है।
2. यह कम्पनी की सार्वमुद्रा (Commont seal) के अधीन निर्गमित किया जाता है। परन्तु कम्पनी की सार्वमुद्रा का लगा होना हमेशा की आवश्यक नहीं होता है।
3. ये प्रायः श्रंखला के रूप में निर्गमित किए जाते हैं लेकिन सम्पूर्ण ऋण के लिए एक ही ऋण–पत्र भी प्रदान किया जा सकता है।
4. इनमें प्रायः ब्याज की दर तथा शोधन तिथि उल्लिखित रहती है।
5. यह सामान्यतया कम्पनी की सभाओं में मतदान करने का अधिकार (Right to vote) नहीं होता अतः वह प्रबन्ध में भाग नहीं ले सकता।

ऋण-पत्र स्टॉक

(Debenture Stock)

ऋण–पत्र स्कन्ध ऋण के रूप में ली गई वह राशि है जो कम्पनी की पूँजी में लगाई जाती है तथा जो आंशिक भागों की राशियों में विभाजित की जा सकती है। कम्पनी द्वारा लिए गए उधार को सुरक्षित करने की एक रीति ऋण दाता को ऋण–पत्र स्कन्ध को निर्गमित करना है। ऋण–पत्र स्कन्ध को कमपनी अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है, परन्तु धारा 2 (12) के अनुसार ऋण–पत्र की परिभाषा में ऋण–पत्र स्कन्ध भी सम्मिलित किया गया है। इसका अर्थ यह है कि अधिनियम की वे व्यवस्थाएं जो ऋण–पत्रों पर लागू होती हैं ऋण–पत्र स्कन्ध पर भी लागू होगी।

व्यावहारिक दष्टि से ऋण–पत्र स्कन्ध का आशय कम्पनी के समस्त ऋण से है। अतः प्रत्येक ऋण–पत्र धारी को पथक्–पथक् बांड नहीं मिलता बल्कि उसे एक प्रमाण–पत्र मिलता है जिसे 'ऋण–पत्र स्कन्ध प्रमाण–पत्र' (Debenture Storck Certificate) कहते हैं जो कि उसे समस्त धन से एक निश्चित भाग का स्वामी बना देता है। लॉर्ड लिन्डले के शब्दों में, "ऋण–पत्र स्कन्ध सुविधा के लिए एक राशि में संगठित उधार ली गई पूँजी है।" (Debenture Stock is borrowed capital consolidated into one mass for the sake of convenience.) दूसरे शब्दों में, ऋण–पत्र स्कन्ध कई ऋण–पत्रों की सम्मिलित राशि के लिए निर्गमित अकेला ऋण–पत्र है। एक ऋण–पत्र है। एक ऋण–पत्रधरी एक निश्चित रकम ही विनियोग कर सकता है जैसे 1 रूपया अथवा 10 रूपये अथवा 20 रूपये अथवा 50 रूपये, परन्तु एक ऋण–पत्र स्कन्ध प्रमाण पत्रधारी कितनी ही धन–राशि विनियोग कर सकता है, जैसे 10 रूपये 50 पैसे अथवा 13 रूपये आदि। इसी प्रकार एक ऋण–पत्र पूर्णतः ही हस्तांतरित किया जा सकता है, आंशिक भागों में नहीं, जबकि ऋण–पत्र स्कन्ध सम्बन्धित प्रमाण–पत्रों द्वारा आंशिक भागों में हस्तांतरित किया जा सकता है।

ऋण–पत्र स्कन्धों का ऋण प्रन्यासी (Trustee) को देय होता है तथा उन पर प्रापत हिताधिकार (Beneficial interest) ऋण–पत्र स्कन्धधारियों के प्रमाण–पत्रों द्वारा आंशिक भागों में हस्तांतरित किया जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि ऋण–पत्र स्कन्धधारी कम्पनी के ऋणदाता नहीं होते वरन् कम्पनी की सम्पत्ति पर प्रभार के हिताधिकारी (Beneficiary) मात्र होते हैं। इसलिए वे स्वतंत्र रूप से कम्पनी के विरूद्ध भुगतान के लिए दावा प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं।

ऋण-पत्रों के प्रकार

(Kinds of Debentures)

निर्गमन की शर्तो के अनुसार ऋण–पत्र निम्न प्रकार के हो सकते हैः

1. **रजिस्टर्ड ऋण-पत्र (Registered Debentures):** ऐसे ऋण–पत्र जिनके धारकें के नाम, पते व अन्य विवरण कम्पनी द्वारा रखे गये ऋण–पत्रधारियों के रजिस्टर में लिखे होते हैं, रजिस्टर्ड ऋण–पत्र कहलाते हैं इन पर मूलधन या ब्याज का भुगतान रजिस्टर्ड धारक को ही दिया जाता है। इनका हस्तांतरण कम्पनी द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार ही हो सकता है। ऐसे हस्तांतरण का रजिस्टर में अंकन होना आवश्यक ळै। अतः यह विनिमय साध्य प्रलेख (Negotiable Instrument) नहीं है।
2. **वाहक ऋण-पत्र (Bearer Debentures):** ऐसे ऋण–पत्र जिनके धारकों का नाम न तो कम्पनी के रजिस्टर में लिखा जाता है और न ही हस्तांतरण करते समय कमपनी की पूर्व–अनुमति की आवश्यकता पड़ती है, वाहक ऋण–पत्र कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में, वाहक ऋण–पत्रों का हस्तांतरण केवल सुपुर्दगी मात्र से हो जाता है और ऋण–पत्र जिस व्यक्ति के पास होता है वही स्वामी माना जाता है। इनका ब्याज एवं मूल राशि का भुगतान वाहक को किया जाता है। इनके हस्तांतरण में न तो कोई वैधानिक विधि अपनाई जाती है और न ही स्टाम्प शुल्क देना पड़ता है। इन ऋण–पत्रों का वाहक एक नाममात्र की फीस देकर अपना नाम कम्पनी के रजिस्टर में लिखवा सकता है।
3. **बन्धक सहित ऋण-पत्र (Secured or Mortgaged Debentures):** जिन ऋण–पत्रों के लिए कम्पनी की सम्पत्तियों पर भार या बन्धक किया जाता है, वे बन्धक ऋण–पत्र या सुरक्षित ऋण–पत्र कहे जाते हैं। यदि कम्पनी ऐसे ऋण–पत्र धारकों की राशि का भुगतान नहीं करती है तो वे अपनी क्षति–पूर्ति भार (Charge) या बन्धक (Mortgage) में रखी हुई सम्पत्ति से कर सकते हैं।
4. **साधारण या असुरक्षि या नग्न ऋण-पत्र (Simple or Unsecured or Naked Debentures):** इन ऋण–पत्रों को निर्गमित करने पर कम्पनी अपनी कोई सम्पत्ति जमानत के रूप में नहीं रखती। न ही इनके ब्याज और मूलधन के पुनर्भुगतान के लिए ही कोई प्रतिभूति दी जाती है। कम्पनी के समापन पर इनकी स्थिति साधारण लेनदार की भांति हेाती है। ऐसे ऋण–पत्र कम्पनी की ऋण–ग्रस्तता के केवल प्रमाण पत्र होते हैं। ऋण–पत्र धारक ऋण की वसूली के लिए कम्पनी पर वाद प्रस्तुत कर सकते हैं।
5. **शोध्य ऋण-पत्र (Redeemable Debentures):** ऐसे ऋण–पत्र जिनका भुगतान एक निश्चित अवधि के बाद कम्पनी द्वारा किया जाता है, शोध्य ऋण–पत्र कहे जाते हैं।
6. **अशोध्य ऋण-पत्र (Irredeemable Debentures of perpetual Debentures):** जिन ऋण–पत्रों की राशि कम्पनी के समापन पर भुगतान की जाती है और कम्पनी के जीवन में भुगतान नहीं की जाती है, उन्हें अशोध्य ऋण–पत्र कहते हैं। यद्यपि इनका भुगतान कम्पनी के समापन पर किया जाता है परन्तु इन पर ब्याज बराबर दिया जाता है। यदि ब्याज के देने में त्रुटि की जाती है तो इनका भुगतान कम्पनी के जीवन में ीाी कराया जा सकता है।
7. **परिवर्तनशील ऋण-पत्र (Convertible Debentures):** जब ऋण–पत्र धारियों को यह विकल्प (Option) दिया जाता है कि वे निश्चित समय के अन्तर्गत अपने ऋणों को अंश या स्कन्ध में परिवर्तित कर सकते हैं तो ऐसे ऋण–पत्रों को परिवर्तनशील ऋण–पत्र कहा जात है।

ऋण-पत्र निर्गमन की विधि
(Procedure of Debenture Issue)

कम्पनी अपने अंशों का निर्गमन अंकित मूल्य पर, बट्टे पर और प्रीमियम पर कर सकती है। कम्पनी अधिनियम इस पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाता हे। कम्पनी अधिनियम ने ऋण–पत्रों को बट्टे पर निर्गमन करने के लिए प्रतिबन्ध लगाया है। कम्पनी किसी प्रकार के ऐसे ऋण–पत्र जारी नहीं कर सकती, जिन्हें मताधिकार प्राप्त हो–धारा **292**। साधारणतः सभी कम्पनियों के अन्तर्नियम में यह बात स्पष्ट रूप से लिखी होती है कि संचालकों को ऋण–पत्र जारी करने का अधिकार है।

ऋण–पत्रों के निर्गमन करने का ढंग वही है जो अंशों के निर्गमन करने का है। संचालक मण्डल अपनी सभा में ऋण–पत्रों का निर्गमन करने के लिए निर्णय करते हैं और इसी सभा मे उन शर्तों को भी निश्चित किया जाता है जिन पर ऋण–पत्रों का निर्गमन किया जाना है। संचालक मण्डल द्वारा एक कमेटी की स्थापना कर दी जाती है। जिसका मुख्य कार्य वैधानिक सलाहकार के परामर्श से प्रविवरण तथा प्रन्यास संलेख तैयार करना होता हैं प्रन्यास संलेख उन प्रन्यासियों के पक्ष में, जिनको ऋणपत्रधारी नियुक्त करते हैं, तैयार किया जाता है। इस बात की सूचना कि प्रन्यास संलेख प्रन्यासी के पक्ष में तैयार किया जा चुका है, तीस दिन के अन्दर–अन्दर रजिस्ट्रार को देनी चाहिए। प्रविवरण में यह लिख है कि ऋण–पत्र स्कन्ध विनिमय में क्रय और विक्रय किए जाएँगे तो इसके लिए स्कन्ध विनिमय (Stock Deexchange) को प्रस्तुत किया जाना चाहिए। ऋण–पत्र हमेशा ही पूर्णदत्त् होने चाहिएँ। जब ऋण–पत्र निर्गमित कर दिए जाते हैं। तो ऋण–पत्र प्रमाण–पत्र सुपुर्दगी के लिए तीन मास के अन्दर तैयार रखे जाने चाहिए।

ऋण-पत्र प्रन्यास संलेख

(Debenture Trust Deed)

जब कम्पनी ऋण–पत्र निर्गमि करती है तो कम्पनी किसी संम्पति को उस ऋण–पत्रधारी के पक्ष में, बन्धक रखती है, जिसको कि ऋण–पत्र निर्गमित किए गए हैं। ऋण–पत्रधारी बहुत बड़े विस्तत क्षेण में फैले होते है। अतः यह सम्भव नहीं होता कि वह कम्पनी की सभी गतिविधियों की देखभाल कर सके। अतः वे अपने लिए प्रन्यासियों की नियुक्ति कर लेते हैं।

प्रन्यास–संलेख प्रन्यासी के पक्ष में लिखा जाता है। प्रन्यासी उस सम्पत्ति को अपने पास रखते हैं तथा उसकी देखभाल करते हैं। यदि कम्पनी इस संबंध में कोई त्रुटि करती है तो इस बात की सूचना ऋण–पत्रधारी को दे देती है और वह इसके लिए आवश्यक कदम उठाते हैं।

प्रन्यास–संलेख में ऋण–पत्र निर्गमन की शर्तें, प्रन्यासी के अधिकार, बन्धक रखी हुई सम्पत्ति का वर्णन, ऋण–पत्र के प्रकार और प्रन्यासी को दिए जाने वाले वेतन आदि का वर्णन किया जाता है।

प्रन्यासी को अपने कर्त्तव्य ईमानदारी व सावधानी से निभाने चाहिए। जब प्रन्यास संलेख तैयार हो जाता है और ऋण–पत्रधारी को निर्गमि कर दिया जाता है तो इसके 30 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार को सूचना देनी चाहिए।

ऋण-पत्रधारियों का रजिस्टर
(Register of Debenture-Holders)

कम्पनी अधिनियम की धारा 152 के अनुसार प्रत्येक कम्पनी के लिए यह अनिवार्य है कि वह अपने यहाँ सभी ऋण–पत्रधारियों का एक रजिस्टर बनाए और उस रजिस्टर में निम्न वर्णन दिया जाना चाहिए–

1. धारक का नाम और पता।
2. ऋण–पत्र का नम्बर और ऋण–पत्र की रकम।
3. ऋण–पत्र के प्रमाण–पत्र का नम्बर
4. ऋण–पत्रधारक के धारक होने तथा अलग होने की तिथि

यदि धारकों की संख्या 50 से अधिक है तो कम्पनी के लिए यह आवश्यक है कि वह धारकों की एक सूची तैयार करे तााि इस सूची को रजिस्टर के साथ ही लगाकर रखे। यदि इस सूची में कोई परिवर्तन होता है तो इसको 14 दिन के अन्दर रजिस्टर में समाविष्ट किया जाना चाहिए। धारा 152 (2)

यदि इस सम्बन्ध में कोई त्रुटि हो जाती है तो कम्पनी ओर प्रत्येक अधिकारी, जो इसके लिए दायी होंगे, 50 रू. जुर्माने तक दण्डित किए जा सकते हैं।

ऋण-पत्रों के साथ 'समरूप नियम'

(Transfer of Debentures)

ऋण–पत्र एक श्रंखला (Series) में निर्गमित किये जाते हैं तो उनमें समरूप वाक्यांश रहता है। इसका अर्थ है कि उन ऋण–पत्रों का भुगतान आनुपातिक रूप से होगा। यह वाक्यांश उस समय अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है जब कम्पनी के पास ऋण–पत्रों के भुगतान के लिए पर्याप्त धन नहीं रहता है। ऐसी स्थिति में, उनका पुनः भुगतान आनुपातिक रूप से किया जाना चाहिए, चाहे ऋण–पत्र अलग–अलग समय पर निर्गमित किए गए हों।

यदि 'समरूप शब्द नहीं लिखे जाते हैं तो ऋण–पत्रों का भुगतान उनके निर्गमन की तिथि के अनुसार होता है और यदि सबका निर्गमन एक ही तिथि पर होता है तो उसका भुगतान उनकी क्रम संख्या के आधार पर किया जाता है। एक कम्पनी ऋण–पत्रों की नई श्रेणी को पुराने ऋण–पत्र की श्रेणी के साथ समरूप का अधिकार तब तक नहीं दे सकती जब तक कि वह ऐसा करने का अधिकार स्पष्ट रूप से प्राप्त नहीं कर लेती है।

ऋण-पत्रों का हस्तान्तरण
(Transfer of Debentures)

ऋण–पत्रों के निर्गमन का ढंग एक दूसरे से पथक् होता है। यह विशेष रूप से ऋण–पत्रों के प्रकार और प्रकति पर निर्भर करता है। यदि बाह्य ऋण–पत्र का निर्गमन किया गया है तो उसका सुपुर्दगी मात्र से ही हस्तान्तरण हो जाता है अन्यथा हस्तान्तरण अधिनियम द्वारा वर्णित ढंग से ही ऋण–पत्रों का निर्गमन मान्य होगा।

रजिस्ट्रार द्वारा प्रमाणित प्रलेख (Instrument) कम्पनी के कार्यालय में हस्तानतरण हेतु प्रस्तुत करना होगा। यदि संचालक द्वारा हस्तान्तरण स्वीकत कर लिया जाता है तो दोनों पक्षों को नोटिस दिया जाता है। यदि दोनों पक्षों में से किसी के द्वारा कोई आपत्ति नहीं की जाती है तो हस्तान्तरण किताबों मे प्रविष्ट कर लिया जाता है। यदि संचालकों द्वारा हस्तान्तरण स्वीकत नहीं किया जाता है तो दोनों पक्षों को अस्वीकति की सूचना संचालकों द्वारा दो मास में दे दी जानी चाहिए। दो मास के समय की उस तिथि से गणना की जाएगी, जिस तिथि को हस्तान्तरण प्रलेख कम्पनी के कार्यालय में जमा किया गया था।

ऋण-पत्रधारियों के लिए उपचार

(Remedies of Debenture-holders)

यदि कम्पनी ब्याज का भुगतान करने अथवा मूल–धन वापस करने में त्रुटि करे, तो किसी अन्य अरक्षित लेनदार के समान, अरक्षित ऋण–पत्रधारी भी संविदा भंग करने के लिए कम्पनी पर वाद प्रस्तुत कर सकते हैं अथवा वे धारा 439 के अन्तर्गत न्यायालय द्वारा कम्पनी का समापन किए जाने के लिए याचिका प्रस्तुत कर सकते हैं और समापक के समक्ष ऋण राशि के लिए दावा कर सकते हैं।

रक्षित ऋण–पत्रधारियों को उपर्युक्त दो उपचारों के अतिरिक्त निम्नलिखित विशेष अधिकार प्राप्त हैं:

1. वे, न्यायालय में आवेदन दिए बगैर, ऋण–पत्रों के निर्गमन की शर्तों अथवा न्यास विलेख द्वारा उन्हें सौंपे गए अधिकारों का प्रयोग कर सकते हैं। सामान्यतः इन अधिकारों में कम्पनी के लाभ तथा किराए प्राप्त करने के लिए 'प्राप्तकर्ता' (Receiver) नियुक्त करने का अधिकार, कारोबार का प्रबन्ध करने के लिए 'प्रबन्धक' की नियुक्ति करने का अधिकार और बन्धक सम्पत्ति का कब्जा लेने का अधिकार और न्यासियों के माध्यम से इसकी बिक्री प्रवर्तित करने और इससे प्राप्त राशि को आपस में बाँट लेने का अधिकार सम्मिलित होता है।
2. वे 'प्राप्तकर्ता' की नियुक्ति के लिए अथवा प्रभारित सम्पत्ति बेचने के आदेश के लिए अथवा विमोचन–निषेध (Foreclosure) कि आदेश के लिए न्यायालय में आवेदन दे सकते हैं। विमोचन–निषेध आदेश बन्धक–कर्ता के बन्धक–सम्पत्ति विमोचित करने के अधिकार पर रोक लगाा देता है।

   यदि बन्धक सम्पत्ति उनके ऋणों की पूरी राशि को अदा करने के लिए अपर्याप्त हो तो रक्षित ऋण–पत्रधारियों के पास दो विकल्प रहते हैं:

(a) वे जमानत में रखी सम्पत्ति को बेच सकते हैं और शेष राशि के लिए न्यायालय में दावा कर सकते हैं; अथवा

(b) वे जमानत में रखी सम्पत्ति को समर्पित कर सकते हैं और ऋण की समूची राशि के लिए न्यायालय में दवा करसकते हैं।

बंधक
(Mortgage)

बंधक से आशय अचल सम्पत्ति के अधिकार को ऋण के भुगतान के लिए प्रतिभूति के रूप में रखने से है। बंधक एक ऐसा व्यावहार है जिसके द्वारा किसी धन के शोधन के लिए किसी सम्पत्ति की जमानत कर दी जाती है। ऋणदाता को किसी अचल सम्पत्ति के अधिकार को जिस प्रपत्र द्वारा दिया जाता है उसे 'बन्धक पत्र' (Trust Deed) कहते हैं। हस्तांतरणकर्त्ता बन्धक रखने वाला (Mortgagor) और हस्तांतरिती बन्धक रख लेने वाला (Mortgagee) कहलाता है। बन्धक चल सम्पत्ति (Moveable Property) का हो सकता है अथवा अचल सम्पत्ति (Immoveable Property) का हो सकता है। अचल सम्पत्ति के बन्धक को 'बन्धक' कहते हैं, तथा चल सम्पत्ति के बन्धक को 'हाईपोथिकेशन' (Hypothecation) कहते हैं। कम्पनी अपनी अचल सम्पत्ति का बन्धक एक साधारण व्यक्ति की भाँति, सम्पत्ति के अधिकार–पत्रों (Title Deeds) को जमा करके कर सकती है। बन्धक की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें सम्पत्तिके हित का हस्तांतरण (transfer of Interest) हो जाता है।

सम्पत्ति का बन्धक निम्नलिखित दो प्रकार से किया जा सकता है।:

1. वैधनिक बन्धक (Legal Mortgage)
2. समान बन्धक (Equitable Mortgage)

1. **वैधानिक बन्धक Legal Mortgage):** इस प्रकार के बन्धक में सम्पत्ति का हस्तांतरण ऋणदाता के नाम कर दिया जाता है। इस हस्तांतरण के साथ एक बन्धक पत्र भी होता है जिसमें ऋण की राशि, ब्याज व शर्तें लिखी होती हैं। इसका भुगतान करते ही उसे अपने अंश वापस मिल जाएँगे।
2. **समान बन्धक (Equitable Mortgage):** इस बन्धक में ऋणदाता सम्पत्ति को अपने अधिकार में ले लेता है। यदि ऋणी ऋण का भुगतान करने में त्रुटि करता है तो ऋणदाता न्यायालय से आवदेन करेगा कि उसे सम्पत्ति को बेचने या अपने नाम हस्तांतरण करने की आज्ञा दी जाए।

प्रभार
(Charges)

जब किसी व्यक्ति के ऋण के भुगतान के लिए वर्तमान या भावी, चल या अचल सम्पत्ति को प्रतिभूति या जमानत बनया जाता है तो यह कहा जाता है कि ऋणदाता का सम्पत्ति पर प्रभार है।

सम्पत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 100 में प्रभार को इस प्रकार परिभाषित किया जाता है, "पक्षकारों के कार्य द्वारा अथवा कानून के कार्यन्वित होने पर जब किसी व्यक्ति की अचल सम्पत्ति को अन्य व्यक्ति द्वारा दिये गये धन के भुगतान के लिए प्रतिभूति बना दिया जाता है, और इस व्यवहार का परिणाम गिरवी होता है तो बाद वाले व्यक्ति (ऋणदाता) का उस सम्पत्ति पर प्रभार माना जाता है। अतः प्रभार का आशय कमपनी द्वारा लिए गये ऋण के शोधन के लिए कम्पनी की सम्पत्तियों पर केवल प्रभार उत्पन्न करने से है, हित के हस्तांतरण से नहीं। धारा 124 के अनुसार, प्रभार में बन्धक भी शामिल है। प्रभार दो प्रकार का हो सकता है – 1. स्थिर प्रभाव (Fixed charge), तथा 2. चल प्रभार (Floating charge)

1. **स्थिर या स्थायी प्रभार (Fixed Charge):** जब प्रभार किसी निश्चित एवं सम्पत्ति विशेष पर होता है तो उसे स्थिर या स्थायी प्रभार कहते हैं। जैसे, भूमि, भवन अथवा मशीन पर प्रभार। ऐसा प्रभार स्थायी प्रकति का होता है और केवल वर्तमान (Existing) सम्पत्तियों पर ही उत्पन्न हो सकता है। इस प्रभार की विशेषता यह होती है कि कम्पनी ऋणदाता की आज्ञा के बिना उस सम्पत्ति का प्रयोग नहीं कर सकती है। स्थायी प्रभार को विशिष्ट प्रभार (Specific Charge) भी कहते हैं।

2. **चल प्रभार (Floating Charge):** वह प्रभार जो कम्पनी की सभी सम्पत्तियों पर सामान्य रूप से उत्पन्न होता है चल प्रभार कहलाता है। दूसरे शब्दों में, चल प्रभार से आशय ऐसे प्रभार से है जिसके अन्तर्गत कम्पनी की सम्पत्तियों पर कम्पनी द्वारा लिए गए ऋण का शोधन करने के लिए प्रभार उत्पन्न हो जाता है। इस प्रभार का महत्त्वपूर्ण लक्षण यह है कि इसके अन्तर्गत कम्पनी अपनी किसी भी सम्पत्ति को व्यापार की साधारण प्रगति में उस समय तक प्रयोग कर सकती है जब तक कि प्रभार उत्पन्न करने वाले प्रपत्र में उल्लेखित कोई घटना घटित न हो जाए। चल प्रभार में रखी गई सम्पत्तियाँ ऐसी होती हैं जो समय–समय पर बदलती रहती है। इनको कम्पनी उस समय तक प्रयोग कर सकती है जब तक ऋणदाता इन पर कार्यवाही न करे।

चल प्रभार का स्थिरीकरण

(Crystallisation of a Floating Charge)

अथवा Or

चल प्रभार कब स्थायी प्रभार में परिवर्तित हो जाता है?

(When does Floating Charge Change into Fixed Charge)

प्रभार उत्पन्न करने वाले प्रपत्र में उल्लेखित घटना के घटित होने पर जब चल प्रभार स्थिर हो जाता है तो इसे चल प्रभार का स्थिरीकरण (Crystallisation of a floating Charge) कहते हैं। प्रभार के स्थिरीकरण हो जाने के बाद प्रभार सहित सम्पत्तियों पर वे सभी प्रतिबन्ध (Restrictions) लागू होते हैं जो स्थिर प्रभार सहित सम्पत्तियों पर होते हैं। चल प्रभार निम्नलिखित स्थितियों में स्थिर प्रभार बन जाता है:

1. कम्पनी के समापन में चले जाने पर; या
2. कम्पनी द्वारा व्यवसाय बन्द कर देने पर; या
3. सरकारी प्रापक (Government Receiver) की नियुक्ति हो जाने पर।

ऋण–पत्र में उल्लेख रहता है कि कम्पनी मूलधन निश्चित अवधि के बाद लौटा देने के लिए वचनबद्ध है और उस अवधि तक निश्चित ब्याज देती रहेगी। यदि कम्पनी यह करने में असमर्थ रहती है या उसके समापन की कार्यवाही प्रारम्भ हो जाए, तो ऋण–पत्रधारियों को चाहिए कि वे प्रभार के अधीन सम्पत्ति को कब्जे में लेकर अपना ऋण वसूल करने की कार्यवाही करें। उनके द्वारा ऐसा किया जाने पर कहा जाएगा कि चल प्रभार का स्थिरीकरण हो गया है, अर्थात् वह अचल प्रभार में परिवर्तित हो गया है।

अतः चल प्रभार केवल कम्पनी के जीवनकाल तक ही प्रभावित हो सकता है और ज्यों ही कम्पनी का समापन आदेश जारी होता है। त्यों ही चालू भार स्थायी स्वरूप के प्रभार में परिवर्तित हो जाता है। यदि कम्पनी ने पुनर्निर्माण (Reconstruction) हेतु कम्पनी के समापन की प्रक्रिया को स्वीकार किया है तो भी चल प्रभार स्थायी स्वरूप का हो जाएगा।

उल्लेखनीय है कि यदि कम्पनी की चल सम्पत्ति को उसके कारोबार से निकाल कर ऋणदाता के कब्जे में हस्तांतरित कर दिया जाए तो कम्पनी के पास शेष ऐसी कोई सम्पत्ति नहीं बचती जिस पर चल प्रभार बना रहे। अतः वह तुरन्त ही स्थायी प्रभार में परिवर्तित हो जाएगा।

बन्धक और प्रभार में अन्तर

(Difference Between Mortgage and Charge)

बन्धक तथा प्रभार, दोनों ही दिशाओं में, किसी दूसरे को उसके धन का शोधन करने के लिए कुछ विशेष सम्पत्ति की जमानत दी जाती है, परन्तु इन दोनों में निम्नलिखित अन्तर हैं:

अन्तर का आधार	प्रभार (Charge)	बन्धक (Mortgage)
1. सम्पत्ति में हित (Interest in the Property)	इसके अन्तर्गत सम्पत्ति के हित का हस्तान्तरण नहीं होता है वरन् ऋण के भुगतान के लिए सम्पत्ति दी जाती है।	इसमें सम्पत्ति के हित का हस्तान्तरण होता है।
2. अवधि (Duration)	प्रभार व्यवसाय की प्रगति के साथ सदैव के लिए (Perpetual) हो सकता है।	बन्धक प्रायः एक निश्चित अवधि के लिए होता है।
3. धारा 124 के अनुसार (As per Sec. 124	प्रभार में बन्धक भी सम्मिलित है।	बन्धक, प्रभार का एक हिस्सा होता है।

प्रभारों की रजिस्ट्री

(Registration of Charges)

शब्द 'प्रभार' में 'बंधक' सम्मिलित है। इसका अर्थ यह है कि प्रभारों की रजिस्ट्री के सम्बन्ध में जहाँ कहीं भी 'प्रभार' शब्द का प्रयोग किया गया है तो यह आवश्यक नहीं है कि वह केवल प्रभार के लिए है। जहाँ 'प्रभार' व 'बंधक' दोनों ही के लिए व्यवस्था है तब भी केवल 'प्रभार' शब्द का प्रयोग किया गया है। धारा 124

निर्दिष्ट प्रभारों की रजिस्ट्री

(Registration of Certain Charges)

एक कम्पनी द्वारा वैधानिक रूप से ऋण लेने के लिए कम्पनी अधिनियम के अधीन अनेक औपचारिकताएँ उल्लिखित हैं, जिनका कम्पनी द्वारा सतर्कता से पालन किया जाना चाहिए। जहाँ तक असुरक्षित ऋणों का सम्बन्ध है, कोई विशेष अनिवार्यताएँ नहीं है, केवल एक अनिवार्यता यह है कि ऋण कम्पनी द्वारा ऋण लेने की वैधानिक सीमा के अधीन होना चाहिए। जब ऋण कम्पनी की सम्पत्ति की प्रतिभूति पर लिए जाते हैं, तो निर्दिष्ट औपचारिकताओं का पालन करना होगा।

धारा 125 के अधीन, रजिस्ट्रार से निम्नलिखित प्रभारों की रजिस्ट्री कराना आवश्यक है–

1. ऋण–पत्रों के किसी निर्गमन की सुरक्षा के लिए किया गया प्रभार;
2. कम्पनी की ऐसी अंश–पूँजी पर प्रभार जो माँगी नहीं गई है;
3. कम्पनी की कहीं भी स्थित अचल सम्पत्ति या उसमें किसी हित पर प्रभार;
4. कम्पनी के किन्हीं पुस्तक ऋणों (book debts) पर किया गया प्रभारद्ध
5. कम्पनी की किसी चल सम्पत्ति पर किया गया प्रभार, जो कि गिरवी नहीं है;
6. कम्पनी की किसी सम्पत्ति जिसमें माल भी शामिल है, पर किया गया प्रभार;
7. ऐसी माँगों पर प्रभार जो कि प्रदत्तनहीं की गई हैं;
8. किसी जहाज पर या जहाज के किसी अंश पर प्रभार;
9. ख्याति, पेटेण्ट, ट्रेडमार्क या कॉपीराइट पर किया गया प्रभार।

जब ऐसा कोई प्रभार उत्पन्न किया गया है, तो उसका विवरण प्रभार–उत्पन्न करने वाले प्रपत्र या उसकी एक प्रमाणित प्रतिलिपि सहित, प्रभार उत्पन्न होने के बाद 30 दिन के अन्दर अधिनियम के अधीन उल्लिखित विधि में रजिस्ट्रार के पास रजिस्ट्री के लिए प्रस्तुत करना होता है। यह भी व्यवस्था है कि रजिस्ट्रार विवरण तथा प्रपत्र या उसकी प्रतिलिपि को 30 दिन में प्रस्तुत करने की अवधि को सात दिन की अवधि तक और बढ़ा सकता है यदि कम्पनी रजिस्ट्रार को इस बात से संतुष्ट कर देती है कि विवरण व उक्त प्रपत्र या उसकी प्रतिलिपि को उक्त अवधि ा में प्रस्तुत न किये जाने के लिए उसके पास पर्याप्त कारण था।

प्रभार की रजिस्ट्री न कराने के परिणाम
(Consequences of not Registering a Charge)

प्रत्येक कम्पनी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने कार्यालय में प्रभारों का रजिस्टर रखे। धारा 143

यदि रजिस्टर कराने योग्य प्रभार की रजिस्ट्रार के पास एक निश्चित समय में रजिस्ट्री नहीं करवायी गई है तो वह प्रभार (Liquidator) के विरूद्ध होगा, ऋण वैध रहेगा, असुरक्षित ऋण की तरह। धारा 125 (2)

कम्पनी का प्रत्येक वह अधिकारी, जिसने त्रुटि की है जुर्माने द्वारा दण्डित किया जाएगा जो त्रुटि की अवधि में प्रत्येक दिन के लिए 500 रू. तक हो सकता है। धारा 142 (1)

प्रभार की सूचना की तिथि
(Date of Notice Regarding Charges)

जब कम्पनी की किसी सम्पत्ति के ऐसे प्रभार की रजिस्ट्री कर दी जाती है जिसकी रजिस्ट्री कराना धारा 125 के अधीन आवश्यक है, तो कोई व्यक्ति जो ऐसे प्रभावों के अधीन सम्पत्ति या उसके किसी भाग को प्राप्त करता है, उसके लिय यह माना जाएगा कि उसे सूचना रजिस्ट्री की तिथि से थी। धारा 126

प्रभारों का भुगतान अथवा सन्तुष्टि
(Payment or Satisfaction of Charges)

कम्पनी द्वारा प्रभारों का भुगतान अथवा सन्तुष्टि कर देने के उपरान्त जिसकी रजिस्ट्री धारा 125 के अनुसार की गई है, 30 दिन के भीतर रजिस्ट्रार को सूचित करना होगा। रजिस्ट्रार यह सूचना प्रभार धारक का देगा तथा एक निश्चित समय तक आपत्ति न आने पर रजिस्ट्रार सन्तुष्टि का मेमोरेन्डम प्रभारों के रजिस्टर में प्रविष्ट कर देगा। धारा 138

यदि रजिस्ट्रार को किसी रजिस्ट्री किए हुए प्रभार के सम्बन्ध में इस बात का प्रमाण मिल जाता है कि वह ऋण, जिसके लिए प्रभार किया गया था, भुगतान कर दिया गया है या प्रभार की हुई सम्पत्ति प्रभार से मुक्त कर दी गयी है तो वह प्रभारों के रजिस्टर में इसका लेख कर सकता है। इस दशा में यह आवश्यक नहीं है कि उसे कम्पनी द्वारा इस प्रकार की सूचना मिलनी ही चाहिए, अर्थात् बिना कम्पनी से सूचना पाये हुए केवल उचित प्रमाण के आधार पर ही वह लेखे कर सकता है। धारा 139

जब रजिस्ट्रार धारा 138 अथवा 139 के अधीन, पूर्ण अथवा आंशिक संतुष्टि की टिप्पणी की प्रविष्टि रजिस्टर कर लेता है, तो यह आवश्यक है कि वह ऐसी टिप्पणी की एक प्रतिलिपि कम्पनी को भेजे। धारा 140

प्रभारों का रजिस्टर
(Register of Charges)

प्रभारों के रजिस्टर से आशय ऐसी पुस्तक से है जिसमें कम्पनी द्वारा अपनी सम्पत्ति पर प्रभार उत्पन्न करने की दशा में सभी विवरण रखे जाते हैं। यह रजिस्टर दो व्यक्तियों द्वारा अलग–अलग बनाये और रखे जाते हैं– 1. रजिस्ट्रार द्वारा तथा 2. कम्पनी द्वारा।

1. **रजिस्ट्रार द्वारा प्रभावों का रजिस्टर रखना (Register of Charges Maintained by Registrar):** कम्पनी अधिनियम के अधीन कम्पनियों के रजिस्ट्रार को प्रत्येक कम्पनी के लिए अलग से प्रभारों का एक रजिस्टर रखना होगा जिसमें प्रत्येक प्रभार के सम्बन्ध में सम्पूर्ण विवरण जैसे प्रभार उत्पन्न करने की तिथि, प्रभार की धन राशि, सम्पत्ति का संक्षिप्त विवरण तथा प्रभार के अधिकारी व्यक्तियों के नाम लिखना आवश्यक है। इस रजिस्टर का निरीक्षण कोई भी व्यक्ति एक रूपया शुल्क देकर किसी भी समय कर सकता है।

2. **कम्पनी द्वारा रखा जाने वाला प्रभाव रजिस्टर (Register of Charges maintained by Company):** प्रत्येक कम्पनी को अपने रजिस्टर्ड कार्यालय में प्रभारों का एक रजिस्टर रखना आवश्यक है जिसमें समस्त चल व स्थिर प्रभारों का विवरण रखना होगा। यदि कोई अधिकारी इस रजिस्टर में जान–बूझकर प्रविष्टि नहीं करता है तो उस पर 500 रूपये तक दण्ड लगाया जा सकता है। इस रजिस्टर का कम्पनी के किसी भी अधिकारी अथ्वा ऋणदाता द्वारा कार्यालय घण्टों में किसी भी समय बिना शुल्क के निरिक्षण किया जा सकता है। कम्पनी व्यापक सभा में निरिक्षण के समय पर प्रतिबन्ध लगा सकती है लेकिन यह किसी भी दशा में 2 घण्टे प्रतिदिन से कम नहीं किया जा सकता। अन्य व्यक्ति एक रूपया शुल्क देकर निरीक्षण कर सकते है। निरीक्षण के लिए इन्कार करने पर सम्बन्धित अधिकारी को दण्डित किया जा सकता है, न्यायालय निरीक्षण करने का आदेश भी दे सकता है। {धारा 143 व 144}

प्रभार के अधीन प्राप्त सम्पत्तियों की रजिस्ट्री

(Acquisition of Property Subject to a Charge)

जब कम्पनी ऐसी कोई सम्पत्ति प्राप्त करती है जो किसी ऐसे प्रभार के अधीन है जिसकी रजिस्ट्री कराना धारा 125 के अन्तर्गत आवश्यक है, तो कम्पनी की सम्पत्ति को प्राप्त करने की तिथि के बाद 30 दिन के अन्दर प्रभार का विवरण तथा प्रभार उत्पन्न करने वाले प्रपत्र की एक प्रमाणित प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के लिए प्रस्तु करना आवश्यक है। यदि इस प्रावधान का पालन उत्पन्न करने वाले प्रपत्र की एक प्रमाणित प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के लिए प्रस्तुत करना आवश्यक है। यदि इस प्रावधान का पालन करने में त्रुटि की जाती है तो, कम्पनी तथा प्रत्येक दोषी अधिकारों पर 500 रू. तक जुर्माना किया जा सकता है।

प्रभारों के रजिस्टर का कम्पनी लॉ बोर्ड द्वारा सुधार

(Rectification of Register of Charges by Company Law Board)

यदि कम्पनी लॉ बोर्ड इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि प्रभार का या संतुष्टि को निर्धारित समय में रजिस्टर कराने की भूल या ऐसे प्रभार के किसी विवरण की भूल या मिथ्या वर्णन जान–बूझकर नहीं थी, अथवा अन्य किसी पर्याप्त कारण से थी, अथवा अन्य किसी पर्याप्त कारण से थी, अथवा ऐसे स्वभाव की नहीं है जो कम्पनी के ऋणदाताओं अथवा अंशधारियों को प्रभावित कर सकती है, तो वह कम्पनी या हित रखने वाले अन्य किसी व्यक्ति के आवेदन पर तथा ऐसी शर्तों पर जोकि कम्पनी लॉ बोर्ड को उचित प्रतीत होती है, रजिस्ट्री के समय में वद्धि करने की आज्ञा दे सकता है, या जैसी भी दशा हो, सुधार की आज्ञा दे सकता है। संशोधन अधिनियम 1960 के अनुसार कम्पनी लॉ बोर्ड को इस सम्बन्ध में कम्पनी को आदेश देने का भी अधिकार है। मूल अधिनियम के अधीन यह व्यवस्था नहीं थी। धारा 141

यदि (i) कम्पनी द्वारा उत्पन्न किए गए किसी प्रभार का आवश्यक विवरण, या (ii) भुगतान या संतुष्टि का आवश्यक विवरण, रजिस्ट्रार को रजिस्ट्री के लिए प्रस्तुत करने में त्रुटि की जाती है तो कम्पनी तथा कम्पनी का प्रत्येक वह अधिकारी जिसने त्रुटि की है, जुर्माने द्वारा दण्डित किया जाएगा, जो त्रुटि की अवधि में प्रत्येक दिन के लिए 500 रू. तक हो सकता है।

अध्याय-7

प्रबन्ध एवं प्रशासन
(Management and Administration)

कम्पनियों का उचित प्रबन्ध लोक–हित का विषय है क्योंकि इनके कुशल कार्य–संचालन में एक ओर तो एक शेयरध ाारी की हैसियत से अथवा एक कर्मचारी अथवा एक लेनदार की हैसियत से असंख्य व्यक्तियों के हित निहित होते हैं और दूसरी ओर ऐसे अवांछनीय लोग भी होते हैं जो समाज के भोले–भाले सदस्यों का शोषण करने पर उतारू होते हैं। संभवतः यह निर्णय किया गया कि कम्पनी का प्रबन्ध एवं संचालन अंशधारियों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा किया जाए जो निजी तौर पर 'संचालक कहलाते हैं और सामूहिक रूप में संचालन मण्डल' कहलाते हैं। 'संचालक मण्डल' कम्पनी की योजना बनाने के लिए सर्वाच्च अधिकारी है। यह मण्डल ही प्रबन्ध संचालक, मैनेजर और सचिव की नियुक्ति करता है। अतः कम्पनी के प्रबन्ध संचालन में जो व्यक्ति सक्रिय रूप से भाग लेते हैं वे प्रबन्धकीय कर्मचारियों की श्रेणी मे आते हैं।

अध्ययन के दष्टिकोण से कम्पनी के प्रबन्ध संचालन में निम्न व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है–

1. संचालक, 2. प्रबन्ध अभिकर्ता, 3. प्रबन्ध–संचालक, 4. प्रबन्धक, 5. सचिव, 6. विधि सलाहकार, 7. सचिव एवं कोषाध्यक्ष इत्यादि। ये सभी संचालक मण्डल के निर्दशन में कार्य करते हैं।

संचालक
(Director)

अर्थ एवं परिभाषा

(Meaning and Definition)

एक कम्पनी केवल राजनियम के अधीन निर्मित एक व्यक्ति है। वह एक कत्रिम व्यक्ति है, प्राकतिक व्यक्ति नहीं। इसलिए वह अपने कार्यों को अपने एजेण्टों अथवा अपने द्वारा नियुक्त किये गये व्यक्तियों के द्वारा ही निष्पादित कर सकती है। जिन व्यक्तियों के द्वारा वह अपने कार्यों को निष्पादित करती है उन्हें 'संचालक' कहते हैं।

'संचालक' शब्द की परिभाषा कम्पनी अधिनियम में नहीं दी हुई है। हाँ, धारा 2 (13) में बताया गया है कि 'संचालक एक ऐसा व्यक्ति है जो संचालक की तरह कार्य कर रहा हो, चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाए।' [Director includes any person occupying the position of director by whatever name called. —Section 2(13)] इसका आशय यह है कि संचालक होने के लिए उसके कार्यों का महत्व है, नाम का नहीं। वास्तव में 'संचालक' वे व्यक्ति हैं जोकि कम्पनी के व्यापार का संचालन एवं प्रबन्ध करने के लिए अंशधारियों में से ही चुने जाते हैं।

संचालकों की संख्या

(Number of Directors)

कम्पनी अधिनियम की धारा 252 के अनुसार एक सार्वजनिक कम्पनी में (धारा 43–A के अन्तर्गत जो सार्वजनिक कम्पनी बन गई है उसको छोड़कर) संचालकों की न्यूनतम संख्या तीन होनी चाहिए। धारा 252(1) के अनुसार अन्य सभी कम्पनीयों में संचालकों की न्यूनतम संख्या दो होनी चाहिए। संचालकों की अधिकतम संख्या अन्तर्नियमों में उल्लेखित होती है। कम्पनी अपनी साधारण सभा से साधारण प्रस्ताव द्वारा अन्तर्नियमों में निर्धारित सीमा के अन्दर अपने संचालकों की संख्या में कमी या वद्धि कर सकती है। परन्तु एक सार्वजनिक कम्पनी में संचालकों की कुल

संख्या प्रस्तावित वद्धि के कारण यदि 12 से अधिक हो जाती है, तो प्रस्ताव की स्वीकति केन्द्रीय सरकार से अनूमोदित होनी अनिवार्य है परनतु यह व्यवस्था स्वतंत्र निजी कम्पनी पर लागू नहीं होती है।

केवल व्यक्ति ही संचालक हो सकते हैं

(Only Individuals can be Directors)

किसी भी समामेलित संस्था, संगठन अथवा फर्म को कम्पनी का संचालक नियुक्त नहीं किया जा सकता और केवल व्यक्ति को ही इस पद पर नियुक्त किया जा सकता है। धारा 253 ऐसा इसलिए है क्योंकि संचालक एक न्यासी के रूप में कार्य करता है। इस तरह के कार्यालय के कार्यों को अगर पूरा नहीं किया जाता तो कोई जिम्मेवार व्यक्ति होना चाहिए जिससे बात की जा सके। यदि संचालक कोई समामेलित संस्था, संगठन अथवा फर्म है तो किसी व्यक्ति विशेष की जिम्मेवारी निश्चित नहीं की जा सकती।

यदि किसी कम्पनी के सभी सदस्य समामेलित संस्थाएँ हों तो उपरोक्त प्रावधान का पालन करना असम्भव हो जाता है जब तक–

1. कम्पनी के अन्तर्नियमों में यह व्यवस्था न हो कि संचालक बनने के लिए योग्यता अंशों (Qualification Shares) की आवश्यकता नहीं है ताकि बाहरी लोगों को संचालक नियुक्त किया जा सके, अथवा
2. समामेलित संस्थाएँ अपने नामंकित व्यक्ति (Nominee) नियुक्त नहीं करती एवं उन्हें अपने योग्यता अंश हस्तांतरित नहीं करती।

संचालकों की योग्यताएँ
(Qualifications of Directors)

कम्पनी अधिनियम में संचालक के लिए कोई शैक्षणि या अंशों के धारण सम्बन्धी कोई योग्यता निर्धारित नहीं की गई। ऐसा एक भ्रम प्रचलित है कि संचालक कम्पनी का अंशधारी होना ही चाहिए। परन्तु ऐसी बात नहीं है। जब तक कि अन्तर्नियमकों में कोई अन्य व्यवस्था नहीं हो, एक संचालक का कम्पनी का अंशधारी होना अनिवार्य नहीं है। लेकिन अन्तर्नियमों में प्रायः संचालकों के योग्यता अंशों की व्यवस्था की जाती है।

योग्यता अंश

(Qualification Shares)

यदि अन्तर्नियमों में ऐसी व्यवस्था हो तो संचालकों को निम्नलिखित द्वारा योग्यता अंश प्राप्त करना चाहिएः

1. संचालकों को अपनी नियुक्ति के दो महीने के अन्दर अपने योग्यता अंश लेना आवश्यक है, यदि पहले से उसके पास कोई अंश नहीं हो।
2. यदि अन्तर्नियमों में, नियुक्ति से पहले या बाद दो महीने से कम समय में योग्यता अंश लेने की व्यवस्था है तो ऐसी व्यवस्था व्यर्थ होगी।
3. योग्यता अंशें का अंतिम मूल्य 5,000 रूपये से अधिक नहीं होना चाहिए। यदि एक अंश का मूल्य ही 5,000 रूपये या अधिक हो तो एक अंश ही योग्यता अंश माना जाएगा।
4. अंश अधिपत्र योग्यता अंश नहीं माने जायेंगे।
5. यदि संचालक अपनी नियुक्ति के दो माह के अन्दर योग्यता–अंश लेने में असमर्थ रहते हैं तो उनका पद अपने आप ही रिक्त माना जायेगा।
6. संचालक अपने योग्यता अंशों को कम्पनी में हित रखने वाले से भेंट स्वरूप स्वीकार नही करता है। उसे अपने योग्यता अंशों के लिए भुगतान करना आवश्यक है।

7. यदि अन्तर्नियमों द्वारा अधिकत हो तो, संचालक अपने अंश (क) अन्य व्यक्तियों के प्रन्यासी (trustee) के रूप में रख सकता है तथा (ख) वह अन्य व्यक्तियों के साथ संयुक्त रूप से भी योग्यता अंश रख सकता है। परन्तु अन्तर्नियमों के अनुसार, यदि उसे अपने योग्यता अंश व्यक्तिगत नाम में रखना आवश्यक है, तो उसे ऐसा करना पड़ेगा।
8. यदि किसी व्यक्ति की संचालकता के कार्यकाल में कम्पनी के अन्तर्नियमों में परिवर्तन करके योग्यता अंशें में वद्धि की जाती है तो वह यह अंश लेने के लिए बाध्य नहीं है।
9. यदि कोई व्यक्ति निर्धारित समय में अपने योगयता अंश लिए बिना संचालक की तरह कार्य करता है तो उसे 50 रूपये प्रतिदिन के हिसाब से जुर्माना किया जा सकता है। धारा 272
10. उपर्युक्त व्यवस्थाएं, एक ऐसी निजी कम्पनी, जो सार्वजनिक कम्पनी की सहायक नहीं है, पर लागू नहीं होती और न ही ऐसे संचालकों पर लागू होती हैं जिनकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा धारा 408 के अधीन की गई हैं।

लिखित सहमति

(Written Consent)

कम्पनी अधिनियम की धारा 266 के अनुसार, एक व्यक्ति तभी संचालक बन सकता है जबकि–

1. उसने संचालक बनने की लिखित सहमति रजिस्ट्रार के पास भेज दी हो।
2. या उसने योग्यता अंशों के लिए अनुबन्ध या सीमानियम (Memorandum) पर हस्ताक्षर कर दिए हों, अथवा
3. कम्पनी से उसने अपने योग्यता अंश ले लिए हों तथा उनका मूल्य चुका दिया हो या चुकाने के लिए सहमत हो गया हो, अथवा
4. कम्पनी में यदि उसके कोई योग्यता अंश हों तो उन्हें लेने तथा उनका मूल्य चुकाने का लिखित दायित्व (Undertaking) हस्ताक्षर करके रजिस्ट्रार के पास भेज दिया हो; अथवा
5. यदि उसके योग्यता अंश हों, तो रजिस्ट्रार के पास ऐसा शपथ–पत्र (Affidavit) भेज दिया गया हो कि उसके योग्यता अंश उसके नाम में रजिस्टर्ड हैं।

केवल व्यक्ति ही संचालक

(Only Individuals can be Directors)

किसी समामेलित संस्था, संघ अथवा फर्म को किसी कम्पनी का संचालक नियुक्त नहीं किया जा सकता। केवल व्यक्तियों (Individuals) को ही संचालक नियुक्त किया जा सकता है।

संचालकों की अयोग्यताएँ

(Disqualifications of Directors)

धारा 274 में बताया गया है कि कम्पनी के संचालक के रूप में नियुक्ति के लिए किसी ऐसे व्यक्ति को योग्य नहीं माना जाएगा–

1. जिसे विकत मस्तिष्क का घोषित कर दिया गया हो;
2. जो दायित्वमुक्त दिवालिया न हो;
3. जिसने दिवालिया घोषित किए जाने के लिए आवेदन दे रखा हो;
4. जिसे न्यायालय ने नैतिक अपराध के लिए दोषी ठहराया हो और कम–से–कम छः मास के कारावास का दण्ड दिया हो और दण्ड की समाप्ति की तारीख से अभी पाँच वर्ष की अवधि व्यतीत न हुई हो;
5 जिसने अपने शेयरों पर माँगी गई राशि छः मास तक अदा न की हो।
6. जिसे न्यायालय ने धारा 203 के अधीन कम्पनी के प्रवर्तन, निर्माण अथवा उसके प्रबन्ध में कपटपूर्ण कार्य करने के कारण अयोग्य घोषित कर दिया हो।

संचालक पद की संख्या पर प्रतिबन्ध

(Restriction on Number of Directorships)

कोई व्यक्ति एक साथ 20 कम्पनियों से अधिक का संचालक नहीं बन सकता। धारा 275

ऐसा प्रत्ये संचालक, जो इस अधिनियम के लागू होने से पहले 20 से अधिक कम्पनियों का संचालक था तो इस अधिनियम के लागू होने के 2 महीने के अन्दर उसे उन कम्पनियों में से 20 कम्पनियों को चुन लेना चाहिए जिनका वह संचालक बना रहना चाहता है तथा शेष कम्पनियों के संचालक–पद से त्याग–पत्र देना चाहिए। वह अपने इस निर्णय की सूचना प्रत्येक सम्बन्धित कम्पनी, रजिस्ट्रार तथा केन्द्रीय सरकार को देगा। धारा 276

यदि कोई व्यक्ति जो पहले से ही 20 कम्पनियों का संचालक है और वह किसी अन्य कम्पनी में संचालक नियुक्त किया गया है, तो उसे अपनी नियुक्ति के 15 दिन के अन्दर किसी एक कम्पनी के संचालक–पद से त्याग–पत्र दे देना चाहिए अन्यथा उसकी नियुक्ति प्रभावी नहीं होगी। धारा 277

उपरोक्त सभी दशाओं में 20 कम्पनियों की गणना करते समय निम्न कम्पनियाँ शामिल नहीं की जाएगी–

1. एक निजी कम्पनी जो किसी सार्वजनिक कम्पनी की सहायक या सूत्रधारी कम्पनी नहीं है;
2. असीमित कम्पनी;
3. एक ऐसी संस्था जो लाभ अर्जित करने के लिए व्यापार न कर रही हो या जो लाभांश के भुगतान पर प्रतिबन्ध लगाती हो; तथा
4. एक ऐसी कम्पनी जिसमें वह वैकल्पिक संचालक (Alternate Director) है। धारा 278

कम्पनी संशोधन अधिनियम 1965 के अनुसार, जब संचालक पद के लिए आयु–सीमा का कोई प्रतिबन्ध नहीं रहा।

दण्ड

(Penalty)

कोई ऐसा व्यक्ति जो कि उक्त अवस्थाओं के विरूद्ध 20 से अधिक कम्पनियों का संचालक पद धारण (ग्रहण) करता है जुर्माने द्वारा दण्डित किया जायेगा जो कि 20 कम्पनियों के बाद की प्रत्येक कम्पनी के लिए 5,000 रूपये तक हो सकता है।

धारा 279

संचालकों की वैधानिक स्थिति

(Legal Position of Directors)

कम्पनी के संचालकों की वासतविक वैधानिक स्थिति का यथार्थ चित्रण करन अत्यन्त कठिन है। क्योंकि संचालकों को कभी एजेण्ट, कभी न्यासी (Trustee), कभी–कभी प्रबन्ध संचालकों के नाम से जाना जाता है। परन्तु इनमें से कोई भी अभिव्यक्ति उनकी सम्पूर्ण शक्तियों व दायित्वों को पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं कर पाती। इनका प्रयोग केवल किसी एक समय पर अथवा किसी विशेष उद्देश्य के लिए किया जाता है। अतः संचालकों की स्थिति का गहन अध्ययन निम्नलिखित रूपों में किया गया है–

1. **संचालकों की स्थिति प्रतिनिधि के रूप में (Position of Directors as an Agent):** कम्पनी एक कत्रिम व्यक्ति होने के कारण अपने व्यवसाय की स्वयं देखभाल नहीं कर सकती, इसलिए कम्पनी के प्रबन्ध का कार्य किसी मानवीय प्रतिनिधि को सौंपा जाता है जिसे संचालक कहते हैं। संचालक अंशधारियों के चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं, अतः वे कम्पनी का व्यवसाय अंशधारियों के लिए चलाते हैं। इसलिए उन्हें कम्पनी का एजेण्ट कहा जा सकता है।

   परन्तु यह कहना भी उचित नहीं है कि संचालक कम्पनी के एजेण्ट होते हैं उन्हें कुछ मामलों में स्वतन्त्र अधिकार होते हैं। वे सभी मामलों में अंशधारियों से सलाह लेने के लिए बाध्य नहीं होते। यह कहना सत्य नहीं है कि संचालक कम्पनी के एजेण्ट हैं क्योंकि संचालकों को चुना जाता है न कि एजेण्ट की भाँति नियुक्त

किया जाता है। जबकि संचालकों को कुछ विषयों के सम्बन्ध में स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त होते हैं जबकि एजेण्ट को स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त नहीं होते।

2. **संचालक अधिकारियों के रूप में (Directors as Officers):** संचालकों को कम्पनी अधिनियम की धारा 2(30) के अन्तर्गत कुछ विशेष मामलों के लिए अधिकारी समझा जाता है, अतएव यदि कम्पनी अधिनिमय के कुछ प्रावधानों का कड़ाई से पालन नहीं किया जाता, तो उन्हें दण्डित किया जा सकता है।

3. **संचालक कर्मचारियों की तरह (Director as Employees)**–संचालक कम्पनी के एजेण्ट अवश्य होते हैं, किन्तु वे कम्पनी अधिनियम के अनतर्गत कर्मचारियों को दिये जाने वाले लाभों तथा विशेषाधिकारों के हकदार नहीं हेाते। किन्तु संचालक को कम्पनी से एक विशेष सेवा अनुबन्ध कर, कम्पनी का कर्मचारी बनने से कोई नहीं रोक सकता।

   वास्तव में संचालकों को कम्पनी का कर्मचारी नहीं कहना चाहिए। वे तो प्रति वर्ष अंशधारियों द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। प्रबन्ध संचालन में उन्हें स्वतंत्रता होती है। अंशधारी उन्हें किसी कार्य के लिए बाध्य नहीं कर सकते। इस प्रकार संचालकों को कम्पनी के कर्मचारी के रूप में नही माना जा सकता।

4. **संचालक प्रबन्ध करने वाले साझेदारों की तरह (Director as Managing Partners)**–संचालक अंशधारियों के प्रतिनिधि के रूप में चुने जाते हैं। इस प्रकार वे प्रबन्धक साझेदारों की स्थिति में होते हैं। स्वयं महत्त्वपूर्ण अंशधारी होने के कारण भी वे अन्य अंशधारियों के साझेदार बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त संचालक अंश आबंटित करने, माँग करने और अंश हरण करने आदि जैसे स्वामित्वपूर्ण कार्य भी करते हैं जो उनके प्रबन्ध साझेदार होने का प्रमाण है।

   परन्तु किसी संचालक को एक फर्म के साझेदारों की भाँति अन्य संचालकों अथवा अंशधारियों को बाध्य करने का अधिकार नहीं होता। इसी प्रकार स्वामी या साझेदार की दशा में सेवानिवत्ति का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। जबकि संचालकों के साथ वास्तव में ऐसा होता है। इस कारण संचालक प्रबन्घ साझेदार का स्वामी नहीं होते।

5. **संचालकों की स्थिति ट्रस्टियों की तरह (Director as Trustees)**–वैधनिक दष्टि में ट्रस्टी नहीं होते, क्योंकि प्रन्यासी (Trustees) अधिनियम के अनुसार ट्रस्टी वह व्यक्ति है जिसे कि स्वामित्व का हस्तान्तरण हो जात है। परन्तु संचालक तो कम्पनी के वैतनिक कर्मचारी होते हैं, अतः ये ट्रस्टी नहीं हो सकते। इसलिए उनकी स्थिति साधारण प्रन्यासियों से भिन्न है। यही कारण है कि उन पर प्रन्यासी अधिनियम की सभी व्यवस्थाएँ लागू नहीं होतीं। ये केवल कम्पनी के धन के लिए प्रन्यासी हैं न कि ऋणों के सम्बन्ध में। संचालक कम्पनी के अधिकारों के लिए भी प्रन्यासी हैं, इसलिए उन्हें अंशों के आबंटन इत्यादि का पर्याप्त ध्यान रखना पड़ता है।

संचालकों की नियुक्ति

(Appointment of Directors)

कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 253 के अनुसार किसी भी समामेलित संस्था, संघ अथवा फर्म को कम्पनी का संचालक नियुक्त नहीं किया जा सकता। केवल व्यक्ति ही संचालक नियुक्त हो सकते हैं। ऐसा कोई भी व्यक्ति जो अनुबन्ध करने की क्षमता रखता है और जिसके पास आवश्यक न्यूनतम योग्यता अंश हैं (यदि अन्तर्नियमों में ऐसी कोई व्यवस्था है) तथा धारा 274 के अन्तर्गत नियुक्ति के अयोग्य नहीं है, कम्पनी की संचालक नियुक्त किया जा सकता है।

संचालकों की नियुक्ति निम्न में से किसी एक विधि द्वारा की जा सकती हैः

1. **पार्षद् सीमानियम के हसताक्षरकर्त्ताओं द्वारा (By the Signatories of the Memorandum of Association)**–कम्पनी के प्रथम संचालकों (First directors) की नियुक्ति प्रवर्त्तकों (Promoters) द्वारा की जाती है और उनके नाम अनतर्नियमों में दिये जाते हैं। यदि अनतर्नियमों में संचालकों का नाम नहीं दिया गया और न ही नियुक्ति की कोई व्यवस्था इसमें उल्लिखित है तो सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति ही उस समय तक संचालक माने जाएंगे जब तक कि संचालकों की नियुक्ति कम्पनी की साधारण सभा में न कर दी जाए। धारा 254

2. **कम्पनी द्वारा संचालकों की नियुक्ति (Appointment of Directors by Company)**–कम्पनी के प्रथम संचालकों की कार्य–अवधि की प्रथम साधारण सभा तक ही सीमित होती है। कम्पनी की प्रथम सभा में ही

संचालकों की नियुक्ति होती है। धारा 255 के अनुसार जब तक अन्तर्नियमों में प्रत्येक साधारण सभा के समय सभी संचालकों के सेवानिवत्त होने की व्यवस्था न हो, किसी भी सार्वजनिक कम्पनी या निजी कम्पनी जो किसी सार्वजनिक कम्पनी की सहायक कम्पनी हो, के कुल संचालकों का कम–से–कम 2/3 भाग पारी से अवकाश ग्रहाण करने की विधि के अधीन नियुक्त किए जाएंगे। बाकी 1/3 संचालक स्थायी रूप से नियुक्त किए जा सकते हैं। निजी कम्पनी जोकि किसी सार्वजनिक कम्पनी की सहायक नहीं है, सभी संचालकों को स्थायी रूप में नियुक्त कर सकती है।

साधारण सभा में संचालकों की नियुक्ति सम्बन्धी मुख्य व्यवस्थाएँ निम्नलिखित हैं–प्रथम साधारण सभा में संचालकों की नियुक्ति के बाद अगली प्रत्येक वार्षिक साधारण सभा में संचालकों की कुल संख्या का 2/3 का 1/3 भाग संचालक पारी से अवकाश ग्रहण करेंगे।

यदि रिटायर होने वाले संचालकों की संसख्या पूर्णरूप से 3 से विभाजित संख्या आती है, उतनी ही संचालक अवकाश ग्रहण करेंगे। ऐसी कम्पनी के बाकी 1/3 संचालक संख्या तथा स्वतंत्र निजी कम्पनी के सभी संचालक भी अन्तर्नियम की व्यवस्थाओं के अधीन कम्पनी द्वारा साधरण सभा में नियुक्त किए जाते हैं।

यदि अन्तर्नियम में ऐसी व्यवसाी नहीं है तो कम्पनी के कुल संचालकों का 1/3 भाग पदेन या स्थायी संचालक होंगे। शेष 2/3 संचालकों की कुल संख्या में से 1/3 संचालक संख्या प्रत्येक वार्षिक साधारण सभा में बारी–बारी से अवकाश ग्रहण करेंगे। यदि अवकाश ग्रहण करने वाले संचालकों की संख्या, पूर्णरूप से विभाजित होने वाली नहीं है तो 2/3 संख्या के निकटतम जो संख्या आती है, उतने ही संचालक अवकाश ग्रहण करेंगे।

उदाहरण के लिए, यदि कम्पनी में संचालक 8 हैं और उनमें $(8 \times 2/3) = 5$ को बारी–बारी से अवकाश ग्रहण करना है तो इनमें से $(5 \times 1/3) = 2$ संचालक बारी–बारी से प्रति वर्ष अवकाश ग्रहण करेंगे। बारी–बारी से अवकाश ग्रहण करेंगे। बारी–बारी से अवकाश ग्रहण करने वाले संचालक वे होंगे जो सबसे लम्बी अवधि के लिए संचालक रहते हैं। यदि दो संचालक एक ही तिथि को संचालक बनते हैं तो उनमें अवकाश ग्रहण करने वाले संचालक का फैसला लाटरी से किया जाएगा।

बारी–बारी से अवकाश ग्रहण करने वाले संचालकों के रिक्त स्थान को, उसी सभा में उसी व्यक्ति या किसी अन्य व्यक्ति को संचालक के पद पर नियुक्त करके भरा जा सकता है। यदि अवकाश ग्रहण करने वाले संचालकों के स्थान पर कोई नई नियुक्ति नहीं हो पाती तो सभा अगले सप्ताह उसी दिन तक के लिए स्थगित कर दी जाएगी। यदि स्थगित सभा में भी रिक्त स्थान नहीं भरा जाता है तो अवकाश ग्रहण लेने वालो को ही पुनर्नियुक्त समझा जाएगा या समझे जाएँगे परन्तु निम्नलिखित परिस्थितियों को छोड़कर–

(a) उसकी पुनः नियुक्ति का प्रस्ताव मूल या स्थगित सभा में अस्वीकार हो चुका है।

(b) यदि अवकाश ग्रहण करने वाले संचालक ने लिखित रूप में कम्पनी या संचालक मण्डल को, अपनी पुनः नियुक्ति के लिए अपनी अनिच्छा लिखित रूप में प्रस्तुत कर दी है।

(c) यदि पुनः नियुक्ति के लिए वह अयोग्य हो या अयोग्य माना जा चुका हैं

(d) यदि दो या दो से अधिक संचालकों की नियुक्ति के लिए केवल एक ही प्रस्ताव है।

वार्षिक साधारण सभा में अवकाश ग्रहण करने वाले व्यक्ति के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को भी संचालक के पद पर नियुक्त किया जा सकता है मगर शर्त यह है कि उसने या उसका नाम प्रस्तावित करने वाले व्यक्ति ने सभा से कम–से–कम 14 दिन पूर्व इस आशय की लिखित सूचना तथा सूचना के साथ 500 रूपये कम्पनी को भेज दिए हों।

इस सम्बन्ध में कम्पनी की भी यह कर्त्तव्य है कि सभा की तिथि से 7 दिन पहले इस प्रकार की सूचना प्रत्येक सदस्य को व्यक्तिगत रूप से या सभा की तिथि से 7 दिन पूर्व संचालक पद पर खड़े होने वाले प्रत्याशी की सूचना को दो समाचार–पत्रों में विज्ञापित कर दें। ये समाचार–पत्र कम्पनी के पंजीकत कार्यालय के क्षेत्र में प्रचलित हों और उनमें एक समाचार–पत्र क्षेत्रीय भाषा का तथा दूसरा अंग्रेजी भाषा का होना चाहिए।

ध्यान रहे ये व्यवस्थाएँ एक स्वतंत्र निजी कम्पनी पर लागू नहीं होंगी।

धारा 261 (1) के अनुसार प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जिसका नाम संचालक पद के लिए प्रस्तावित किया गया है, को संचालक की तरह कार्य करने के लिए अपनी लिखित सहमति कम्पनी के पास प्रस्तु करनी होगी। लेकिन यह सहमति अवकाश ग्रहण करने वाले संचालक को दनी पड़ेगी।

संचालक को अपनी नियुक्ति के 30 दिन के भीतर संचालक के रूप में कार्य करने की अपनी लिखित सहमति रजिस्ट्रार के पास जमा कर देनी चाहिए।

3. **संचालक-मंडल द्वारा संचालकों की नियुक्ति (Appointment of Directors by the Board of Directors)**– निम्नलिखित परिस्थितियों में संचालक–मण्डल संचालकों की नियुक्ति कर सकता हैः

आकस्मिक रिक्तियाँ (Casual Vacancies)–यदि संचालक का कार्यकाल समाप्त होने से पहले किसी कारण (अर्थात मत्यु या त्याग–पत्र आदि) से उसका पद रिक्त हो जाता है तो उसे अन्तर्नियमावली में दिए गए विनियमों के अनुसार संचालक–मंडल द्वारा भरा जा सकता है। परन्तु इस प्रकार नियुक्त किया गया संचालक केवल उतने ही काल के लिए संचालक रह सकता है जिना कि मूल संचालक रहता। धारा 262

अतिरिक्त संचालक (Additional Director)–यदि अन्तर्नियमावली में व्यवस्था की गई हो तो संचालक–मंडल अतिरिक्त संचालक भी नियुक्त कर सकता है किन्तु अतिरिक्त संचालकों को सम्मिलित करते हुए संचालकों की कुल संख्या अन्तर्नियमों द्वारा निर्धारित अधिकतम संख्या से अधिक नहीं होनी चाहिए। ऐसे अतिरिक्त संचालक केवल आगामी वार्षिक साधारण सभा की तारीख तक अपने पदों पर कार्य करेंगे। धारा 260

स्थानापन्न संचालक (Alternate Directors)–इसी प्रकार अनतर्नियमावली में संचालक–मंडल को किसी ऐसे संचालक के स्थान पर कोई स्थानापन्न संचालक नियुक्त करने का अधिकार दिया जा सकता है, जो कम–से–कम तीन महीने के लिए उस राज्य से अनुपस्थित रहेगा, जहाँ सामान्यतया संचालक–मंडल की सभाएँ होती हैं। ऐसा स्थानापन्न संचालक मूल संचालक का कार्यकाल समाप्त हो जाने पर अथवा उसके राज्य में वापस लौट आने पर अपना पद छोड़ देगा। धारा 313

4. **केन्द्रीय सरकार द्वारा संचालकों की नियुक्ति (Appointment of Directors by Central Government)-** अत्याचार एवं कुप्रबंध की रोकथाम के लिए केन्द्रीय सरकार इतने व्यक्तियों को अतिरिक्त संचालक के रूप में नियुक्त कर सकती है, जितने कि कम्पनी लॉ बोर्ड को, कम्पनी या उसके शेयरधारियों के हितों या लोक–हित की सुरक्षार्थ, आवश्यक प्रतीत हों और तत्संबन्धी अपने आदेश में कम्पनी लॉ बोर्ड निर्दिष्ट करे। कम्पनी लॉ बोर्ड उपर्युक्त आदेश या तो केन्द्रीय सरकार द्वारा हवाला (reference) करने पर, अथवा कम्पनी के कम–से–कम एक सौ सदस्यों या कम–से–कम दस प्रतिशत मताधिकार रखने वाले सदस्यों द्वारा आवेदन दिए जाने पर जारी कर सकता है। केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए गए संचालक एक समय पर तीन वर्ष से अधिक के लिए नियुक्त नहीं किए जा सकते। ऐसे संचालकों को न तो योग्यता शेयर धारित करने होंगे और न ही उन पर चक्रानुक्रम में रिटायर होने की शर्त लागू होगी। उन्हें दो–तिहाई अथवा कोई अन्य आनुपातिक संख्या गिनने के प्रयोजन से संचालकों की कुल संख्या में भी सम्मिलित नहीं किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, सरकार द्वारा संचालकों की नियुक्ति के बाद संचालक–मंडल में किया गया कोई भी परिवर्तन तब तक प्रभावी नहीं होगा जब तक कम्पनी लॉ बोर्ड द्वारा उसकी पुष्टि न कर दी जाए।

5. **ततीय पक्षकारों द्वारा नियुक्ति (Appointment by Third Parties)**–यदि अन्तर्नियम में प्रावधान है तब संचालकों की कुल संख्या के 1/3 (एक तिहाई) भाग तक संचालक–संख्या की नियुक्ति निम्नलिखित पक्षों द्वारा की जा सकती है–

(i) ***बैंक एवं अन्य वित्तीय संस्थाएँ (Banks and Other Financial Institutions):*** जब बैंक अथवा अन्य वित्तीय संस्थाएँ कम्पनी को ऋण प्रदान करती हैं तो उसके प्रयोग पर नियंत्रण रखने के लिए ये संस्थाएँ निर्धारित संख्या तक संचालक नियुक्त करने का अधिकार प्रयोग कर सकती हैं।

(ii) ***ऋण-पत्रधारियों द्वारा (By Debentureholders):*** ऋण देने वाले ऋण पत्रधारियों को भी ऐसा अधिकार दिया जा सकता है।

(iii) ***व्यापार विक्रेता द्वारा (By Seller):*** व्यापार विक्रेता भी संचालक नियुक्ति का अधिकार प्राप्त करके संचालक नियुक्त कर सकता है।

(iv) ***कर्मचारियों द्वारा (By Employees):*** बड़ी–बड़ी कम्पनियाँ अपने कर्मचारियों को भी संचालक नियुक्ति का अधिकार प्रदान कर सकती हैं।

उपरोक्त पक्षों द्वारा नियुक्त संचालकों पर बारी–बारी से अवकाश ग्रहण सम्बन्धी व्यवस्था लागू नहीं होती।

संचालकों द्वारा पद-परित्याग अथवा रिक्त करना

(Vacation of Office by Directors)

1. **वैधानिक रूप से रिक्त होना (Statutory Vacation)**–कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 283 के अनुसार निम्नलिखित परिस्थितियों में एक संचालक का स्थान रिक्त हो जायेगा–

(i) ***योग्यता अंश न लेने पर (On not Taking Qualification Shares):*** यदि कोई संचालक अपनी नियुक्ति के 2 महीने के अन्दर कम्पनी के अन्तर्नियमों द्वारा निर्धारित योग्यता अंश नहीं लेता है अथवा किसी अन्य समय पर उसके पास निर्धारित योग्यता अंश नहीं है:

(ii) ***अस्वस्थ मस्तिष्क का घोषित होने पर Adjudged of Unsound Mind):*** यदि किसी न्यायालय द्वारा उसे अस्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति घोषित कर दिया गया हो;

(iii) ***दिवालिया घोषित होने पर (Adjudged as an Insolvent):*** यदि उसे दिवालिया घोषित कर दिया गया हो;

(iv) ***6 महीने का कारावास होना (Imprisonment for Six Months):*** यदि वह किसी न्यायालय द्वारा नैतिक अपराध (Morla Turpitude) के कारण अपराधी घोषित कर दिया जाता है और उसे कम–से–कम 6 माह के कारवास का दण्ड दिया जाता है;

(v) ***दिवालिया घोषित किए जाने के लिए आवेदन करना (To Apply to be Adjudicated an Insolvent):*** यदि वह स्वयं को दिवालिया घोषित किए जाने के लिए न्यालाय को आवेदन पत्र देता है;

(vi) ***याचनाओं का भुगतान न करने की दशा में (In Case of Non-payment of Calls):*** यदि उसने कम्पनी द्वारा की गई याचनाओं के भुगतान की अन्तिम तिथि के 6 माह के अन्दर भुगतान नहीं किया हो। लेकिन, यदि केन्द्रीय सरकार राजकीय राजपत्रों (गजट) में सूचना देकर यह अयोग्यता हटा देती है तो उक्त व्यवस्था लागू नहीं होगी;

(vii) ***तीन लगातार सभाओं में अनुपस्थित रहने पर (On Remaining Absent from Three Consecutive Meetings):*** यदि वह संचालक मण्डल से छुट्टी लिए बिना ही संचालक मण्डल की तीन लगातार सभाओं से अथवा 3 माह तक जो भी अधिक हो, अनुपस्थित रहता है;

(viii) ***कम्पनी से ऋण स्वीकार करने पर (On Accepting a Loan from the Company):*** यदि वह, अथवा ऐसी कोई फर्म जिसका वह संचालक है, अथवा ऐसी कोई निजी कम्पनी जिसका वह संचालक है, सरकार की पूर्व अनुमति के बिना, धारा 295 के विरूद्ध, कम्पनी से ऋण अथवा कोई गारण्टी अथवा कोई प्रतिभूति करता है;

(ix) ***अपना हित प्रकट न करना (Non-disclosure of his Interest):*** यदि वह धारा 299 के आदेशों का उल्लंघन करता है तथा कम्पनी के साथ किए गए या किए जाने वाले किसी अनुबन्ध में अपना हित संचालक मण्डल के सामने प्रकट नहीं करता है;

(x) ***पद से हटाये जाने पर 9On Removal from the Office):*** यदि उसे विशेष (उचित) सूचना देकर कम्पनी की व्यापक सभा में साधारण प्रस्ताव द्वारा संचालक पद से हटा दिया जाता है;

(xi) ***अयोग्य होने पर (On Becoming Disqualified):*** यदि उसे धारा 203 के अनुसार न्यायालय के आदेश द्वारा संचालक के पद पर कार्य करने के लिए अयोग्य घोषित कर दिया है;

(xii) ***पद के समाप्त होने पर (On Ceasing to Hold Office):*** यदि वह कम्पनी में कोई पद ग्रहण करने के कारण अथवा अन्य नियुक्ति के कारण संचालक की तरह नियुक्त हुआ हो, तो उसका स्थान उस समय रिक्त माना जाएगा जबकि वह उस पद या नियुक्ति पर नहीं रहता है।

उपरोक्त दशाओं में से, (iii), (iv), (xi) की दशा में पद परित्याग घोषणा, सजा अथवा आज्ञा से 30वें दिन की समाप्ति के बाद अथवा यदि इस सम्बन्ध में कोई अपील की गई तो अपील के निर्णय के 7वें दिन की समाप्ति के बाद से प्रभावशील माना जाएगा।

दण्ड (Penalty): यदि कोई संचालक अपने पद के परितयाग की जानकारी होने पर भी अपने पद पर कार्य जारी रखता है तो उसको त्रुटि की अवधि के दौरान 500 रूपये प्रतिदिन तक दण्डित किया जा सकता है।

संचालकों को हटाना

(Removal of Directors)

निम्नलिखित पक्षों द्वारा संचालको को हटाया जा सकता है–

1. **अंशधारियों द्वारा हटाया जाना (Removal by Shareholders)**–धारा 284 के अनुसार, कम्पनी किसी भी संचालक को उसका कार्य–काल समाप्त होने से पूर्व एक विशेष सूचना देकर और एक साधारण प्रस्ताव पारित करे उसको पद से हटा सकती है।

   संचालक हटाने सम्बन्धी प्रस्ताव की विशेष सूचना दी जानी आवश्यक है। प्रस्ताव की यह सूचना सामान्य सभा के कम–से–कम 14 दिन पहले दी जानी चाहिए। सूचना प्राप्त करके कम्पनी अपने सदस्यों को इस सूचना की जानकारी प्रदान करेगी। इस प्रस्ताव की एक प्रतिलिपि सम्बन्धित संचालक को भी भेजना चाहिए जिसमें कि सम्बन्धित संचालक सामान्य सभा में इस प्रस्ताव पर बहस के दौरान अपनी बात कह सकें।

   यदि किसी संचालक को हटाए जाने के बारे में प्रस्तावित संकल्प की सूचना दी गई है तो सम्बन्धित संचालक को उसके सम्बन्ध में कम्पनी को लिखित प्रतिवेदन करने का अधिकार है तथा वह यह अनुरोध भी कर सकता है कि उसकेप्रतिवेदन की सूचना कम्पनी के प्रत्येक सदस्यों को दी जाएं तत्पश्चात् कम्पनी ऐसे प्रतिवेदन की प्रतिलिपि सभी सदस्यों को भेजने के लिए बाध्य होगी जब तक कि कम्पनी लॉ बोर्ड द्वारा किन्हीं उचित कारणों से कम्पनी को मुक्त न कर दिया जाए। जैसे यदि कम्पनी लॉ बोर्ड यह अनुभव करे कि इस अधिकार का प्रयोग कम्पनी को बदनाम करने के लिए किया जाएगा तो कम्पनी को इस दायित्व से मुक्त किया जा सकता है।

   किसी संचालक को हटाए जाने से उत्पन्न रिक्त स्थान की पूर्ति उसी सभा में की जा सकती है, यदि प्रस्तावित नियुक्ति की भी विशेष सूचना भेज दी गई हो। यदि इस सभा में रिक्त स्थान की पूर्ति नहीं की जाती है तो संचालक मण्डल आकस्मिक रिक्ति समझकर रिक्त स्थान भर सकता है लेकिन शर्त यह है कि हटाए गए संचालक को पुनः नियुक्त न किया जाए।

   पद–मुक्त किया गया संचालक यदि उसे गलत आधार पर हटाया गया हो तो वह क्षतिपूर्ति की रकम के लिए दावा कर सकता है। क्षतिपूर्ति की रकम का हिसाब उसके पद की आय, हुई हानि तथा इसी पद के समाप्त होने वाले किसी अन्य पद की आय में हुई हानि के आधार पर लगाया जाएगा और हिसाब लगाते समय आयकर आदि जैसे दायित्व को ध्यान में रखा जाएगा।

   ध्यान रहे अंशधारी निम्नलिखित श्रेणियों के संचालकों को नही हटा सकते–

   (a) धारा 408 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए गए संचालक।

   (b) निजी कम्पनी का ऐसा संचालक जो 1 अप्रैल, 1952 को कम्पनी में आजीवन संचालक के रूप में कार्य करता था।

   (c) विशेष हित का प्रतिनिधित्व करने वाला संचालक जैसे ऋण–दाता, या बैंकिंग संस्था का संचालक।

2. **केन्द्रीय सरकार द्वारा हटाया जाना (Removal by Central Government)**–(धारा 388E)– केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार है कि कपट, कर्त्तव्य भंग, लापरवाही, विश्वास भंग आदि से सम्बन्धित प्रबन्ध

कर्मचारियों के विरूद्ध मामलों को उच्च न्यायालय को जाँच के लिए भेज सकती है और इस न्यायालय के निर्णय के आधार पर केन्द्रीय सरकार किसी भी संचालक को उसके पद से हटा सकती है।

इस प्रकार हटाया गया संचालक कम्पनी के संचालक पद पर या कम्पनी व्यापार तथा प्रबन्ध से सम्बन्धित किसी अन्य पद को इस आदेश की तिथि से 5 वर्ष तक ग्रहण कर सकता है, परन्तु सरकार इस अवधि को कम कर सकती है।

इस प्रकार पद से हटाए गए संचालक को अपने पद की हानि के लिए कोई भी क्षतिपूर्ति नहीं की जाएगी।

हटाए गए संचालक के स्थान पर कम्पनी केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति से किसी अन्य व्यक्ति को संचालक नियुक्त कर सकती है।

3. **न्यायालय द्वारा हटाया जाना (Removal by Court)**–धारा 402 – जब अन्याय तथा कुप्रबन्ध के निवारण के लिए धारा 397 या धारा 398 के अन्तर्गत न्यायालय में आवेदन–पत्र दिया जाता है तो न्यायालय भी किसी संचालक को उसके पद से हटाने का ओदश दे सकता है।

   इस प्रकार हटाया गया संचालक न्यायालय की पूर्व–अनुमति के बिना पाँच वर्ष की अवधि के लिए कम्पनी में कोई प्रबन्धकीय पद ग्रहण नहीं कर सकता। अपनी नियुक्ति की समाप्ति के लिए वह किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति का दवा भी नहीं कर सकता। धारा 407

संचालकों द्वारा त्याग पत्र

(Resignation by the Directors)

एक संचालक किसी भी समय संचालक–पद से त्याग दे सकता है। यदि संचालक के त्याग–पत्र देने के सम्बन्ध में कम्पनी के अन्तर्नियमों में कोई नियम दिए हुए हैं, तो प्रत्येक संचालक को अपने पद से त्याग–पत्र देते समय उन नियमों का पालन करना चाहिए। यदि इस सम्बन्ध में अनतर्नियमों में कोई नियम नहीं दिए गए हैं, तो वह एक उचित सूचना (Resonable notice) देकर अपने पद से त्याग–पत्र दे सकता है, चाहे कम्पनी उसे स्वीकार करे अथवा नहीं। एक बार त्याग–पत्र देने के पश्चात् उसे कम्पनी की अनुमति के बिना वापिस नहीं लिया जा सकता।

एक कम्पनी के अन्तर्नियमों में यह व्यवस्था थी कि यदि संचालक लिखित नोटिस देकर त्याग–पत्र देता है तो उसका स्थान स्वतः ही रिक्त माना जाएगा। एक कम्पनी के दो संचालकों ने कम्पनी की साधरण सभा में मौखिक रूप से त्याग–पत्र प्रस्तुत किया और कम्पनी ने इसे सभा में एक प्रस्ताव द्वारा स्वीकार कर लिया। यह निर्णय दिया गया कि त्याग–पत्र वैध थे क्योंकि उनके मौखिक प्रस्ताव को कम्पनी द्वारा स्वीकार कर लिया गया था।

"जब कम्पनी अधिनियम या सीमानियम में संचालक के त्याग–पत्र के सम्बन्ध में कोई व्यवस्था हो तो संचालक या प्रबंधक या प्रबंधक–संचालक द्वारा दिया हुआ लिखित त्याग–पत्र उस समय से लागू माना जाता है जब इसे दिया जात है।"

संचालकों के लिए ऋण

Loan to Directors

कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 295 के अनुसार, एक सार्वजनिक कम्पनी अपने संचालकों को केद्रीय सरकार की पूर्व सहमति के बिना ऋण प्रदान नहीं कर सकती। एक कम्पनी न तो निम्न पक्षों को ऋण दे सकती है और न ही उनको दिए गए ऋणों की जमानत दे सकती हैः

1. कम्पनी के किसी संचालक को या उसकी सूत्रधारी कम्पनी के संचालक को या ऐसे संचालक के किसी रिश्तेदार या सम्बन्धी को।
2. किसी ऐसी संस्था को जिसमें संचालक या उसके रिश्तेदार साझेदार है।
3. किसी ऐसी कम्पनी को जिसकी 25% पूँजी संचालक या संचालकों के पास है।
4. एक ऐसी निजी कम्पनी जिसमें उसका संचालक सदस्या अथवा संचालक हो।
5. कोई अन्य कम्पनी जिसका 'संचालक मण्डल' इन संचालकों के निर्देश से कार्य करने के लिए सहमत हो गया है।

अपवाद (Exceptons): धारा 295 की व्यवस्थाएं निम्न कम्पनियों पर लागू नहीं होतीं:

1. एक बैंकिंग कम्पनी पर।
2. जब कोई सूत्रधारी कम्पनी अपनी सहायक कम्पनी को ऋण देती है।
3. ऐसी निजी कम्पनी जो किसी सार्वजनिक कम्पनी की सहायक कम्पनी कम्पनी नहीं है।

दण्ड (Penalty):– उपर्युक्त व्यवस्थाओं का जान–बूझ कर उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को, ऋण लेने वाले तथा जमानत या प्रतिभूति पाने वाले व्यक्ति सहित या तो 5,000 रूपये या छः–छः मास की साधारण कैद से दण्डित किया जा सकता है। ऐसे व्यक्ति कम्पनी के ऋण को वापस करने के लिए इकट्ठे या पथक्–प्थक रूप से उत्तरदायी होते हैं।

कम्पनी के साथ संचालकों का अनुबन्ध

(Contracts with the Company by Directors)

संचालक मण्डल की पूर्व सहमति के बिना कम्पनी का संचालक या उसका सम्बन्धी या ऐसी साझेदारी संस्था जिसमें कोई संचालक या उसका सम्बन्धी साझेदार है या एक निजी कम्पनी जिसमें ऐसा संचालक सदस्य या संचालक है, कम्पनी के साथ माल खरीदने, बेचने या पूर्ति करने या अंशों या ऋण–पत्रों के अभिगोपन के लिए अनुबन्ध नहीं कर सकता है। संचालक मण्डल की सहमति (अनुमति) उसकी सभा में पारित प्रस्ताव द्वारा दी जानी चाहिए। परिचालन द्वारा पारित प्रस्ताव (Resolution by Circulations) के माध्यम से प्राप्त स्वीकत पर्याप्त नहीं है।

जिन कम्पनियों की चुकता अंश पूँजी एक करोड़ रूपये या इससे अधिक है तो उनके साथ ऐसे अनुबन्ध के लिए केन्द्रीय सरकार की अनुमति भी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

लेकिन निम्नलिखित स्थितियों में केन्द्रीय सरकार तथा संचालक मण्डल की अनुमति की आवश्यकता नहीं है:

1. अनुबन्ध का सम्बन्ध प्रचलित बाजार मूल्य पर वस्तु के नकद क्रय–विक्रय से हो। अथवा
2. जब माल या सेवा का मूलय किसी भी कलैण्डर वर्ष की अवधि में 5,000 रूपये से अधिक न हो और यह अनुबन्ध संचालक या सम्बन्धी या साझेदार आदि के नियमित व्यापार की एक मद हो।
3. जब लेन–देन व्यापार के सामान्य क्रय में किसी बैंकिंग या बीमा कम्पनी द्वारा किया गया हो।

5,000 रूपये तक का अनुबंध कोई भी संचालक किसी से भी कर सकता है। आपातकालीन स्थितियों में 5,000 रूपये से अधिक के लिए भी अनुबन्ध किया जा सकता है। लेकिन अनुबन्ध की तिथि से 3 माह के अन्दर संचालक मण्डल की अनुमति प्राप्त कर लेनी चाहिए अन्यथा अनुबन्ध संचालक मण्डल की इच्छा पर व्यर्थनीय होगा। धारा 297

संचालकों के अधिकार

(Powers of Directors)

1. **सामान्य अधिकार (General Powers)**–संचालक/संचालक मण्डल का उन सभी अधिकारों का प्रयोग करने तथा उन सभी कार्यो को पूरा करने का अधिकार है, जोकि एक कम्पनी कर सकती है, किन्तु वह ऐसे कार्य नहीं कर सकते जिन्हें इस अधिनियम या पार्षद सीमानियम या अनतर्नियम के अनुसार कम्पनी की साधारण/व्यापक सभा द्वारा किया जाना चाहिए। अपने अधिकारों को प्रयोग करते समय उस/उन्हें कम्पनी अधिनियम, सीमानियम और अनतर्नियम द्वारा लगाये गए प्रतिबंधों को ध्यान में रखना पर आवश्यक है। धारा 291

   समान्य अधिकारों में साधारणतः निम्न को सम्मिलित किया जाता है:

   (i) कम्पनी की पुस्तकों एवं प्रपत्रों का निरीक्षण करना,

   (ii) कम्पनी की सभाओं के नोटिस प्राप्त करना,

   (iii) कम्पनी के अधिकारियों (अफसरों) पर नियंत्रण रखना,

   (iv) संचालक मण्डल की सभाओं में भाग लेना,

(v) सभा में प्रस्तुत किसी विषय पर अपने विचार प्रकट करना,

(vi) अपना पारिश्रमिक प्राप्त करना,

(vii) सभा में प्रस्तुत किसी विषय के निर्णय के विरोध में अपनी **विमत टिप्पणी** (Dissenting Note) लिखना,

(viii) जिन समितियों में उन्हें नियुक्त किया जाता है उनमें उपस्थित होना एवं अपने अधिकारों का प्रयोग करना, आदि

2. **विशेष अधिकार (Specific powers)**–धारा 292 के अनुसार, निम्नलिखित अधिकार संचालक मण्डल द्वारा अपनी सभाओं में प्रस्ताव पारित करके ही प्रयोग किए जा सकते हैं:

(i) अंशों पर माँगे करना (To makes calls),

(ii) ऋण–पत्र निर्गमि करना, (To issue debentures),

(iii) ऋण–पत्रों के अतिरिक्त अन्य किसी रूप में ऋण लेना (To borrow moneys otherwise than debentures),

(iv) कम्पनी के धन का वियोग करना (To invest funds of company),

(v) ऋण देना (To give loans)।

यद्यपि धारा 292 में संचालक मण्डल के अधिकारों और उन्हें प्रयोग करने की सीमाओं तथा ढंग आदि के भविष्य में काफी व्यवस्थाएँ हैं लेकिन फिर भी कम्पनियों को वह स्वतंत्रता प्रदान की गई है कि वह अपनी व्यापक सभा में प्रस्ताव पास करके इन पर ऐसे प्रतिबन्ध तथा शर्ते लगा सकती है, जिन्हें वह उचित समझती है।

3. **कम्पनी की सहमति से प्रयोग किये जा सकने वाले अधिकार (Powers exercisable only wiht company's consent)**–एक सार्वजनिक कम्पनी की दशा में, संचालक–मण्डल निम्नलिखित कार्यो को व्यापक सभा में कम्पनी की सहमति के बिना नहीं कर सकता:

(i) कम्पनी का कारोबार पूर्णतः बेचना, पट्टे पर देना अथवा किसी अन्य रूप में उसकी व्यवस्था करना;

(ii) किसी संचालक से प्राप्त ऋण को समाप्त करना अथवा भुगतान के लिये अधिक समय देना;

(iii) इस अधिनियम के लागू होने के पश्चात् कम्पनी की किसी सम्पत्ति को अनिवार्य रूप से लिये जाने के सम्बन्ध में प्राप्त क्षतिपूर्ति के धन को ट्रस्ट प्रतिभूतियों के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से विनियोग करना;

(iv) कंपनी की प्रदत्त पूँजी तथा सामान्य कोषों के कुल योग से अधिक ऋण लेना; तथा

(v) किसी वर्ष में 25,000 रूपये अथवा शुद्ध लाभ के 5% से अधिक दान देना। (यह 5% गत तीन वित्तीय वर्षो के शुद्ध लाभों के औसत का निकाला जाता है।)

संचालकों के कर्तव्यों को परिभाषित करना एक कठिन कार्य है क्यांकि इनके एक ओर तो कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत बहुत से वैधानिक कर्तव्य हैं जबकि दूसरी ओर सामान्य अधिनियम के अन्तर्गत सामान्य प्रकति के कर्त्तव्य निम्नलिखित प्रकार के है:

(अ) **वैधनिक कर्त्तव्य (Statutory Duties)**–कम्पनी अधिनियम के अनुसार संचालकों के वैधनिक कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं:

(i) ***प्रविवरण की जाँच करना (To Inspect Prospectus)***–संचालकों का यह कर्त्तव्य है कि प्रविवरण के निर्गमन के पूर्व सतर्कतापूर्वक यह जाँच करें कि प्रविवरण में दिए विवरण सही हैं, अन्यथा असत्य और भ्रमक विवरणों का उत्तरदायित्व उनका होगा। धारा 56

(ii) ***प्रविवरण पर हस्ताक्षर करना (To Sign Prospectus)***–प्रविवरण में जिन संचालकों के नाम दिये हुए हैं उनका कर्त्तव्य है कि प्रविवरण के रजिस्ट्रेशन तथा निर्गमन के पूर्व उस पर अपने हस्ताक्षर करें। धारा 60

(iii) ***हस्ताक्षरयुक्त वार्षिक विवरण प्रस्तुत करना (To Present Signed Annual Statement)***–ऐसे वार्षिक विवरण जो रजिस्ट्रार के पास भेजे जाएंगे उन पर कम–से–कम एक संचालक के हस्ताक्षर होने चाहिए।

(iv) ***अंश आवेदन राशि बैंक में जमा करना (To Deposit Application Money in a Bank)***–संचालक मण्डल का कर्त्तव्य है कि अंश आवेदन राशि को एक अनुसूचित बैंक में तब तक जमा रखे जब तक कि धारा 69 के अन्तर्गत न्यूनतम अभिदान (Minimum Subscription) की राशि प्राप्त न हो जाए।

(v) ***वैधानिक सभा एवं वैधानिक रिपोर्ट (Statutory Meeting and Statutory Report)***–संचालकों को निर्देशित समय में वैधानिक सभा बुलानी चाहिए तथा वैधानिक सभा की तिथि से कम–से–कम 21 दिन पूर्व कम्पनी के प्रत्येक सदस्य तथा कम्पनी रजिस्ट्रार के पास वैधानिक रिपोर्ट की एक प्रति भेजनी चाहिए। धारा 165

(vi) ***असाधारण सभा बुलाना (Convening of Extra-ordinary General Meeting)***–निर्धारित संख्या में सदस्यों द्वारा माँग करने पर, संचालक मंडल का यह कर्त्तव्य है कि कम्पनी की एक असाधारण व्यापक सभा बुलाए। धारा 169

(vii) ***साधारण सभा बुलाना (Convening of General Meeting)***–प्रत्येक कम्पनी को प्रति वर्ष एक सभा बुलाना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में संचालकों का कर्त्तव्य है कि वे सभा से सम्बन्धित आवश्यक कार्यवाही करें तथा सभा बुलाएं। धारा 166

(viii) ***लाभांश की घोषणा व भुगतान (Declaration and Payment of Dividend)***–संचालकों का कर्त्तव्य है कि वे लाभांश की घोषणा करें तथा उसको अंशधारियों को भुगतान करने की व्यवस्था करें। धारा 205-207

(ix) ***व्यवसाय प्रमाण-पत्र के लिए घोषणा (Declaration for Certificate of Business)***–संचालकों का यह कर्त्तव्य है कि व्यापार प्रारम्भ होने से पूर्व अपने अंशों पर देय आवेदन तथा आबंटन राशि का भुगतान करें तथा कम्पनी का व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाण–पत्र करने के लिए रजिस्ट्रार के समझ एक घोषणा प्रस्तुत करें कि व्यापार आरम्भ सम्बन्धी समस्त वैधनिक आवश्यकताएँ पूरी कर ली गयी हैं। धारा 149

(x) ***वार्षिक लेखे (Annual Accounts)***–संचालकों का कर्त्तव्य है कि वे कम्पनी के वार्षिक लेखों को तैयार करायें तथा लाभ हानि खते व चिट्ठे की प्रतिलिपि रजिस्ट्रार को भेजें। धारा 210

(xi) ***रजिस्ट्रार के पास प्रतिलिपियाँ (Sending Copies to Registrar)***–संचालकों का यह कर्त्तव्य है कि वार्षिक रिर्टन के साथ लाभ–हानि खाते व आर्थिक चिट्ठे की प्रतिलिपि रजिस्ट्रार को भेजें। धारा 220

(xii) ***निरीक्षण के समय प्रपत्रों को प्रस्तुत करना (To Provide Documents at the Time of Inspection)***–कम्पनी के संचालकों का कर्त्तव्य है कि कम्पनी की विभिन्न पुस्तकों एवं प्रपत्रों को सुरक्षित रखें तथा निरीक्षण के समय इन पुस्तकों एवं प्रपत्रों को उपलब्ध कराने की व्यवस्था करें। धारा 270

(xiii) ***योग्यता अंश लेना (To Take Qualification Shares)***–संचालकों का यह कर्त्तव्य है कि अपनी नियुक्ति के पश्चात् 2 महीने के भीतर, अन्तर्नियमों के अनुसार, अपने योग्यता अंश खरीदें। धारा 270

(xiv) ***शोधन क्षमता की घोषणा (Declaration of Solvency)***–सदस्यों द्वारा स्वैच्छिक समापन की दशा में, कम्पनी के संचालकों को कम्पनी की 'शोधन क्षमता की घोषणा' (Declaration of Solvency) करनी पड़ती है। धारा 488

(ब) **सामान्य कर्त्तव्य (General Duties)**–सामान्य कानून के अन्तर्गत संचालकों के कर्त्तव्य संक्षेप में निम्न होते हैं:

(i) उन्हें कम्पनी के सामान्य लाभ हेतु सद्विश्वास से काम करना चाहिए। कोई स्वयं के लिए गुप्त लाभ नहीं कमाने चाहिए क्योंकि कम्पनी के साथ उनके सद्भावना सम्बन्ध (Fiduciary relations) होते हैं।

(ii) उन्हें अपने कर्त्तव्य निष्पादन करने में उस सीमा से अधिक चतुरता दिखाने की जरूरत नहीं होती जितनी कि उसी के समान बुद्धि एवं अनुभव वाले व्यक्ति से यथोचित रूप में आशा की जा सकती है।

संचालकों का दायित्त्व

(Liability of Directors)

जब तक संचालक अपने अधिकारों के अन्तर्गत नेकनीयती और सद्भावपूर्वक कार्य करें और अपने कर्त्तव्य पालन में समुचित सावधानी बरतें, उनका कोई व्यक्तिगत दायित्व नहीं होता। परन्तु निम्नलिखित परिस्थितियों में वे कम्पनी के प्रति हानि–पूर्ति करने के लिए व्यक्तिगत रूप से दायी बन सकते हैं:

कम्पनी एवं बाह्य शक्तियों के प्रति दायित्त्व

(Liability towards Company & Outsider

1. **शक्तिबाह्य कार्यो के लिए (For Ultra-vires Acts)**–यदि वे ज्ञापन–पत्र के सीमान–क्षेत्र के बाहर अथवा अपनी शक्तियों के अधिकार–क्षेत्र के बाहर संविदाएं करें जैसे कि समूचे उपक्रम को बेचना।
2. **विश्वास-भंग करने के लिए (For Acting Dishonestly)**–यदि वे गुप्त लाभ अर्जित करें अथवा कम्पनी के धन का उपयोग अपने निजी कार्य के लिए करें।
3. **बेईमानीपूर्वक कार्य करने के लिए (For Acting Dishonestly)**–जैसे कि पहले स्वयं अपने नाम पर सामान खरीदना और फिर अर्जित करने के उद्देश्य से ऊंचे मूल्य पर कम्पनी को बेच देना।
4. **कर्त्तव्य पालन में घोर लापरवाही करने के लिए (For Gross Negligence in the Performance of their Duties)**–जैसे कि शक्ति प्रत्यायोजित (Delegate) करना, जबकि अन्तर्नियमावली इसके लिए अनुमति न देती हो अथवा कोई लाभ न होने पर भी लाभांश अदा करना। यह बात याद रखनी चाहिए कि यदि वे ईमानदारी और सावधानी से कार्य करें तो उन्हें निर्णय लेने में की गई किसी भूल के लिए दायी नहीं बनाया जाएगा।
5. **जान-बुझकर किए गए दुराचरण के लिए (For Wilful Misconduct)**–जैसे कि जान–बुझकर कम्पनी की सम्पत्ति का अपहरण (Misappropriation) करना।
6. **आबंटन के सम्बन्ध में दायित्व (Liability in Relation to Allotment)**– धारा 69 (5) के अनुसार, यदि विवरण–पत्रिका के जारी होने के 120 दिनों के अन्दर अंशों का आबंटन नहीं किया जाता है, तो अंशों से सम्बन्धित आवेदन–राशि आवेदकों को वापस कर देना चाहिए। यदि राशि प्रविवरण के निर्गमन के 130 दिन के अन्दर नहीं लौटाई जाती है तो संचालक संयुक्त तथा पथक् रूप से इस राशि को 6% वार्षिक ब्याज सहित लौटाने के लिए उत्तरदायी होते हैं।
7. **न्यूनतम अभिदान के अभाव में आबंटन पर दायित्व (Liability in Respect of Allotment without Minimum Subscription)**–धारा 69 (5) के अनुसार यदि अंशों का आबंटन विवरण–पत्रिका में प्रकट की गई न्यूनतम अभिदान राशि को प्राप्त किये बिना ही कर दिया जाता है तो ऐसा आबंटन व्यर्थ होगा तथा संचालकगण इस प्रकार के आबंटन के लिए व्यक्तिगत तथा सामूहिक आधार पर उत्तरदायी होंगे।
8. **अधिकारों के बाहर किये हुए कार्यो के लिए दायित्त्व (Liability for the Ultra-vire Acts)**–यदि कोई संचालक अपने अधिकारों से बाहर कोई कार्य करता है तो वह कम्पनी के प्रति दायी होगा, उदाहरणतः पूँजी में से लाभांश बांटने पर संचालक कम्पनी के प्रति दायी होते हैं क्योंकि पूँजी में से लाभ बांटना उनके अधिकार में नहीं है।

अपराधपूर्ण दायित्त्व

(Criminal Liability)

संचालकों को कम्पनी अधिनियम की विभिन्न धाराओं के अधीन जुर्माना (Fine) या कारावास या दोनों प्रकार के दण्ड दिये जा सकते हैं। इस प्रकार के मुख्य दायित्व इस प्रकार हैं:–

1. यदि कम्पनी के प्रविवरण में कोई मिथ्या या कपटपूर्ण कथन हों तो 2 वर्ष की सजा या 500 रू. तक का आर्थिक दण्ड या दोनों प्रकार के दण्ड दिये जा सकते हैं धारा 63
2. प्रविवरण में जान–बूझकर जनता को धोखा देने के उद्देश्य से किए गए कपटपूर्ण कथन के लिए 5 वर्ष तक की सजा या 10,000 रू. तक आर्थिक दण्ड या दोनों धारा 68
3. यदि आवेदन–पत्रों पर प्राप्त धन को किसी अनुसूचित बैंक में जमा न किया हो। धारा 69
4. यदि कम्पनी का लाभांश घोषित होने के 42 दिन के अन्दर (जान–बूझकर) लाभांश का वितरण न किया हो, तो दोषी संचालकों को 7 दिन तक की साधारण कैद तथा आर्थिक दण्ड किया जा सकता है।धारा 207

5. यदि कम्पनी के चिट्ठे और लाभ–हानि खाते को कम्पनी की साधारण सभा में प्रस्तुत नहीं किया गया है, तो कम्पनी के संचालकों को 6 महीने तक की सजा या 2000 रू. तक का आर्थिक दण्ड या दोनों दण्ड दिये जा सकते हैं। धारा 210 (5)
6. यदि संचालको की रिपोर्ट कम्पनी के चिट्ठे के साथ व्यापक सभा में पेश की गई है, तो कम्पनी के संचालकों को 6 महीने तक की सजा या 2000 रू. तक का आर्थिक दण्ड या दोनों दिये जा सकते हैं। धारा 217 (5)
7. यदि कोई संचालक 20 कंपनियों से अधिक का संचालक बना रहता है, तो उसे प्रत्येक अतिरिक्त कम्पनी के लिए 5000 रू. तक आर्थिक दण्ड दिया जा सकता है। धारा 279
8. यदि किसी संचालक का कम्पनी के साथ किये गए अनुबन्ध में निजी हित होते हुए भी वह उसे प्रकट नहीं करता है तो उसको 5,000 रू. तक आर्थिक दण्ड दिया जा सकता है। धारा 299 (4)
9. यदि कोई संचालक अपनी नियुक्ति के 20 दिन के अन्दर कम्पनी को यह प्रकट नहीं करता है कि अन्य कंपनियों में उसकी क्या स्थिति है, तो उस पर 5000 रू. तक का आर्थिक जुर्माना किया जा सकता है।
10. यदि उन्होंने कम्पनी की समापन की अवधि में कोई अपराध किया हो।
11. यदि कम्पनी का व्यापार कपटमय तरीकों से चलाया जा रहा हो।

संचालकों का पारिश्रमिक

(Remuneration of Directors)

संचालक कम्पनी के अधिकारी व एजेण्ट होते हैं। वे अंशधरियों के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं तथा कम्पनी द्वारा कर्मचारी के रूप में नियुक्त नहीं किए जाते। तदनुसारय, वे कम्पनी के कर्मचारी/सेवक/नौकर नहीं होते और उन्हें तब पारिश्रमिक प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं होता जब तक उनके पारिश्रमिक के सम्बन्ध में अन्तर्नियमों में कोई विशेष व्यवस्था न की गई हो अथवा अंशधारियों द्वारा इस सम्बन्ध में व्यवस्था होती है जो मानदेय (honorarium) के रूप में होता है।

अधिकतम तथा न्यूनतम प्रबन्धकीय पारिश्रमिक

(Maximum and Minimum Managerial Remuneration)

कम्पनी अधिनियम की धारा 198 के अनुसार संचालकों, प्रबन्ध–संचालकों अथवा प्रबन्धक और पूर्ण–कालिक (whole-time) संचालकों को किसी वित्तीय वर्ष के शुद्ध लाभों की 11 प्रतिशत राशि से अधिक नहीं होनी चाहिए।

यदि किसी वित्तीय वर्ष में कम्पनी ने कोई लाभ अर्जित न किया हो या उसके लाभ अपर्याप्त हों तो प्रबंधकीय व्यक्तियों (managerial personnel) को पारिश्रमिक का भुगतान करने के लिए कम्पनी को केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति लेनी होगी।

संचालकों के पारिश्रमिक के भुगतान की रीति अथवा विधि (Procedure or the Method of Payment of Remuneration to Directors): कम्पनी संचालकों को पारिश्रमिक निम्नलिखित में से किसी भी रीति द्वारा निर्धारित किया जा सकता हैः

1. अन्तर्नियमों द्वारा।
2. व्यापक सभा में प्रस्ताव द्वारा।
3. विशेष प्रस्ताव पास करके।

एक पूरे समय के कम्पनी संचालक को मासिक भुगतान या शुद्ध लाभ पर निश्चित प्रतिशत के रूप में या दोनों प्रकार से पारिश्रमिक दिया जा कसता है। एक संचालक की दशा में शुद्ध लाभ पर 5% कमीशन व एक से अधिक संचालकों की दशा में 10% तक दिया जा सकता है। बिना केन्द्रीय सरकार की पूर्व–अनुमति के यह पारिश्रमिक नहीं बढ़ाया जा सकता है।

ऐसे संचालकों की दशा में जो पूरे समय के लिए नहीं हैं या तोः

1. केन्द्रीय सरकार की अनुमति से मासिक, तिमाही या वार्षिक भुगतान के रूप में या

2. कमीशन के रूप में विशेष प्रस्ताव पास करके। यह कमीशन शुद्ध लाभ के 1% से अधिक नहीं होना चाहिए यदि कम्पनी में प्रबन्ध संचालक, प्रबन्ध अभिकर्ता या मंत्री और कोषाध्यक्ष या मैनेजर है। अन्य दशाओं में यह प्रतिशत 3% से अधिक न होगा। इस प्रतिशत की दर केन्द्रीय सरकार की अनुमति से बढ़ाई जा सकती है।

प्रबंधकीय पारिश्रमिक के सम्बन्ध में सांविधिक निर्देशक सिद्धांत

(Statutory Guidelines Regarding Managerial Remuneration)

देश की बदलती सामाजिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए प्रबन्धकीय पारिश्रमिक पर प्रशासनिक अधिकतम सीमा निर्धारित करने के लिए कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1988 के अधीन अनुसूची **XIII** संलग्न की गई है। (अनुसूची **XIII** के उपबन्ध 15 जून, 1988 से लागू किए गए।) यह अनुसूची, केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति के बिना किसी प्रबन्धकीय अधिकारी (Managerial Functionary) की नियुक्ति के सम्बन्ध में तथा उसको देय पारिश्रमिक की अधिकतम सीमा निर्धारित करने के सम्बन्ध में निर्देशक सिद्धांतों को उपबन्धित करती है।

निर्देशक सिद्धांतों के अनुसार, सार्वजनिक कम्पनियों तथा उनकी सहायक निजी कम्पनियों, तथा धारा 43-A के अध ीन सार्वजनिक कम्पनियों के समान मानी जाने वाली कम्पनियों की दशामें, प्रबन्धकीय अधिकारियों (अर्थात् प्रबन्ध ा–संचालनक या पूर्णकालिक संचालक या मैनेजर) की नियुक्ति के सम्बन्ध में एवं उनको देय पारिश्रमिक की राशि निर्धारित करने के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को पूर्वानुमति की आवश्यकता नहीं है, बशर्ते कि उनको नियुक्ति तथा पारिश्रमिक अनुसूची **XIII** के उपबन्धों के अनुरूप हो।

अनुसूची **XIII** के उपबन्धों का विवरण संक्षेप में इस प्रकार हैः

प्रबन्धकीय अधिकारी की नियुक्ति के लिए पात्रता शर्ते

(Eligibility Conditions for the Appointment of managerial Functionary)

केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति के बिना, किसी प्रबन्ध–संचालक या पूर्णकालिक संचालक या मैनेजर की नियुक्ति के लिए निम्नलिखित शर्तों का पालन किया जाना आवश्यक हैः

1. उसको अनुसूची **XIII** में निर्दिष्ट 13 आर्थिक अधिनियमों (Economic Legislations) के अधीन किसी अपराध के लिए कारावास का दण्ड न दिया गया हो, या 1000 रूपये से अधिक जुर्माना न किया गया हो;
2. उसको विदेशी विनिमय संरक्षण तथा तस्करी रोकथाम अधिनियम, 1974 के अधीन सजा न मिली हो;
3. वह कम से कम 25 वर्ष की आयु का हो तथा 70 वर्ष की आयु अथवा कम्पनी द्वारा निर्दिष्ट रिटायर होने की आयु, यदि कोई हो, इनमें से जो भी कम हो, उससे अधिक न हो; (केन्द्रीय सरकार ने 18 सितम्बर 1990 की एक अधिसूचना द्वारा न्यूनतम आयु सीमा को 30 वर्ष से घटाकर 25 वर्ष किया तथा अधिकतम आयु सीमा को 65 वर्ष से बढ़ाकर 70 वर्ष किया)।
4. वह किसी अन्य कम्पनी का प्रबन्धकीय अधिकारी न हो अथवा किसी साझेदारी फर्म का प्रबन्धक साझेदार न हो अथवा किसी अन्य स्थान पर पूर्णकालिक सेवारत न हो;
5. वह भारत का नागरिक हो एवं भारत का निवासी (Resident) हो;
6. गत वित्त वर्ष के तात्कालिक पूर्वगाामी चार वित्तीय वर्षो में कम्पनी में कोई हानि न हुई हो अथवा उसके लाभ अपर्याप्त न हो।

प्रबंधकीय अधिकारी का पारिश्रमिक

(Remuneration of Managerial Functionary)

केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति के बिना किसी प्रबन्ध–संचालक, पूर्णकालिक–संचालक या मैनेजर को वेतन तथा अनुलाभों (perquisites) का भुगतान करने के लिए निम्नलिखित शर्तों का पालन करना होगाः

1. नियुक्ति व पारिश्रमिक के भुगतान के लिए अंशधारियों की साधारण सभा में एक प्रस्ताव पास किया जाना चाहिए।

2. अंशधारियों के उपर्युक्त प्रस्ताव में इस तथ्य का उल्लेख होना चाहिए कि यदि प्रबन्धकीय अधिकारी की नियुक्ति के बाद कम्पनी में किसी वर्ष पर्याप्त लाभ न हो या वास्तव में हानि हो तो प्रबन्धकीय अधिकारी को देय वेतन (अनुलाभों को छोड़कर) में 10 प्रतिशत की कटौती की जाएगी;
3. कम्पनी के लेखा–परीक्षक अथवा सचिव अथवा यदि कम्पनी में कोई सचिव न हो तो एक पूर्णकालिक व्यवसायरत सचिव द्वारा इस तथ्य की पुष्टिकरण की अनुसूची **XIII** की सभी शर्तें पूरी की गई हैं, उसके प्रमाण–पत्र को धारा 269 (2) के अधीन रजिस्ट्रार को भेजी जानी वाली विवरण के साथ नत्थी किया जाना चाहिए।

वेतन एवं कमीशन (Salary and Commission) 'वेतन' में महँगाई–भत्ता एवं अन्य सभी भत्ते शामिल होंगे, और कमीशन की राशि "प्रभावी–पूँजी" (Effective Capital) के आधार पर परिकलित की जाएगी। "प्रभावी–पूँजी" से अभिप्राय उस राशि से है जो प्रदत्त अंश पूँजी, अंश प्रीमियम खाते, आरक्षित निधि व संचित लाभों तथा दीर्घकालीन ऋण और विक्षेपों के योग में से विनियोगों, हानि एवं प्रारम्भिक खर्चों के योग को घटाने के बाद शेष बचती है।

अन्य प्रबन्धकीय कर्मचारी

(Other Managerial Personnel)

कम्पनी के कप्रबन्ध के लिए संचालक–मण्डल के अतिरिक्त, प्रबन्ध संचालक अथवा प्रबन्धक की नियुक्ति भी की जा सकती है। धारा 197 A, के अनुसार, कोई भी कम्पनी किसी एक समय पर प्रबन्ध–संचालन तथा प्रबन्धक दोनों की नियुक्ति नहीं कर सकती है। इसका उद्देश्य कम्पनी को एक ही समय पर एक से अधिक प्रकार के प्रबन्धकीय कर्मचारियों की नियुक्ति करने से रोकना है।

प्रबन्ध-संचालक

(Managing Director)

अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition):- प्रबन्ध संचालक से हमारा आशय ऐसे से है जिसे संचालक प्रबन्धा सम्बन्धी कुछ ऐसी अधिकार प्राप्त हों जो साधारणतया किसी संचालक को प्राप्त नहीं होते। ये अधिकार उसे सीमानियम, अनतर्नियम, कम्पनी अथवा संचालक–मण्डल के प्रस्ताव अथवा एक पथक् अनुबन्ध द्वारा प्राप्त हो सकतेहैं। प्रबन्ध–संचालक की स्थिति में रहने वाले सभी व्यक्तियों को प्रबन्ध संचालक ही माना जाता है, चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाए।

कम्पनी अधिनियम की धारा 2 (26) के अनुसार "प्रबन्ध संचालक का आशय ऐसे संचालक से है जिसे कम्पनी के समझौते के आधार पर या कम्पनी द्वारा साधारण सभा में पास हुए प्रस्ताव के द्वारा या संचालक मंडल द्वारा या कम्पनी के पार्षद सीमानियम या अनतर्नियम द्वारा जिसे प्रबन्ध के पर्याप्त अधिकार दिये जाते हैं जिन्हें कि वह ऐसा न होने पर प्रयोग नहीं कर सकता था, इसमें ऐसा संचालक भी शामिल किया जाता है जो प्रबंध संचालक का स्थान ग्रहण किये हुए हो, चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाता हो।"

प्रायः कम्पनी के अन्तर्नियम संचालक मण्डल को एक या एक से अधिक प्रबन्ध–संचालकों को नियुक्त करने का अधिकार प्रदान करते हैं जिनकी नियुक्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित वैधानिक नियम हैं–

1. इस पद पर आसीन केवल एक व्यक्ति ही हो सकता है क्यांकि फर्म या समामेलित संस्था को प्रबन्धा–संचालक के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता। क्योंकि प्रबन्धक–संचालक बनाने के लिए संचालक होना अनिवार्य है जबकि व्यक्ति ही संचालक हो सकता है।

2. प्रबन्ध–संचालक की नियुक्ति या पुनः नियुक्ति आ अनुमोदन नियुक्ति से पूर्व अथवा नियुक्ति के बाद अधिकतम 3 माह के अन्दर केन्द्रीय सरकार द्वारा होना चाहिए।

3. एक व्यक्ति एक समय में दो से अधिक कम्पनियों का प्रबन्ध–संचालक नहीं रह सकता लेकिन केन्द्रीय सरकार चाहे तो ऐसे प्रतिबंध से मुक्त कर सकती है।

4. एक बार में 5 वर्ष से अधिक के लिए नियुक्ति नहीं कर सकती।

अयोग्यताएँ (Disqualifications):- धारा 267 के अनुसार प्रबन्ध–संचालकों पर भी वे सभी योग्यताएं लागू होती हैं जो संचालकों पर लागू होती हैं। लेकिन कोई भी कम्पनी निम्नलिखित व्यक्तियों को प्रबन्ध–संचालन नियुक्त नहीं कर सकती है।

1. जो व्यक्ति अमुक्त दिवालिया हो।

2. जो व्यक्ति अपने ऋणदाताओं के भुगतान को रोक लेता है या स्थगित कर देता है।

3. जो न्यायालय द्वारा किसी नैतिक अपराध के लिए दोषी ठहराया गया हो।

भारतीय कम्पनी अधिनियम 1988 में कुछ महत्त्वपूर्ण संशोधन किए गए हैं जो 15-6-1988 से लागू हो चुके हैं। इन संशोधनों के अनुसार निम्नलिखित व्यक्तियों को प्रबन्ध संचालक, प्रबन्धक, पूर्णकालिक संचालक पद के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया है–

(a) वह व्यक्ति जो अनुसूची (Schedule) XIV में उल्लेखित 3 अधिनियमों में से किसी के भी अन्तर्गत निम्न सजाएँ भोग चुका होः (i) किसी भी अवधि के लिए जेल की यातना अथवा (ii) 1,000 रूपये या इससे अधिक के अर्थदण्ड से दण्डित हो चुका हो।

(b) वह व्यक्ति जो विदेशी मुद्रा बचाव तथा तस्करी सम्बन्धी कार्यो की रोकथाम सम्बन्धी अधिनियम 1974 (Conservationi of Foreign Exchange and Prevention of Smuggling Activities Act, 1974) के अन्तर्गत किसी भी अवधि के लिए कारावास की सजा को भोग चुका हो।

(c) वह भारत का नागरिक न हो और भारत का निवासी (Resident) न हो।

पूर्णकालीन संचालक (Whole time Director)–कम्पनी अधिनियम की अनेक धाराओं में प्रबन्ध संचालक और पूर्णकालीन संचालक शब्द का प्रयोग साथ–साथ किया गया है। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या दोनों एक है।?

कम्पनी अधिनियम में प्रबन्ध–संचालक को तो परिभाषित किया गया है परन्तु पूर्ण–कालीन संचालक की कोई परिभाषा नहीं की गई।

कम्पनी अधिनियम के इस शब्द का प्रयोग ऐसे संचालक के लिए किया गया है जो कम्पनी की पूर्णकालीन सेवा में हो और जिसे प्रबन्ध के विशेष अधिकार सौंपे गए हों। जैसे किसी संचालक को कम्पनी का वित्त एवं लेखा नियंत्रक कर दिया जाए तो वह पूर्णकालीन संचालक बन जाता है।

पारिश्रमिक

(Remuneration)

प्रबन्ध संचालक के पारिश्रमिक सम्बन्धी नियम निम्न प्रकार हैं–

1. प्रबन्ध संचालक को पारिश्रमिक कम्पनी के शुद्ध लाभों पर कमीशन, मासिक भुगतान के रूप में अथवा दोनों

ही प्रकार से दिया जा सकता है।

2. कम्पनी में केवल एक ही पूर्णकालिक प्रबन्ध संचालक होने पर शुद्ध लाभ का 5% तथा एक से अधिक होने अधिकतम 10% तक कमीशन पारिश्रमिक रूप में दिया जा सकता है। कुल मिलाकर प्रबन्धकीय पारिश्रमिक शुद्ध लाभ का 11% से अधिक नहीं होना चाहिए। इससे अधिक दर के लियें केन्द्रीय सरकार की अनुमति आवश्यक है।

प्रबन्धक

(Manager)

धारा 2 (24) के अनुसार "प्रबन्धक से आशय उस व्यक्ति से है जो संचालक मण्डल के निरीक्षण, नियंत्रण तथा निर्देशानुसार कम्पनी का पूर्ण या वस्तुतः पूर्ण–प्रबन्ध करता है। इस परिभाषा में संचालक में अन्य किसी भी व्यक्ति, जो प्रबन्धक की स्थिति में कार्य करता है का भी समावेश किया जाता है चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाता हेा तथा उसके साथ कोई अनुबन्ध हो अथवा नहीं।"

प्रबन्धक की नियुक्ति

(Appointment of Manager)

1. **केवल व्यक्ति की ही नियुक्ति (Appointment of An Individual)**–प्रबन्धक के पद पर केवल व्यक्ति को ही नियुक्त किया जा सकता है न कि किसी फर्म, समामेलित संस्था या संघ को और यह नियुक्ति एक बार में 5 वर्ष से ज्यादा नहीं हो सकती।

2. **अयोग्यताएँ (Disqualifications)**–निम्नलिखित व्यक्ति इस पद के लिए योग्य नहीं माने जाएँगे–

   (a) ऐसा व्यक्ति जिसने गत 5 वर्षो में अपने ऋणदाताओं का भुगतान बन्द कर दिया गया हो या स्थगित कर दिया हो

   (b) एक दिवालिया व्यक्ति या वह व्यक्ति जो पिछले 5 वर्षो से दिवालिया घोषित किया जा चुका हो।

ध्यान रहे किसी ऐसे व्यक्ति को प्रबन्धक के पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता जो कि पहले से ही किसी अन्य कम्पनी में प्रबंध या प्रबंधक–संचालक पद पर हो। लेकिन केन्द्रीय सरकार चाहे तो किसी व्यक्ति को उपर्युक्त अयोग्यता से मुक्त कर सकती है।

प्रबंधक का पारिश्रमिक

(Remuneration of Manager)

धारा 389 के अनुसार, प्रबन्धक को निम्नलिखित किसी भी ढंग से पारिश्रमिक दिया जा सकता है–

(a) मासिक वेतन के रूप में अथवा

(b) शुद्ध लाभ पर एक निश्चित प्रतिशत के रूप में,

(c) आंशिक निश्चित वेतन तथा आंशिक एक निश्चित प्रतिशत के रूप में।

कम्पनी अपने प्रबन्ध को एक वर्ष में शुद्ध लाभ के 5% से अधिक राशि पारिश्रमिक के रूप में नहीं दे सकती। यदि इससे अधिक प्रतिशत पारिश्रमिक के रूप में देना हो तो केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त करनी आवश्यक है।

अध्याय-8
कम्पनी सभाएँ एवं प्रस्ताव
(Company Meetings and Resolutions)

जब कई व्यक्ति मिलकर कोई कार्य करना चाहते हैं तो उनके कार्यो में समन्वय एवं कार्यकुशलता लाने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे सभी समय–समय पर आपस में मिलकर विचार–विमर्श करें तथा उपयुक्त निर्णय लें। क्योंकि कम्पनी में भी बहुत से व्यक्तियों को निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मिलकर कार्य करना पड़ता है अतः कम्पनी के लिए यह आवश्यक होजाता है कि वह समय–समय पर सभओं का आयोजन करे। इन सभओं में ही कम्पनी के अधिकांश कार्यो के लिए निर्णय लिए जाते हैं। अतः कम्पनी में सभा से तात्पर्य कम्पनी के सदस्यों अथवा संचालकों अथवा ऋणदानाओं का पूर्व सूचना के अनुसार किसी निश्चित स्थान पर किसी निश्चित विषय पर, निर्णया लेने हेतु एकत्रित होने से है।

कम्पनी सभा की विशेषताएँ

(Characteristic of a Company Meeting)

सभा की उपर्युक्त परिभषाओं से निम्नलिखित विशेषताएँ प्रकट होती हैः

1. कम्पनी सभा में (कुछ अपवादों को छोड़कर) कम–से–कम दो या दो से अधिक होने चाहिए जो कम्पनी के सदस्य हों।
2. ये सदस्य कम्पनी के किसी वैध कार्य पर निग्रय लेने के लिए एकत्रित हुए हो।
3. सभा की सूचना सभा होने से पूर्व सदस्यों को दी जानी चाहिए।
4. यह सभा निश्चित स्थान, तिथि तथ समय पर होनी चाहिए।
5. सभा कम्पनी अधिनियम के नियमानुसार होनी चादिए।

एक व्यक्ति की सभा

(One-Man Meeting)

सभा के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों की उपस्थिति आवश्यक होती है। सामान्य राजनियम के अनुसार केवल एक व्यक्ति की सभा नहीं हो सकती है, परन्तु कम्पनी अधिनियम में इसके कुछ उपवपद हैं, अर्थात कम्पनी सभाओं से सम्बान्धित कुछ ऐसी परिस्थितियाँ दी हुई हैं जिनमें एक व्यक्ति के उपस्थिति होने पर भी सभा कर ली जाएगी और सभा का निर्णय वौधानिक माना जाएगा। ये परिस्थितियाँ निम्नलिखित हैः

1. **केन्द्रीय सरकार द्वारा बुलाई गई सभा (Meeting Convened by Central Government)**: वार्षिक व्यापक सभा के आयोजित न किए जाने की स्थिति में किसी सदस्य के आवेदन पर जब केन्द्रीय सरकार ऐसी सभा बूलाती है अथवा बुलाने का आदेश देती है, तो उसे इस बात का आदेश देने का अधिकार है कि एक व्यक्ति, सदस्य जो स्वयं व्यक्तिगत रूप में अथवा प्रति पुरूष (Proxy) द्वारा उपस्थित होगा, सभा मानी जाएगी।
2. **स्थगित सभा में कार्यवाहक संख्या उपस्थित न होने पर (Absence of Quorum in an Adjourned Meeting)**: यदि संचालकों द्वारा बुलाई गई किसी व्यापक सभा मे सभा के समय से आधे धण्टे के भीतर

कार्यवाहक संख्या (Quorum) उपास्थित नहीं है तो सभा एक सप्ताह के बाद उसी समय तथा उसी स्थन पर होने के लिए स्थगित (Adjourn) कर दी जाएगी और फिर कार्यवाहक संख्या के एकत्रित होने के लिए आधे घण्टे का समय दिया जाएगा। यदि इस समय के बीतने तक कार्यवाहक संख्या उपस्थित नहीं होती तो उपस्थित सदस्यगण कार्यवाहक संख्या होगी जो एक सदस्य भी हो सकता है।

3. कम्पनी विधान मण्डल द्वारा बुलाई गई सभा (Meeting Convened by Company Law Board): यदि अन्तर्नियमों या कंम्पनी अधिनियम के अधीन वार्षिक व्यापक सभा के अतिनिक्त कम्पनी कोई अन्य सभा नहीं बुला सकती हो तो ऐसी स्थिति में कम्पनी विधान मण्डल कम्पनी के किसी संचालक या सदस्य के आवेदन पर एक सभा बुलाने का आदेश दे सकता है और यह आदेश भी जारी कर सकता है कि वह सभा मान्य होगी, भले ही इसमें केवल एक सदस्य या उसका प्रतिपुरूप (Proxy) उपास्थिति हो।

4. **न्यायालय द्वारा बुलाई गई सभा (Meeting Convened by Court)**: यदि न्यायालय सभा के बुलाने का आदेश देता है तो यह भी आदेश दे सकता है कि एक सदस्य जो कि स्वयं या प्रतिपुरूष द्वारा उपस्थित होगा, एक वैध सभा पानी जाएगी।

5. **अंशधारियों या लेनदारों की वर्ग सभाएँ (Class Meetings of Share-holders or Creditors)**: यदि कम्पनी के कई प्रकार के अंशों या लेनदारों में से किसी एक वर्ग या प्रकार के अंशधारियों या लेनदारों की संख्या केवल सक ही है अथवा किसी वर्ग के सभी अंश या ऋणपत्र केवल सक व्यक्ति ने खरीद लिए हैं तो इस प्रकार की सभा में केवल सक ही व्यक्ति उपस्थित होगा और यह सभा वैधानिक रूप से मान्य होगी।

6. **एक सदस्य वाली संचालक-मण्डल की समिति की सभा (Meeting of one-man committee of Board of Directors)**: तालिका 'अ' के 77 वें नियम के अनुसार संचालक–मण्डल अपने कार्यो के एक समिति के सुपुर्द कर सकता है और इस समिति मे सदस्यों की संख्या केवल एक भी हो सकती है। ऐसी स्थिति में जब इस समिति की सभा होगी तो उस व्यक्ति की उपस्थिति को ही उस सभा के आशय के लिए पर्याप्त माना जाएगा और सभा की कार्यवाही कानून की दष्टि मे वैध होगी।

7. **कम्पनी के दिवानिया घेषित हो जाने की दशा में (In cash of the Insolvency of the Company)**: यदि किसी कम्पनी के दिवालिया घेषित किए जाने की दशा में केवल सक लेनदार द्वारा ही उपना ऋण प्रमाणित कर किया जाए तो वह अकेला लेदनार ही सभा का आयोजन कर सकता है।

सभा के प्रकार

Kinds of Meeting

1. अंशधारियों की सभाएँ (Meetings of shareholders)
   (a) वैधानिक सभा (Statutory meeting)
   (b) वार्षिक साधारण सभा (Annual general meeting)
   (c) असाधारण सभा (Extra-ordinary meeting)
   (d) वर्ग सभा (Class meeting)
2. संचालकों की सभाएँ (Meetings of directors)
3. ऋण–पत्रधारियों तथा लेनदारों की सभाएँ (Meetings of debenture holders and creditors)

2. अंशधारियों की सभाएँ (Shareholders Meetings) अंशधारी कम्पनी के संयुक्त स्वामी हेने हैं, लेकिन अपनी कुछ मर्यादाओं के कारण वह कम्पनी का प्रबन्ध स्वयं नहीं करते। कम्पनी के प्रबन्ध को वे संचालकों को सौंप देते हैं।संचालक पण्डल पर नियन्त्रण करने तथा भविष्य की रूपरेख तैयार करने के लिए अंशधारी समय–समय पर अपनी सभायें आयोंजित करते हैं। अंशधारियों की सभाओं को निम्नलिखित भागों मे विभाजित किया जा सकता है:

   (a) ***वैधनिक सभा (Statutory Meeting)***: भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 165 (1) के अनुसार – प्रत्येक अंश द्वारा सीमीत सार्वजनिक कम्पनी और अंश–पूँजी वाली प्रत्येक गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी द्वारा व्यापार प्रारम्भ करने का अधिकार प्राप्त करने के कम सक कम 1 माह के बाद हौर

अधिक से अधिक 6 माह के अन्दर कम्पनी के सदस्यों की एक सामान्य सभा बुलानी पड़ती है, जिसे वैधानिक सभा कहते है।''

यह कम्पनी के सदस्यों की कम्पनी के जीवनकाल में बुलाइ जाने वाली प्रथम सभा है। वैधारनिक सभा कम्पनी के जीवनकाल मे एक ही बार बुलाई जाती है। असीमित दियित्व वाली कम्पनी, निजी कम्पनी तथा बिना अंश–पूँजी वाली गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी के लिए इसे बुलाना आवश्यक नहीं है।

वैधानिक सभा के उद्देश्य (Objects of Statutory Meeting): इस सभा का मुख्य उद्देश्य कम्पनी के अंशधरियों को वैध ाानिक रिपोर्ट के द्वारा कम्पनी के निर्माण, प्रवर्तन एवं पूँजी विनियोग की आर्थिक सफलता से सम्बान्धित विभिन्न सूचनाएँ देना है। दूसरे शब्दों ामें वैधानिक सभा बुलने का मुख्य उद्देश्य कम्पनी के अंशधारियों को कम्पनी के निमार्ण, समामेलन सम्बन्ध ाी महत्त्वपूर्ण तथ्यों तथा कम्पनी की प्रगति से परिचित कराना है अैर इससे सम्बान्धित विषयों पर बहस करने का अवसर देना एवं इस समय तक की कम्पनी की सम्पत्तियों एवं दायित्वों के बारे में सदस्यों को परिचित कराना है।

वैधानिक रिपोर्ट
(Statutory Report)

वैधानिक सभा में संचालकों द्वारा एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है निसे वैधनिक रिपोर्ट कहते हैं। रिपोर्ट पर कम से कम दे चालकों के इस्ताक्षर होने चाहिए, जिनमें से एक प्रबन्ध संचालक होता चाहिए। अंकेक्षक के द्वारा भी इसका प्रमाएान होना चाहिए यह रिपोर्ट सदसयों के पास वौधानिक सभा के 21 दिन पहले पहुंच जानी चाहिए।

वैधानिक रिपोर्ट की विषय सामग्री (Contents of Statutory Report): एक वैधानिक रिपोर्ट में निम्न सूचनाएँ देना आवश्यक है–

1. आबंटित हुए अंशों की संख्या, रोकड़ के अतिरिक्त अन्य किसी प्रतिफल के लिए पूर्णदत्त या अंश की संख्या, आबंटित किए गए अंशों पर प्राप्त कुल रकम।
2. वैधानिक रिपोर्ट की तिथि से सात दिन पूर्व तक प्राप्त रोकड़ तथा कम्पनी द्वारा किए हुए भुगतानों का विवरण।
3. कम्पनी के संचालकों, अंकेक्षकों, प्रबन्धक तथा सचिव का नाम, पता एवं व्यवसाय।
4. कम्पनी से सम्बन्धित ऐसे प्रसंविदेया प्रसंविदे मे परिवर्तन का विवरण, जो सभा में मान्यता प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत किया जाना है।
5. यदि किसी अभिगोपन अनूबन्ध को पूरा न किया गया हो, तो उसके पूरे न होने की सीमा तथा करण।
6. कम्पनी के प्रत्योक संचालक या प्रबन्धक से याचनाओं पर देय राशियों की अवशिष्ट राशि।
7. किसी संचालक या प्रबन्धक को कम्पनी के अंशें या ऋण–पत्रों की बिक्री पद दिया गया या देय दलाली या कमीशन की राशि।

सदस्यों के पास वैधानिक रिपोर्ट की प्रतिलिपियाँ भेजने के बाद इसकी एक प्रतिलिपि संचालक मण्डल द्वारा रजिस्टार के पास भेजनी चाहिए।

सभा की कार्यवही
(Procedure of Meeting)

कम्पनी की वैधातिक सभा निम्नलिखित प्रकार से चलाई जाती हैः

1. सभा प्रारम्भ होने पर सर्वप्रथाम संचालकों द्वारा कम्पनी के सदस्यों की 'सूची' सभा में प्रस्तुत की जायेगी। इस सूची में उनके नाम, पते तथा व्यवसाय तथा उनमें से प्रत्येक के द्वारा धारण किये हुए अंशें की संख्या होगी और यह सूची सभा के समय मे किसी भी सदस्य के निरीक्षण के लिए खुली रहेगी।
2. कम्पनी के सदस्य वैधानिक सभा में कम्पनी के निर्माण सम्बन्धी विषयों पर वाद–विवाद कर सकते हैं। चह उल्लेखनीय है कि चाहे इस विषय पर वाद–विवाद करने की पूर्व–सूचना दी गई हो या न दी गई हो। हाँ, बिना सूचना दिए कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थओं के अधीन प्रस्ताव पास नही किया जा सकता है।

3. कम्पनी की वैधानिक सभा समय–समय पर स्थगित कि जा सकती है व सभा मे अधिनियम की व्यवस्थाओं के अधीन सूचना देकर प्रस्ताव पास किया जा सकता है। स्थगित सभा के अधिकार मूल सभा की भाँति ही होंगे।

वैधानिक सभा को न बुलाने के परिणाम

(Consequences of failure to hold the Statutory Meeting)

यदि वैधनिक सभ करने तथा वैधनिक रिपोर्ट को रजिस्ट्राार के पास भेजने में त्रुटि की जाती है तो उसके निम्न परिणाम होंगे :

1. कम्पनी के प्रत्योक संचालक अथवा दायी अधिकारी पर 500 रू तक जुर्माना किया जा सकता है। धारा 165
2. न्यायालय कम्पनी के समापन का आदेश दे सकता है। धार 433
3. न्ययालस वैधानिक रिपोर्ट रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करने अथवा वैधानिक सभा करने का आदेश दे सकता ह। तथा दोषी व्यक्तियों को क्षति पूर्ति करने का आदेश दे सकता है। धारा 443

वार्षिक व्यापक सभा

(Annual General Meeting)

आर्थ (Meaning):– प्रत्येक कम्पनी को अपनी सभाओं के अतिनिक्त एक साधरण सभा भी करनी पड़ती है जिसे वार्षिक व्यापक सभा कहते हैं। यह सभा सामान्य रूप में कम्पनी द्वारा ही बुलई जाती है। परन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में केन्द्रीय सरकार को ऐसी सभ वुलाने का अधिकार है। कम्पनी अधिनियम की धारा 166 के अनुसार प्रत्येक कम्पनी को वर्ष में एक बार, अन्य सभाओं के अतिरिक्त, एक वार्षिक साधरण सभा बुलाना अनिवार्य है तथा सीाा की सूचना में यह स्पष्ट उल्लिखित होना चाहिए कि चह एक वार्षिक व्यापक सभा है।

सभा के उद्देश्य एवं महत्त्व (Objects and Importance of the Meeting): वार्षिक व्यापक सभा का मूल उद्देश्य यह होता है कि वर्ष में कम–से–कम सक बार कम्पनी के सदस्यों को सामूहिक रूप से सकत्रित होकर कम्पनी के कार्य–कलपों की समीक्षा करने का अवसर मिले। अतः कम्पनी के अंशधारियों का ही हित हेता है। कम्पनी के गतवर्षे के कार्यो और आर्थिक स्थिति की पूरी–पूरी जानकारी इसी सभा के माध्यम से होती है। अंकेक्षक तथा संचालकों की रिपोर्ट को भी सभा के समय सदस्यों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है।

वार्षिक साधारण सभा का कहत्त्व (Improtance of the Annual General Meeting): अंशधारियाकें के लिए इस सभा का विशेष महत्व है क्योंकि इसके द्वारा ही वे कम्पनी की आर्थिक स्थिति एवं कार्यविधि के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। इतना ही नहीं इस सभा के अन्दर कम्पनी की कार्यविधि के बारे मे जानकारी प्राप्त करते हैं। इतना ही नहीं इस सभा के अन्दर कम्पनी की कार्यविधि की समालोचन करने का अवसर प्राप्त होता है। इस सभा के द्वारा ही वे कम्पनी की सही स्थिति का पता लगते हैं क्योंकि इन्हें इस सीाा में संचालकों की रिपोर्ट, अंकेक्षक की रिपोर्ट व अंतिम खातों के निरीक्षण का अवसर मिलता है। संचालकों द्वारा घेषित लाभांश पर भी सदस्यों को विचार–विमर्श करने का अवसर मिलता है। किन्तु यह ध्यान नहे कि वे घोषित लाभांश की मात्रा को बढ़ा नहीं सकते परन्तु उसे कम करने का पूर्ण अधिकार होता है। इसके अतिरिक्त इस सभा में ही अवकाश लेने वाले संचालकों के स्यान पर नवीन संचालकों तथा अयकेक्षको की नियुक्ति एवं उनके परिश्रामिक निर्धारित करने का भी अवसर मिलता है।

वार्षिक साघारण सभा में किए जाने वाले कार्य (Work to be done in the annual General Meeting): एक वार्षिक साधारण सभा के– अन्तर्गत दे प्रकार के कार्य किए जाते हैं– एक तो साधारण कार्य तथा दूसरे विशेष कार्य।

साधारण कार्य हैं–अंतिम खातों, संचालक मण्डल की रिपोर्ट एवं अंकेक्षक की रिपोर्ट पर विचार–विमर्श करना, अवकाश ग्रहण करने वाले संचालकों के स्थान पर नियुक्ति करना, अंकेक्षक की नियुक्ति तथा पारिश्रमिक करना तथा लाभांश घोषित करना।

विशेष कार्य वे होतो हैं जो साधारण कार्य नहीं होते जैसे अधिकृत पूँजी को बढ़ाना, प्रबन्धक की नियुक्ति करना, अन्तर्नियमों मे परिवर्तन आदि।

सभा बुलाने का समय (Time of Calling the Meeting): कम्पनी की प्रथम वार्षिक सभा कम्पनी के समामेलन के 18 महीने के भीतर बुलाई जा सकती है परन्तु उसके बाद दो वार्षिक सभाओं के बीच 15 महीने से अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिए। रजिस्ट्रार इस अवधि को 3 महीने के लिए बढ़ा सकता है।

सभा का सूचना (Notice of the Meeting): वार्षिक व्यापक सभा की सूचना कम्पनी के प्रत्येक सदस्य की सभा की तिथि से 21 दिन पूर्व भेज दी जानी चाहिए। सूचना मे सभा का समय, स्थान व तारीख का उल्लेख होना आवश्यक है। सूचना के साथ कम्पनी के अंकेक्षित अन्तिम खाते–लाभ–हानी खाता एवं चिट्ठा (स्थिति विवरण) भी भेजने आवश्यक हैं।

वार्षिक व्यापक सभा न बुलाने का परिणाम

1. कम्पनी के किसी भ्सी सदस्य की प्राथ्रना पर केन्द्रीय सरकार ऐसी सभा को बुला सकती है अथवा बुलने कर आदेश दे सकती है तथा अन्य निर्देश भी दे सकती है जैसे कि एक स्वयं अथवा प्राक्सी उपास्थिति सदस्य भी सभा मानी जाएगी आदि। धारा 167
2. यदि कम्पनी स्वयं अथवा केन्द्रीय सरकार सरकार द्वारा सभा के निर्देश पर भी सभा बुलाने में त्रुटि करती है तो कम्पनी तथा उसके प्रत्येक अधिकारी पर 5,000 रू तक अर्थ दण्ड हो सकता है। त्रुटि जारी रहने पर 250 रू प्रतिदिन की दर से अनिरिक्त अर्थ–दण्ड लगाया जासकता है। धारा 168

वार्षिक सामान्य सभा की न्यूनतम कार्यवाहक संख्या (Quorum of Annual General Meeting): धारा 174 के अनुसार सार्वजनिक कम्पनी में 5 सदस्यों तथा निजी कम्पनी में 2 सदस्यों की उपस्थिति ही न्युनतम कार्यवाहक संख्या मानी जाती है। यदि किसी सभा में न्यूनतम कार्यवाहक संख्या के बराबर सदस्यगण निश्चित समय पर उपस्थिति नहीं होते हैं तो सभा अगले सप्ताह मे उसी दिन तथा उसी समय कि लिए स्थगित कर दी जाती है। यदि स्यगित सभा में एक ही सद्स्य उपस्थित होता है तो वह सभा वैध मानी जाएगी।

वार्षिक सामान्य सभा की कार्यविधि (Procedure of Annual General Meeting): कार्यवाहक संख्या के होने पर अध्यक्ष सचिव को सभा की सूचना पढ़े जाने का आदेश देता है। इसके पश्चात् अध्यक्ष अंकेक्षक की रिपोर्ट एवं संचालकों की रिपोर्ट पढ़ने का आदेश देता है। इसके बाद अध्यक्ष भाषण देता है और वार्षिक खातों एवं संचालकों की रिपोर्ट स्वीकार करने के सम्बन्ध में प्रस्ताव रखता है। इस सम्बन्ध में विचार–कवमर्श के बाद उनकी स्वीकृति हो जाती है। इसके पश्चात् अध्यक्ष लाभांश वितरण के सम्बन्ध मे प्रस्ताव रखता है, जो स्वीकार कर लिया जता जै। इसके बाद संचालकों का पुनः निर्वाचन और अंकेक्षकों की नियुक्ति की कार्यपाही की जाती है। यदि कोई विशेष कार्यक्रम में दिया होता है तो उस पर विचार कवमर्श किया जाता है। इसके बाद अध्यक्ष के प्रति धन्यवाद का प्रस्ताव पारित करके सभा समाप्ति की घोषणा की जाती है।

वार्षिक सामान्य सभा के सूक्ष्म (Minutes of Annual General Meeting): सचिव सभा की समाप्ति के बाद सभा में लिखी हुई टिप्पणियों की सहायता से सामान्य सभा के सूक्ष्म तैयार करता है। इसके बाद इरकी संचालक मण्डल की सभा में पुष्टि करा लेनी चाहिए। आवश्यक सुधार करने के बाद अध्यक्ष तथा संचालक इन सूक्ष्मों पर हस्ताक्षार करके पुष्टि कर देते है।

असाधारण/असामान्य सधारण सभा

(Extra-Ordinary General Meeting)

अर्थ (Meaning): वैधानिक और वार्षिक साधारण सभा के अतिनिक्त कम्पनी की जो अन्य सभाएँ बुलाई जाती हैं, उन्हें असाधारण सभा कहते हैं। यह सभा कम्पनी द्वारा कभी भी बुलाई जस सकती है। यद्यापी वैधानिक सभा व वार्षिक साधारण सभा की तरह इस सभा का बुलाना अनिवार्य तहीं है, परन्तु ऐसे विशेष कार्य जिन्हें आगामी साधारण सभा तक रोका नहीं जा सकता जैसे – पार्षद सीमानियम व अन्तर्नियम में परिवर्तन, अंश–पूँजी में वद्धि या कटौती, ऋणपत्रें का निर्गमन आदि के लिए असाधारण सभा का बुलाना आवश्यक हो जाता है। सही अर्थो मे ऐसी सभा बुलाने का उद्दश्य असाधारण या विशेष कार्य करना होता है।

असाधारण सामान्य सभा की विधि या कार्यवाही
(Procedure of Meeting)

असाधारण सभाओं में सभा की कार्यविधि के सम्बान्ध में कम्पनी के अन्तर्नियमों में दी हुई व्यवस्थाओं का पालन किया जाना चाहिए। प्रायः संचालक मण्डल का अध्यक्ष होता है। फलस्वरूप संचालक मण्डल का अध्यक्ष ही इस सभा का अध्यक्ष पद प्रहण करता है तथा सभा का संचालन करता है। सभा की नियपितता तथा कार्यवाहक संख्या होने पर अध्यक्ष सभा की कार्यवाही प्रारम्भ करता है और सचिव को सूचना पढ़ने का आदेश देता है।

इसके उारान्त कार्यक्रम मे दिए हुए विषयों पर एक–एक करके क्रमानुसार सभा में विचार किया जाता है। किसी प्रस्ताव पर विचार करने के पूर्व अध्यक्ष उस प्रस्ताव के औचित्य पर प्रकाश डालता है। विशेष प्रस्ताव की दशा में 3/4 उपस्थित सदस्यों द्वारा स्वीकार किया जाना आवश्यक है। आवश्यक होने पर मतदान करया जाता है और अध्यक्ष मत के परिणाम की घोषणा करता है। अन्त में धन्यवाद प्रस्ताव के साथ अध्यक्ष के आदेश से सचिव सभा समाप्ति की घोषणा करता है।

असाधारण व्यापक सभा निम्न प्रकार से बुलाई जा सकती है–

1. **संचालकों द्वारा (By Directors):** कम्पनी के अन्तर्नियमों में किसी विपरीत व्यवस्था के अभाव में कम्पनी के संचालक अपनी इच्छा से कम्पनी की असाधारण व्यापक सभा बुला सकते है। तालिका 'अ' के अन्तर्नियम 48 (Table A Rule 48) के अनुसार, संचालक मण्डल जब उचित समझे कम्पनी की एक असाधारण सभा बुला सकता है। यह सभा संचालकों द्वारा किसी ऐसे विशेष कार्यो के लिए बुलाई जा सकती है जो आने वाली वार्षिक व्यापक सभा से पहले किया जना आवश्यक हो।

2. **सदस्यों द्वारा (By Member)**: यदि संचालक कम्पनी की असाधरनण व्यापक सभा नहीं बुलाते हैं तो सदस्यों की निम्नलिखित संख्या कम्पनी की संचालकों को इस सभा के बुलाने के लिए बाध्य कर सकती है–

   (i) अंश पूँजी वाली कम्पनी की दशा में चुकता पूंजी का 1/10 भाग रखने पाले ऐसे अंशधारीनिन्हें वोट देने का अधिकार है।

   (ii) ऐसी कम्पनी जिसमें अंश पूंजी नहीं है सदस्यों के 1/10 वोट देने के अधिकारी, सभा बुलाने के लिए बाघ्य कर सकते हैं।

   उपरोक्त सदस्यों द्वारा मांग पत्र प्रस्तूत करने पर संचालकों द्वारा ऐसी सभा बुलाना अनिवार्य है। मांग पत्र में उन विषयों का उल्लेख होना चाहिए जिन पर विचार करने के लिए सीाा बुलाई जाने वानी है। मांग पत्र पर सभा बुलाने की मांग करने वाले सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिए तथा उसे कम्पनी के रजिस्टर्ड कार्यालय में प्रस्तुत किया जना चाहिए।

   उक्त रूप में वैधानिक मांग करने (मांग पत्र प्रस्तुत करने) की तिथि से 21 दिन के भीतर संचालकों को ऐसी सभा बुलाने की कार्यवाही प्रारम्भ कर देनी चाहिए, और यदि ऐसी तिथि से 45 दिन के भीतर ऐसी सभा नहीं बुलाई जाती, तो माँग करने वाले स्वयं ऐसी सभा बुला सकते हैं। इस प्रकार माँग करने वाले सदस्य कम्पनी की सभा को उसी प्रकार बुलायेंगे जिस प्रकार संचालक–मण्डल द्वारा यह सभाएँ बुलाई जाती है। परन्तु सेसी सभा माँग–पत्र के प्रस्तुत करने की तिथि से 3 माह के बाद नहीं बुलाई जा सकती। इस सम्बन्ध में जो यथोचित व्यय होगा वह माँग करने पालों का कम्पनी द्वारा परिशेध किया जाएगा अैर कम्पनी उसकी त्रुटि करने वाले संचालकों के धन से रोक लेगी।

3. **कम्पनी राजनियम बोर्ड/न्यायालय द्वारा (By company Law Board)**: जब असाधारण व्यापक सभा उक्त रूपों में नहीं बुलाई जाती, तो कम्पनी राजनियम बोर्ड सभा बुलाने की आज्ञा का आदेश दे सकता है। कम्पनी राजनियम बोर्ड ऐसा आदेश, या जो अपनी इच्छा पर अथवा कम्पनी के किसी संचालक के आवेदन पर अथवा कम्पनी के किसी ऐसे सदस्य के आवेदन पर दे सकता है जो कि सभा में मत देने का अध्किारी होगा। कम्पनी राजनियम बोर्ड ऐसी सभा की कार्यवाही से सम्बान्धित आदेश भी दे सकता है। आदेशों में एक आदेश यह हो सकता है। कि कम्पनी का एक सदस्य जोकि स्वयं अथवा प्रतिपुरूष द्वारा सभा में उपस्थित होगा कम्पनी की सभा मानी जाएगी। इस प्रकार बूलाई गई सभा कम्पनी की उचित रूप से बुलाई गई मानी जाऐगी।

वर्ग सभएँ

(Class Meeting)

जब किसी विशेष प्रकार के अंशधारियों के वर्ग, जैसे पूर्वाधिकार अंशधरियों (Preference Shareholders)– के वर्ग की सभा बुलाई जाती है तो उसे वर्ग सभा कहा जाता है। इस सभा में विशेष वर्ग के अंशधारी उपस्थिति हो सकते हैं जिनके लिए यह सभा बुलाई जाती है। प्रत्येक कम्पनी में उसका पाषद अन्तर्नियम ऐसी सभा विभिन्न वर्गो के अंसाध ाारियों के अधिकार में पतिवर्तन करने या अन्तर्नियम में परिवर्तन करने के लिए अथवा एक वर्ग के आंशों को दूसरे वर्ग के अंशों में परिवर्तित करने के लिए बुलाई जाती है।

धरा 106 के अनुसार, उपर्युक्त परिवर्तनों में यदि उस वर्ग के अंशधारियों की कुल संख्या का 1ध10 भाग असहमत है तो इस प्रकार के परिवर्तन को निरस्त कराने के लिए वे धारा 391 के अनुसार न्यायालय में आवेदन कर सकते हैं परन्तु इसके लिए आवेदन सभा की तिथि से 21 दिन की अवधि में किया जाना चाहिए तथा इसकी एक प्रति कम्पनी द्वारा रजिस्ट्रार के पास भेजी जानी चाहिए।

संचालक मण्डल की सभाएँ

(Meetings of Board of Directors)

संयुक्त पूँजी कम्पनियाँ का प्रबन्ध तथा संचालन द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों (संचालकों) द्वारा किया जता है। अधिनियम द्वारा संचालकों के प्रबन्ध व नियन्त्रण सम्बन्धी विशेष अधिकार दिये गये हैं। कम्पनी के व्यवसाय और प्रबन्ध से सम्बन्धि ात विषयों पर विचार–विमर्श करने और नीति निर्धारित करने के लिए समय–समय पर संचालकों की सभायें आयोजित की जाती है। संचालकों से सम्बान्धित सभाओं को दो वर्गो में विभजित किया जा सकता हैं (i) संचालक मण्डल की सभायें (ii) संचालक समितयों की सभायें।

संचालक मण्डल की सभाओं सम्बान्धित प्रावधान

(Provisions regarding meeting of Board of Directors)

1. **सभा की समय (Time of the Meeting)**: संचालक मण्डल की सभा 3 माह में कम से कम एक बार तथा वर्ष में चार बार अवश्य होनी चाहिये।केन्द्रय सरकार एक सार्वजनिक सूचना द्वारा किसी विशेष प्रकार की कम्पनियों को इससे छूट दे सकती है। धारा 285
2. **सभा की सूचना (Notice of the Meeting)**: संचालक मण्डल की सभा की सूचना भारतवर्ष में रहने वाले संचालकों को लिखित रूप में रजिस्टार्ड डाक द्वारा दी जायेगी। ऐसी सूचना भेजने में त्रुटि करने वाले अधि ाकारी पर 100 रूपये तक का जुर्माना किया जा सकता है।
3. **सभा का कार्यक्रम (Agenda of the Meeting)**: सचित संचालक मंडल के अध्यक्ष या प्रबन्ध संचालक ो परामर्श से कार्यक्रम तैयार करके सूचना के साथ भेज देता है जिससे कि यदि कोई संचालक सभा में उपस्थित न हो सके तो वह उस विषय में अपनी राय भेज सके।
4. **सभा का अध्यक्ष (Chairman of the Meeting)**: सभा की कार्यवाही को चलान के लिये अध्यक्ष का होना आवश्यक होता है। कम्पनी के अन्तर्नियमों में या तो अध्यक्ष का नाम दिया हुआ होता है अथवा संजालक अपना अध्यक्ष निश्चित कर लेते हें। यदि निश्चित किया हुआ अध्यक्ष सभा के निश्चित किए गए समय के तीन मिनट के अन्दर उपस्थित नहीं होता तो उपस्थित संचालक अपने में से ही किसी को अध्यक्ष चुन सकते हैं।
5. सभा की कार्यविधि (Procedure of the Meeting): संचालक मण्डल की सभा की कार्यविधि के सम्बन्ध में निम्न व्यवस्थायें है:
   (i) ***कोरम (Quorum)***: मण्डल की सभाओं का कोरम अन्तर्नियमें द्वारा निर्धारित किया जायेगा। अन्तर्नियमों की व्यवस्थाओं के अभाव में सभा का कोरम कुल संचालकों की संख्या का 1/3 या दो संचालक (जोभी अधिक हो) माना जायेगा। यदि किसी विषय में हित रखने वाले व्यक्तियों की संख्या कुल संख्या के 2/3 से ज्यादा हो जाती है (इनको उस विषय पर सभा में भाग लेने का अधिकार नहीं है) तो शेष संख्या

(दो से कम नही) ही कोरम मान जायेगा धारा 287 व 300

यदि सभा कोरम के अभाव में नहीं हो पाती है तो ऐसी सभा अगले सप्ताह उसी दिन व उसी समय के लिये स्थगित हो जायेगी। यदि वह दिन सार्वजनिक छुट्टी का दिन है जो उससे अगले दिन ऐसी सभा हो सकेगी।

(ii) ***प्रस्ताव द्वारा निर्णय (Decision by Resolution)***: सभा में सभी निर्णय उपयुक्त प्रस्ताव पास करके ही लिए जाते है। लेकिन जहां पर सभा बुलाना सूविधजनक नहीं है और निर्णय शीघ्र लेना आवश्यक है तो प्रस्ताव के सदस्यों को उनके भारत स्थित पते पर अनुमोदन लेने को लिये घुमाया (Circulate) जा सकता है। प्रस्ताव भेजे जाने वाले सदस्यों की संख्या निश्चित कोरम से कम नहीं होती चाहिए। धारा 289

लेकिन कुछ विषयों पर निर्णया सभा में ही (घुमाकर नहीं) लिये जा सकते हैं। ऐसे विषय निम्न हैं–(i) संचालक पद की आकस्मिक रिक्तता की पूर्ति करने, (ii) अंशों पर मांग करने, ऋण पत्र निर्गमित करने, ऋण लेने व धन विनियोग करने, (iii) संचालको द्वारा हित रखने वाले अनुबन्धों की स्वीकृति देने, (iv) दूसरी कम्पनी मे नियूक्त व्यक्ति को प्रबन्ध संचालक व मैनेजर की नियुक्ति करने व (v) एक ही समुदाय की अन्य कम्पनीयों के अंशों व ऋण–पत्रों मे विनियोग करने के लिए यदि। धारा 292

(iii) ***सभा में किये जाने वाले कार्य (Business to be Transacted in the Meeting)***: उपरोक्त धारा 292 में दिये गये कार्यो के अतिरिक्त संचालक सभा मे अन्य कार्य भी किये जाते हैं यदि अन्तर्नियमों में ऐसी व्यास्था है में कार्य निम्न लिखित हैं। (a) कम्पनी प्रबन्ध पर विचार, (b) कार्वमुद्रा के उपयोग का अधिकरा, (c) अंशों को जब्त करना, (d) अंशों पर याचना राशि का मांगना, (e) अंशों का आबंटन करना (f) अंशों को जब्त करना, (g) लाभश की सिफारिश करना, (h) अन्तरिम लाभांश की घेषणा करना, (i) अधिकारियों की नियुक्ति आदि।

(iv) ***निर्णय की विधि (Method of Decision)***: प्रस्ताव पर निर्णय बहुत से अथवा सर्वसम्मति से किया जाता है। यदि प्रस्ताव पर संचालकों में मतभेद है तो उस पर वोट लिये जासकते हैं। यदि पक्ष विपक्ष मे बराबर मत आते है तो अध्यक्ष अपना निर्णायक मत दे सकता है।

संचालक समिति की सभा

(Meeting of Directors Committee)

प्रायः बड़ी–बड़ी कम्पनियां जिरका कार्य–क्षेत्र बहुत विस्तत होता है तथा लिरके संचालकों की संख्यसा भी अधिक होती है उनका संचालन अधिक कार्यक्षमता से करने के लिए संचालक मंडल विभिन्न कार्यो के लिए समितियों का गठन कर देता है जैसे इस्तान्तरण समिति, अंश आबंटन समिति, वित्तीय प्रबन्ध समिति आदि। ये समितियाँ स्थायी भी होती हैं थिा अस्थायी भी। दैनिक कार्यो के सम्बान्ध में जो समितियाँ बनाई जाती हैं, स्थायी होती है जैसे वित्तीय प्रबन्ध समिति या हस्तान्तरण समिति। इनका कार्य इगातार चलता रहता है। जव किसि विशेष कार्य को करने के लिए ही समिति बनाई जाती है तो चह अस्थायी होती है जैसे आबटन समिति। जैसे ही विशेष कार्य पूरा हो जाता है, समिति का आस्तित्व समाप्त हो जाता है।

कम्पनी के अन्तर्निसमों द्वारा अधिकृत होने पर ही संचालक मंडल समिति यों का गठन करके अपने कुठ अधिकारों का हस्तान्तरण इन्हें कर सकता है। किसी भी समिति का गठन संचालक मंडल की सभा में प्रस्ताव पास करके ही किया जा सकता है। संचालक समितियों को अधिकारें का हस्तान्तरण करने समय संचालक मंडल को कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थाओं को ध्यान में रखना चाहिए। कम्पनी अधिनियम के अनुसार कुछ कार्य ऐसे हैं लिरका हस्तान्तरण संचालक मंडल किसी अन्य को नहीं कर सकता जैसे अंशें पर याचना करना, ऋण–पत्रों का निर्गमन कारना, कम्पनी के धन का वितियोग, इत्यादि।

जब संचालक मंडल किसी समिति का गठन करता है तो गठन के समय ही उसके अधिकारों को भी स्पष्ट कर देता है तथा किसी एक संचालक को उस समिति का संयोजक नियुक्त कर देता है। यह संयोजक समय–समय पर आवश्यकतानुसार समिति की सभा का आयोजन करता है। संचालक समितियों की कार्य–विधि ठिक वैसी ही है जो संचालक मंडल की सभाओं की है। संचालक मंडल की सभाओं के सम्बन्ध में जो वैधानिक व्यवस्थएँ हैं वे ही संचालक समितियों की सभाओं के सम्बन्ध में है।

ऋण–पत्रधारियों की सभाएँ

(Meetings of Debenture Holders)

जब एक कम्पनी ऋण–पत्र निर्गमित करती है तो वह ऋण–पत्रधारियों की सभाओं के बारे मे भी योजना बनाती है। इन सभाओं से सम्बन्धित नियम ऋण–पत्र के पीछे छपे रहते हैं। यदि अन्तर्नियमों मे इन सभाओं के बारे मे कोई नियम दिए हुए हों, तो उनका पालन किया जाता है। जब भी कम्पनी ऋण–पत्र निर्गमित करती है वह ऋण–पत्र धारियों को प्रतिभूति की शर्तों मे अथवा उनके अधिकारों मे परिवर्तन करने का अधिकार दे सकती है। ऋण–पत्र धारियों के अधिकारों मे इन सभाओं के द्वारा परिवर्तन किया जा सकता है।

ऋणदाताओं एवं लेनदारों की सभाएँ

(Meetings of Credotors)

कम्पनी द्वारा या उसके किसी लेनदार द्वारा न्यायालय मे प्रार्थना–पत्र देने पर न्यायालय कम्पनी के लेनदारों की सभा करने की आज्ञा दे सकता है। कम्पनी की जो योजनाएँ लेनदारों के हितों को प्रभावित करती हैं, उनके लिए लेनदारों की सभाएँ की जाती हैं ताकि उनकी सहमति प्राप्त की जा सके। कम्पनी के समापन के समय जो सभाएँ कम्पनी द्वारा देय ऋण को निर्धारित करने के लिए तथा कम्पनी के मामलों को निबटाने के लिए निस्तारक नियुक्त करने के लिए की जाती है वे समापन के अधीन ऋण–दाताओं की सभाएँ कहलाती हैं तथा जो सभाएँ कम्पनी द्वारा ऋण–दाताओं के साथ किसी प्रबन्ध योजना पर विचार–विमर्श करने के लिए बुलाई जाती हैं वे समापन के अतिरिक्त ऋण–दाताओं की सभाएँ कहलाती हैं।

प्रस्ताव अथवा संकल्प
(Resolution)

प्रस्ताव का अर्थ (Meaning of Resolution)– सभा के सामने विधिवत् रूप से प्रस्तुत सुझाव (Motion) जब पुर्ण विचार–विमर्श तथा मतदान के पश्चात् सभा मे आवश्यक बहुमत द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो वह प्रस्ताव या संकल्प बन जाता है। अतः सुझाव पर सभा द्वारा लिया गया औपचारिक निर्णय प्रस्ताव है।

प्रस्ताव के प्रकार (Kinds of Resolution) :– भारतीय कम्पनी अधिनियम के अनुसार प्रस्ताव निम्न तीन प्रकार के होते हैं:

- साघारण प्रस्ताव।
- विशेष प्रस्ताव।
- विशेष सूचना प्रस्ताव।
- **साघारण प्रस्ताव (Ordinary Resolution):** साघारण प्रस्ताव से आशय ऐसे प्रस्ताव से है जो कम्पनी की साघारण सभा मे बहुमत से पास किया जाता है। बहुमत से अभिप्राय यह है कि पक्ष मे दिए गए मतो की संख्या विपक्ष मे दिए गए मतों की संख्या से अधिक हो। उदाहरण के लिए यदि सभा के 100 मतो (Votes) मे से 51 मत प्रस्ताव के पक्ष मे हो तो प्रस्ताव पास हुआ माना जाता है।

  कम्पनी अधिनियम की धारा 189(1) के अनुसार, साधारण प्रस्ताव कम्पनी की साधारण सभा मे, जिसके लिए 21 दिन का नोटिस दिया गया हो और जिसमे हाथ उठा कर या मतगणना के अनुसार वोट दिए जाते हैं, पास किया जाता है।

  उद्देश्य अथवा साधारण प्रस्ताव द्वारा किए जाने वाले कार्य (Objects or Matters to be Decided by an Ordinary Resolution) कम्पनी अधिनियम के अनुसार निम्नलिखित व्यवस्थाओं (कार्यों) के लिए साधारण प्रस्ताव की आवश्यकता पड़ती है–

1. केन्द्रीय सरकार की पुर्व अनुमति से कम्पनी के नाम मे परिवर्तन। धारा 22
2. प्रविवरण या स्थानापन्न प्रविवरण मे दिए गए अनुबन्धों की शर्तों मे परिवर्तन। धारा 61
3. अंशों की कटौती पर निर्गमण। धारा 79

4. यदि कम्पनी के अर्न्तनियम आज्ञा देते हों तो कम्पनी की अंशपुजी मे परिवर्तन। धारा 94
5. विमोचनशील ऋणपत्रों का पुनः निर्गमण करना। धारा 121
6. वैधानिक रिपोर्ट स्वीकार करना। धारा 165
7. सूत्रधारी कम्पनी द्वारा सहायक की लेखा पुस्तकों को जांचने के लिए प्रतिनिधियों को अधिकत करना। धारा 214
8. अंकेक्षकों की नियुक्ति एवं उनका पारिश्रमिक निर्धारित करना। धारा 224
9. अवकाश ग्रहण करने वाले संचालक के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति को संचालक नियुक्त करना। धारा 257
10. अर्न्तनियमों द्वारा निर्धारित सीमा के अन्दर संचालकों को घटाना या बढ़ना। धारा 258

विशेष प्रस्ताव
(Special Resolution)

विशेष प्रस्ताव से आशय ऐसे प्रस्ताव से है जो 21 दिन पूर्व की सूचना देकर बुलाई गई सदस्यों की सामान्य सभा मे उपस्थित सदस्यों 3/4 के बहुमत से पारित किया जा सकता है। इसके लिए अध्यक्ष के स्वतंत्र मत की व्यवस्थ नही है। मतदान हस्त–प्रर्दशन द्वारा अथवा मतगणना द्वारा हो सकता है। मतदान अधिकत व्यक्तियों द्वारा स्वय उपस्थित होकर और व्यवस्था होने पर प्रतिपुरूष द्वारा किया जा सकता है। ऐसी व्यापक सभा की सूचना मे प्रस्तावित किए जाने वाले विशेष प्रस्ताव को स्पष्ट रूप मे उल्लिखित करना चाहिए।

विशेष प्रस्ताव की आवश्यकता (Need of Special Resolution) विशेष प्रस्ताव का आशय यह है जिसमे प्रत्येक महत्वपुर्ण विषय पर्याप्त रूप से सोच विचार कर कम्पनी के 75ः सदस्यों की सहमति से किया जा सके। कम्पनी अधिनियम के अधीन विशेष प्रस्ताव निम्नलिखित कार्यों के लिए आवश्यक है–

1. केन्द्रीय सरकार की पुर्व अनुमति से कम्पनी के नाम परिवर्तन करना। धारा 21
2. पार्षद अन्तर्नियम मे परिवर्तन करना। धारा 31
3. कम्पनी के रजिस्टर्ड कार्यालय को एक राज्य से दुसरे राज्य मे ले जाना या कम्पनी के उद्देश्य वाक्यांश मे परिवर्तन करना। धारा 146
4. कम्पनी के रजिस्टर्ड कार्यालय को उसी राज्य मे एक स्थान से दुसरे स्थान पर ले जाना। धारा 208
5. अंश पुँजी वाली कम्पनी की अयाचित पुँजी मे से संचित पुँजी (त्मेमतअम ब्वपजंस) बनाना। धारा 99
6. अंश–पुँजी मे कमी करना। धारा 100
7. पुँजी मे से ब्याज का भुगतान करना। धारा 146
8. केन्द्रीय सरकार द्वारा कम्पनी के मामलों की जाँच करने के लिए निरिक्षकों की नियुक्ति करना। धारा 237
9. एक धर्मार्थ संस्था के नाम से लिमिटेड या प्राइवेट लिमिटेड शब्द को हटाना। धारा 314
10. कुछ व्यक्तियों को संचालक की तरह नियुक्त करना। धारा 261

विशेष सूचना वाले प्रस्ताव
(Resolutions Requiring Special Notice)

भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 के अन्तर्गत एक ऐसे प्रस्ताव की व्यवस्था है, जिसके लिए विशेष सूचना की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे नोटिस जिसके लिए 14 दिन की सूचना आवश्यक है, विशेष नोटिस कहा जाता है। ये प्रस्ताव साधारण या विशेष दोनो प्रकार के हो सकते हैं। कम्पनी इस प्रस्ताव की सूचना अपने सदस्यों के पास सभा होने के कम से कम सात दिन पुर्व भेजती है। यदि ऐसा सम्भव न हो तो इसकी सूचना एक ऐसे समाचार पत्र मे प्रकाशित की जाती है जो इस क्षेत्र मे प्रचलित हो।

यदि अन्तर्नियमों में इस प्रकार के नोटिस को सदस्यों के पास भेजने के लिए कोई अन्य विधि दी हुई हो तो उस विधि के अनुसार भेजा जाना चाहिए।

ऐसे प्रस्ताव, जिनके लिए विशेष सुचना देने की आवश्यकता है, निम्नलिखित हैं—

1. साधारण प्रस्ताव अवकाश ग्रहण करने वाले अंकेक्षक के स्थान पर नए अंकेक्षक की नियुक्ति करने का प्रस्ताव। धारा 225
2. एक ऐसा प्रस्ताव कि अवकाश ग्रहण करने वाले अंकेक्षक को दुबारा नियुक्त न किया जाए। धारा 225
3. एक संचालक को उसके कार्यकाल की अवधि के पूर्व ही हटाने का प्रस्ताव। धारा 284
4. अलग किए हुए संचालक के स्थान पर नए संचालक की नियुक्ति का प्रस्ताव । धारा 284

सभा की कार्यवाहक संख्या
(Quorum)

किसी भी सभा के नियमित होने के लिए सभा की उचित सूचना देने के साथ सभा मे न्यूनतम संख्या मे सदस्यों को उपस्थित होना चाहिए। कार्यवाहक संख्या से आशय सदस्यों की उस न्यूनतम संख्या से है जिसके उपस्थित होने पर सभा की कार्यवाही शुरू की जा सकती है। अधिनियम में कार्यवाहक संख्या सम्बन्धी नियम निम्न हैं—

1. अन्तर्नियमों में लिखी हुई कार्यवाहक संख्या, यदि अन्तर्नियमों में कार्यवाहक संख्या के सम्बन्ध मे व्यवस्था नही है तो सार्वजनिक कम्पनी में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित 5 व्यक्ति और एक निजी में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित 2 व्यक्ति कार्यवाहक संख्या कहलाती है। धारा 174;1द्ध
2. प्रतिपुरूष के रूप मे उपस्थित व्यक्ति कार्यवाहक संख्या के लिए नही गिना जाएगा।
3. यदि कम्पनी दुसरी कम्पनी की अंशधारी है तो प्रथम कम्पनी का प्रतिनिधि कार्यवाहक संख्या के लिए गिन लिया जाएगा।
4. कम्पनी की सभा के लिए निश्चित समय के आधा घण्टे के अन्दर यदि कार्यवाहक संख्या पुरी नही होती तो यह सभा स्थगित कर दी जाएगी और अगले सप्ताह इसी दिन, इसी समय व इसी स्थान पर होगी। यदि अगले सप्ताह भी सभा के समय आधा घन्टे के अन्दर कार्यवाहक संख्या पुरी नही होती पूरी नही होती है, तो जितने भी सदस्य उपस्थित होंगे उतने को ही कार्यवाहक संख्या मान लिया जाएगा। धारा 174;3द्ध से ;5द्ध
5. संचालक मंडल की सभा के सम्बन्ध मे यदि अन्तर्नियमों में कार्यवाहक संख्या निर्धारित नही की गई है तो संचालकों की कुल संख्या के एक—तिहाई या दो संचालक, जो भी कम हो, कार्यवाहक संख्या होगी। यह संख्या निर्धारित करते समय आंशिक भाग को पूर्ण अंक मान लिया जाता है। धारा 287;1द्ध
6. तालिका 'अ' के 49 वें नियम के अनुसार कम्पनी की उस साधारण सभा में कोई कार्य नही किया जा सकता जिसमे कार्यवाहक संख्या न हो।

सभा के सूक्ष्म
(Minutes of meetings)

सूक्ष्म का अर्थ है कम्पनी की सभाओं मे लिए गए निणयों का सही—सही अभिलेख करना। इसमे केवल उन्हीं प्रस्तावों को शामिल किया जाता है जो वास्तव में पारित किए गए हों। इसमें प्रस्ताव को स्वीकार करने के पूर्व वाद—विवाद का अभिलेख करना आवश्यक नहीं है। सभा के विवरण को सूक्ष्म में जिस पुस्तक में प्रविष्ट करते हैं उसे 'सूक्ष्म पुस्तक' कहते है।

धारा 193 के अधीन सूक्ष्म से सम्बन्धित निम्नलिखित व्यवस्थाएं है :—

1. प्रत्येक सभा की कार्यवाही की प्रविष्टि सभा की तिथि से 30 दिन के अन्दर—अन्दर सूक्ष्म पुस्तिका (Minutes Book) में हो जानी चाहिए।

2. सदस्यों व संचालक मंडल की सभाओं के सूक्ष्म अलग–अलग पुस्तक में रखे जायेंगे, जिनके सभी पष्ठों पर क्रमांक व हस्ताक्षर होने चाहिए तथा कार्यवाही के अन्तिम पष्ठ पर हस्ताक्षर व तिथि होनी चाहिए। व्यापक सभा की दशा में हस्ताक्षर 30 दिन के भीतर उस सभा के अध्यक्ष द्वारा होने चाहिए तथा संचालक सभा अथवा उसकी समिति की सभा पर उस सभा अथवा उसके बाद की सभा के हो सकते हैं।

3. संचालक मण्डल के सूक्ष्म में उपस्थित संचालको के नाम तथा किसी प्रस्ताव पर असंतुष्ट संचालकों के नाम लिखे जाने आवश्यक हैं।

4. सभा का अध्यक्ष अपवादजनक विषय, सारहीन तथ्य अथवा कम्पनी के हितों के लिए हानिकारक विषयों की प्रविष्टि सूक्ष्म मे करने के लिए बाध्य नही है।

5. उक्त व्यवस्थाओं का पालन न करने पर त्रुटि करने वाले अधिकारी पर 50 रूपये तक का जुर्माना हो सकता है। धारा 193

6. यदि सभा के सूक्ष्म धारा 193 के प्रवधानों के अनुसार रखे गए है जब तक इसके विरूद्ध कुछ और सिद्ध नही कर दिया जाता यह माना जाएगा कि वह सभा विधिपूर्वक आयोजित की गई थी तथा इस सभा में लिए गए निर्णय वैधानिक हैं।

7. उपरोक्त व्यवस्थाओं के अधीन रखे गए सूक्ष्म मे की गई प्रविष्टि सभा मे की गई कार्यवाहियों के लिए प्रमाण स्वरूप होगी। धारा 194.195

8. कम्पनी की साधारण सभा के सूक्ष्म कम्पनी के रजिस्टर्ड कार्यालय पर हीं रखे जाते हैं। सदस्यों की सभाओं के सूक्ष्म प्रत्येक व्यावसायिक दिन, व्यावसायिक घण्टों मे कम से कम दो घण्टे के लिए अन्तर्नियमों या साध ाारण सभा द्वारा लगाए गए प्रतिबन्धों के अधीन सदस्यों के निरिक्षण के लिए उपलब्ध किए जाएँगे। यदि कोई सदस्य किसी सूक्ष्म की प्रतिलिपि प्राप्त करना चाहे तो निर्धारित शुल्क देकर 7 दिन के अन्दर नियमानुसार प्राप्त कर सकता है। यदि किसी सदस्य को सूक्ष्म का निरीक्षण करने की अनुमति नही दी जाती या निर्धारित समय मे उसे सूक्ष्म की प्रति जारी नही की जाती तो कम्पनी तथा प्रत्येक दोषी अधिकारी पर 500 रूपये तक आर्थिक दण्ड दिया जा सकता है, तथा न्यायालय सूक्ष्म पुस्तक का निरिक्षण व प्रतिलिपि देने का आदेश दे सकता है।

मतदान अथवा मतगणना
(Voting and Polls)

'मत' शब्द से आशय किसी प्रस्ताव के पक्ष या विपक्ष में अधिकत रूप से इच्छा या राय प्रकट करना है। सभा मे विचाराधीन 'सुझाव' (Motion) अथवा प्रस्तावित संकल्प पर पर्याप्त बहस हो जाने पश्चात् उस सुझाव के सम्बन्ध मे सभा का निर्णय जानने के लिए सदस्यों के समक्ष मतदान हेतु प्रस्तुत किया जाता है। अथवा किसी भी विचाराधीन प्रस्ताव के पक्ष या विपक्ष में सदस्यों अथवा सभा का मत (Sence of Meeting) जानने के लिए मतदान का सहारा लिया जाता है।

कम्पनी के अंशधारियों के मतदान का अधिकार कम्पनी पार्षद अन्तर्नियम द्वारा निर्धारित किया जाता है। कम्पनी के अंशधारियों को कम्पनी की सभा मे भाग लेने तथा मतदान का अधिकार होता है तथा कम्पनी इस अधिकार पर किसी प्रकार का अंकुश अथवा प्रतिबन्ध नही लगा सकती है परन्तु सभी अंशधारियों के सामान मत नही हो सकते हैं। कम्पनी उन सभी अंशधारियों द्वारा मतदान पर प्रतिबन्ध लगा सकती है जिन्होने याचना ;ब्ंससद्ध का भुगतान न किया हो। इसी प्रकार यदि किसी अंशधारी के पास कम्पनी के अधिक अंश हैं तो उसे अधिक मत प्राप्त हो सकते हैं। विभिन्न प्रकार के अंशधारियों के मताधिकार मे भिन्नता हो सकती है। इस भिन्नता का आधार उनके हित मे है। कम्पनी की सभा मे मतदान करने की कई प्रणलियाँ है। कम्पनी के स्वरूप एवं सभा की स्थिति के अनुसार इनमे से किसी भी प्रणाली का सहारा लिया जा सकता है। कुछ प्रमुख प्रचलित प्रणालियाँ निम्न हैः

मतदान की विधियाँ

(Methods of Voting)

कम्पनी की व्यापक (साधारण) सभाओं में किसी विषय (सुझाव) पर मत जानने की निम्नलिखित विधियाँः

1. **हर्ष-ध्वनि द्वारा (By Acclamation):** जब किसी प्रस्तावित विषय के सम्बन्ध में सभा के सदस्य अपनी सहमति ताली बजाकर या अन्य किसी प्रकार से प्रसन्नता प्रकट करके देते है तो इसे हर्ष–ध्वनि द्वारा मतदान कहा जाता है। इस प्रणाली का उपयोग केवल उस समय ही किया जा सकता है जबकि सभा किसी सुझाव (Motion)/प्रस्ताव पर लगभग एक मत हो जैसे अध्यक्ष के प्रति धन्यवाद का प्रस्ताव।

2. **आवाज द्वारा (By Voice):** इस विधि में सभा का अध्यक्ष प्रस्ताव को सभा के समक्ष रखता है तथा उन सदस्यों से, जो प्रस्ताव के पक्ष में हैं, 'हाँ' कहने के लिए कहता है और जो सदस्य प्रस्ताव के पक्ष में नहीं है, उनसे 'नहीं' कहने के लिए कहता है। अध्यक्ष 'हाँ' की आवाज व 'नहीं' की आवाज लगाने वाले व्यक्तियों की संख्या का अनुमान लगाता है। इस अनुमान के आधार पर वह निर्णय करता है कि प्रस्ताव पास हुआा या नहीं। यदि कोई सदस्य अध्यक्ष के निर्णय से असंतुष्ट होता है तो वह 'हस्त प्रदर्शन द्वारा मतदान' कराने के लिए अध्यक्ष बाध्य कर सकता है।

3. **हस्त-प्रदर्शन द्वारा (By show of Hands):** इस विधि के अनुसार उपस्थित सदस्य किसी प्रस्ताव में अपना मत हाथ उठाकर देते हैं। मतदान की इस विधि के अपनाने पर अध्यक्ष पहले उन सदस्यों को हाथ उठाने के लिए कहता है जो प्रस्तुत प्रस्ताव के पक्ष में हैं तथा उनकी गिनती कर लेता है। इसके पश्चात् वह उन सदस्यों को हाथ उठाने के लिए कहता है जो प्रस्तुत प्रस्ताव के विपक्ष में है तथा उनकी गिनती कर लेता है। यदि प्रस्ताव के पक्ष में उठाए गए हाथों की संख्या विपक्ष में उठाए गए हाथों की संख्या से अधिक है तो सभा का मत प्रस्ताव के पक्ष में माना जाता है अन्यथा विपक्ष में । अधिकांश कार्यो के सम्बन्ध में सभा का मत इस विधि द्वारा निश्चित किया जाता है।

   मतगणना की इस विधि में प्रत्येक सदस्य को एक मत देने का अधिकार होता है। मताधिकार का अंशों की संख्या से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस विधि में प्रतिपुरूषों (Proxies) को मत देने का अधिकार नहीं होता है।

4. **मत पत्र द्वारा (By Division):** इस विधि द्वारा सभा का मत जानने के लिए अध्यक्ष उन सदस्यों को एक ओर बैठने के लिए कहता है जो प्रस्तुत प्रस्ताव के पक्ष मे है तथा उन सदस्यों को दूसरी ओर बैठने के लिए कहता है जो प्रस्तुत सुझाव के विपक्ष में है। इसके पश्चात् प्रत्येक ओर के सदस्यों की गणना ही की जाती है तथा अध्यक्ष द्वारा परिणाम की घोषणा कर दी जाती है। सभा का पूर्णतया निश्चित एवं स्पष्ट मत जानने के लिए मतदान की यह विधि अपनाई जाती है।

5. **मत पत्र द्वारा (By Ballot):** इस विधि का प्रयोग सभा में केवल उस स्थिति में किया जाता है जब मत को गुप्त रखना हो। इस विधि में सभा में उपस्थिति सभी सदस्यों को एक–एक मत पत्र दिया जाता है। इसके पश्चात् सभापति उपस्थित सदस्यों से अनुरोध करता है कि वह प्रस्ताव के पक्ष या विपक्ष में सहमति लिखकर मतपत्र पेटिका (Ballot Box) में डाल दें। जब सब सदस्य अपना–अपना मतपत्र पेटिका में डाल देते हैं तो अध्यक्ष द्वारा नियुक्त व्यक्ति मतपत्र पेटिका खोलता है व पक्ष और विपक्ष के मत पत्रों को अलग–अलग छांटता है और गिनकर अध्यक्ष को बताता है जो बहुमत के आधार पर परिणाम की घोषणा करता है।

6. **मतगणना द्वारा (By Poll):** जब किसी प्रस्ताव पर उक्त विधियों में से किसी भी विधि द्वारा मतदान कराया जाता है तो सदस्य अपने अंशों की संख्या एवं मूल्य (Value) के आधार पर मत नहीं दे सकते तथा अनुपस्थित सदस्यों के प्रतिपुरूष (Proxy) भी मतदान में भाग नहीं ले सकते। अतः कम्पनी अधिनियम में मतगणना (Voting by Poll) की व्यवस्था की गई है। मतदान की इस विधि में प्रत्येक सदस्य को उतने मत देने का अधिकार होता है जितने उसके पास अंश है। इस विधि में प्रतिपुरूष भी भाग ले सकता है।

अध्याय-9
अंकेक्षण का परिचय
(Introduction of Auditing)

अंकेक्षण (Auditing): जिस प्रकार शरीर की व्यवस्थता की जाँच डॉक्टर से कराना आवश्यक है, उसी प्रकार लेख–पुस्तकों की जाँच अंकेक्षण से कराना आवश्यक है। डॉक्टर शरीर जाँच के बाद यह प्रमाणित करता है कि शरीर में दोष है या नहीं; यदि है तो किस प्रकार का है, ऐसा रिपोर्ट में लिख देता है। उसी प्रकार लेखा पुस्तकों का डॉक्टर (अंकेक्षण) भी उनके दोषी होने या दोषी ना होने का एक रिपोर्ट देता है। अंकेक्षण से तात्पर्य किसी संस्था की लेखा–पुस्तकों की विशिष्ट एवं आलोचनात्मक जाँच से है जो एक याग्य एवं निष्पक्ष युक्ति के द्वारा प्रमाणकों, प्रपत्रों सूचना तथा स्पष्टीकरणों की सहायता से की जाती है।

उत्पत्ति (Origin): अंग्रेजी भाषा का शब्द आडिटिंग (Auditing), जिसका हिन्दी अनुवाद 'अंकेक्षण' है, लेटिन भाषा के शब्द आडायर (Audire) से बना है, जिसका अर्थ है सुनना (To hear)। प्राचीन समय में हिसाब–किताब रखने वाले व्यक्ति, अर्थात् लेखापाल, लेखा पुस्तकों को लेकर एक निष्पक्ष व्यक्ति के पास जाते थे तथा हिसाब–किताब उसे सुनाते थे। ये निष्पक्ष व्यक्ति प्रायः न्यायाधीश होते थे तो हिसाब–किताब को सुनकर अपना निर्णय देते थे। इस सुनने की प्रक्रिया को अंकेक्षण (Auditing) तथा सुनने वाले निष्पक्ष व्यक्ति को अंकेक्षक (Auditor) कहा जाने लगा।

''अंकेक्षण'' से आशय किसी संस्था की लेखा–पुस्तकों की विशिष्ट एवं आलोचनात्मक जाँच से है जो एक योग्य एवं निष्पक्ष व्यक्ति (अंकेक्षण) द्वारा प्रमाणकों (vouchers), प्रपत्रों (documents), सूचना (information), तथा स्पष्टीकरणों (explanations), की सहायता से की जाती है जिससे यह पता लगाया जा सके कि (i) संस्था का लाभ–हानि खाता एक निश्चित अवधि के लिए सही लाभ या हानि दर्शाता है या नहीं, (ii) चिट्ठा एक निश्चित तिथि को सही एवं वास्तविक आर्थिक स्थिति में है या नहीं, और (iii) लेखे नियमानुसार बनाए गए हैं या नहीं

उपरोक्त परिभाषा के आधार पर अंकेक्षण के निम्नलिखित परिभाषा तत्व (लक्षण) हैः–

1. **लेखा-पुस्तकें**–अंकेक्षक संस्था के हिसाब–किताब की पुस्तकें जिनमें समस्त सौदों का लेखा किया गया है, इनकी प्रविष्टियों की जाँच करके ही अपनी रिपोर्ट देता है।

2. **योग्य एवं निष्पक्ष व्यक्ति**– जाँच का यह कार्य ऐसे निष्पक्ष व्यक्ति द्वारा किया जाए, जो इसके लिए सर्वथा योग्य हो।

3ण **जाँच**– लेखा–पुस्तकों में किए गए लेखों की गणितीय शुद्धता नहीं देखी जाती बल्कि ऐसी विशिष्ट एवं आलोचानात्मक जाँच की जाती है जिसके परिण4मस्वरूप इन लेखों की वास्तविकता, पूर्णता तथा सत्यता का पता चल सके।

4ण **संस्था**–पहले केवल व्यापारिक संस्थाओं को ही अंकेक्षण के दष्टिकोण से संस्था माना जाता था, जैसा कि 'स्पाइ५ण एवं पैगलर' द्वारा दी गई परिभाषा से स्पष्ट है। परन्तु आजकल अंकेक्षण का क्षेत्र काफी विस्तत हो गया है अब ऐसी संस्थाओं का अंकेक्षण भी कराया जाने लगा है जो व्यापार नहीं करती जैसे–क्लब, कालेज आदि।

५ण **निश्चित अवधि**– अंकेक्षक का कार्य किसी निश्चित अवधि के लेखों के सम्बन्ध में जाँच–पड़ताल करके रिपोर्ट प्रस्तुत करना है। व्यापारिक संस्थाओं में यह अवधि प्रायः एक वर्ष होती है। इस अवधि के सम्बन्ध में बनाये गए लाभ–हानि खाते की जाँच करके यह पता लगाना कि इसमें दर्शाया गया लाभ–हानि खाते की जाँच करके यह पता लगाना कि इसमें दर्शाया गया लाभ–हानि सही है अथवा नहीं।

6. **प्रमाणक एवं प्रपत्र**– अंकेक्षक उन प्रमाणकों को देखता है, जिनके आधार पर लेखा–पुस्तकों में लेखे किए गए हैं। इसके अतिरिक्त वह संस्था का उद्देश्य पत्र–व्यवहार, मिनट–बुक, अन्तर्नियम तथा अन्य कोई भी प्रपत्र, जो वह जाँच के सम्बन्ध में निरीक्षण, मिलान, परीक्षण, पुनर्निरीक्षण आदि करने हेतु आवश्यक समझता है, देख सकता है।

7. **सूचना एवं स्पष्टीकरण**– यदि अंकेक्षण प्रमाणक या अन्य प्रपत्र से संतुष्ट नहीं हो सका तो वह अपनी पूर्ण जानकारी हेतु आवश्यक सूचना माँग सकता है तथा अस्पष्ट बातों का स्पष्टीकरण प्राप्त कर सकता है।

8. **नियमानुकूल**– संस्था से सम्बन्धित विशेष अधिनियम तथा देश के विधान के नियमानुकूल संस्था का हिसाब–किताब रखा गया है या नहीं, अंकेक्षण को अपनी रिपोर्ट में इस बात का प्रमाण–पत्र देना पड़ता है।

9. **सही एवं वास्तविक आर्थिक स्थिति**– निश्चित अवधि के अन्तिम दिन संस्था के चिट्ठे में जो सम्पत्तियाँ एवं दायित्व दिखलाये गए हैं, उनका धन सही है या नहीं। अर्थात उक्त तिथि को संस्था का चिट्ठा संस्था की सही एवं वास्तविक आर्थिक स्थिति दिखलाता है या नहीं।

अंकेक्षण की आवश्यकता

(Necessity of Auditing)

अंकेक्षण, लेखांकन सम्बन्धी प्रपत्रों की जाँच करना है ताकि इनकी सत्यता, पूर्णता एवं नियमानुकूलता का ज्ञान प्राप्त किया जा सके। यह जाँच उस समय और भी अधिक आवश्यक हो जाती है जबकि लेखांकन स्वामी की ओर से अन्य व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। आज बैंकिंग सुविधाओं में वद्धि तथा संवादवाहन के नए–नए साधनों ने विनियोजन तथा व्यवसाय के क्षेत्र को बढ़ा दिया है। अतः स्वाभाविक है कि विनियोजक (Investor) अपने विनियोजन की सुरक्षा चाहेगा। इस उद्देश्य पूर्ति के लिए खातों की विधिवत् जाँच होनी आवश्यक है। संयुक्त पूँजी कम्पनियों में जहाँ अंशधारी एक विस्तत क्षेत्र में फैले रहते हैं और व्यवसाय के वास्तविक संचालन में हिस्सा नहीं लेते, खातों की जाँच का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। ऐसी परिस्थितियों में अंशधारियों को इस बात का विश्वास दिलाना आवश्यक है कि उनकी पूँजी सुरक्षित है। यही नहीं, उन्हें यह भी बताना होगा कि पूँजी का नियन्त्रण करने वाले प्रबन्धकों ने जो खाते प्रस्तुत किये हैं वे सत्य तथा ठीक हैं। अंशधारियों के लिए कम्पनी के खातों की स्वयं जाँच करना सम्भव नहीं है। अतः वे एक ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति करते है जो उनकी ओर से खातों की स्वयं जाँच कर सके। प्रारम्भ में अंशधारी अपने में से ही एक ऐसे व्यक्ति को इस कार्य के लिए नियुक्त कर देते थे जिसे प्रायः लेखाकर्म (Accountacy) का तकनीकी ज्ञान नहीं होता था। परन्तु एक प्रभावशाली जाँच के लिए पेशेवर लेखपालों (Accontants) को नियुक्त करने की प्रणाली का विकास हुआ।

पुस्तपालन, लेखाकर्म, अंकेक्षण और अनुसंधान में विभिन्नता

(Difference Between Book-keeping, Accountacy, Auditing and Investigation)

पुस्तपालन

(Book-keeping)

व्यवहार के सभी सौदों को संस्था की प्रारम्भिक लेखा–पुस्तकों (रोकड़, जर्नल, विक्रय–बही, क्रय–बही, बिल देय–बही तथा बिल प्राप्य–बही आदि) में प्रविष्टि करना, खाता–बही में इन प्रविष्टियों की खतौनी करना तथा खातों का योग लगाकर शेष निकालना पुस्तपालन के क्षेत्र में आते हैं। यह कार्य प्रायः छोटे लिपिकों (Junior Clerk) के सुपुर्द किया जाता है, क्योंकि इसे करने हेतु लेखाकर्म के बड़े ज्ञान की आवश्यकता नहीं पड़ती है।उन्नतिशील देशों–अमरीका, इग्लैंड आदि में तो इस कार्य को करने हेतु मशीन का प्रयोग होने लगा है।

लेखाकर्म

(Accountancy)

प्रारम्भिक लेखा–पुस्तकों की जाँच करके खातों के शेषों के आधार पर तलपट तैयार करना, आवश्यक समायोजन तथा भूल सुधार की प्रविष्टियाँ करना, लाभ–हानि खाता तथा चिट्ठा बनाना और इनसे सम्बन्धित अन्य विवरण तैयार

करना लेखाकर्म के अंग हैं। संक्षेप में, यह सभी कार्य सारांश (Summary) तथा विश्लेषण (Analysis) करने की प्रक्रिया है। सारांश अर्थात तलपट और फिर इसका विश्लेषण अन्तिम खाते तैयार करके किया जाता है। लेखापाल एक सुशिक्षित व्यक्ति होता है जो पुस्तपालन के कार्य को भली प्रकार से समझता है। लेखापाल अन्तिम खाते लनैयार करता है तथा अंकेक्षण इन अन्तिम खातों का तर्कपूर्ण अध्ययप करता है।

अंकेक्षण (Auditing)- पुस्तपालन एवं लेखाकर्म के अन्तर्गत किये गये कार्यों कि विस्तत तथा आलोचनात्मक जाँच को अंकेक्षण कहते हैं। यह जाँच लेखों की सत्यता, वास्तविकता तथा नियमानुकूलता ज्ञात करने के लिए लेखों, प्रपत्रों, प्रमाणकों, सूचनाओं तथा स्पष्टीकरण के आधार पर की जाती है। इसका उद्देश्य संस्था की सही एवं वास्तविक स्थिति ज्ञात करना है। ध्यान रहे कि अंकेक्षक को अपनी रिपोर्ट देनी होती है और यह स्पष्ट करना होता है कि संस्था का लाभ–हानि खाता तथा चिट्ठा उसकी स्थिति का ठीक–ठाक एवं सही रूप प्रस्तुत करता है अथवा नहीं।

अतः एक अंकेक्ष्ण को लेखाकर्म के सिद्धातों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। इसी कारण उसका चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट होना आवश्यक है। उसे अपनी निष्पक्ष राय देनी होती है।

अनुसंधान (Investigation)-कभी–कभी विद्यार्थी को यह गलत धारणा बना लेते हैं कि अंकेक्षण तथा अनुसंधान एक ही हैं। अनुसंधान किसी व्यापारिक संस्थान की आर्थिक स्थिति के वास्तविक स्वरूप को मालूम करने के लिए जाता है। इसका उद्देश्य प्रायः संस्था की लाभोपार्जन शक्ति का पता लगाना तथा छल–कपट की छानबीन करना है।

अंकेक्षण के उद्देश्य

(Objective of Auditing)

आधुनिक युग में जबकि व्यापार बड़े पैमाने पर हो रहा है अंकेक्षण का महत्व बहुत बढ़ गया है। इस महत्व के कारण ही आजकल अंकेक्षण की आवश्यकता बहुत अधिक प्रतीत होने लगी है। अंकेक्षण का प्रमुख उद्देश्य यह पता लगाना है कि किसी संस्था विशेष के लेखे उसकी आर्थिक स्थिति तथा लाभ–हानि का सच्चा तथा उचित प्रदर्शन करते हैं या नहीं।

1. मुख्य उद्देश्य– उद्देश्य का प्रमुख उद्देश्य व्यापारिक लेखों की सत्यता की जाँच व यह मालूम करना है कि लेखे विधानानुसार ही बनाए गए हैं और वे व्यापार की सही व उचित (True and fair) स्थिति का प्रदर्शन करते हैं। इस प्रकार मुख्य उद्देश्य के अन्दर हिसाब–किताब की सत्यता, पूर्णता तथा नियमानुकूलता का ज्ञान प्राप्त करना आता है और यही तीनों बातें अंकेक्षण को अपनी रिपोर्ट में देनी होती हैं।
2. सहायक उद्देश्य–उपरोक्त मुख्य उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब अंकेक्षण के कुछ सहायक उद्देश्य पूरे हों, अर्थात् इस बात की जाँच की जाए कि कोई छल–कपट तो नहीं हुआ है तथा हिसाब–किताब में कोई अशुद्धि तो नहीं है। अतएवं अंकेक्षण के सहायक उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

त्रुटियों को ढूढ़ना (Detection of Errors)

अधिकतर अशुद्धियाँ लापरवाही या अज्ञानता के कारण होती हैं। परन्तु कभी–कभी बारीकी से जाँच करने पर पता चलता है कि कुछ अशुद्धियां जान–बूझकर छल–कपट करने के उद्देश्य से की जाती हैं। ऐसी अशुद्धियों का प्रभाव संस्था के लाभ–हानि खाते तथा चिट्ठे की सत्यता एवं वास्तविकता पर पड़ता है, जो कि अंकेक्षण का मुख्य उद्देश्य है। अतः अंकेक्षण की अशुद्धियों की अच्छी तरह जाँच पड़ताल करनी चाहिए।

1. **भूल की अशुद्धियाँ (Errors of Omision)**: जब कोई लेन–देन प्रारम्भिक लेखों की पुस्तकों में लिखने से बिल्कुल ही छूट जाता है, तो उसे छूट की अशुद्धि (Errors of Omision) कहते हैं अर्थात् न तो लेख रोचनामचे के किया गया हो और न ही उसकी खतौनी खाता बही में कोई गई हो तो तलपट के मिलान पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि वह लेखा कहीं भी नहीं किया गया है। दोनों पक्षों का योग मिल जाने पर भी अशुद्धियाँ बनी रहेंगी।
2. **लेख की अशुद्धियाँ (Errors of Commission):** ये त्रुटियाँ लेखा पुस्तकों में गलत लेखा करने से होती हैं। इसके अन्तर्गत गलत लेखा करना, जोड़ लगाना, खतियाना, गणना करना तथा एक पष्ठ से दूसरे पष्ठ पर जोड़ या शेष का गलत ले जाना आदि हैं, जैसे–4,1000 रूपयें से लिखा जाए, लेखे की पुस्तकों का जोड़ गलत लगना आदि सम्मिलित हैं। प्रायः ये गलतियाँ तलपट के द्वारा प्रकट हो जाती हैं।

3ण **क्षतिपूरक अशुद्धियाँ (Compensating Errors):** ये ऐसी अशुद्धियाँ हैं जो किसी खाते की ओर हो जाती हैं। परन्तु उतनी ही रकम की किसी दूसरे खाते की दूसरी ओर एक ही या कई एक अशुद्धियाँ के हो जाने से उनका प्रभाव समाप्त हो जाता है। जैसे नाम खाते में 22५ रूपये नाम करने के स्थान पर केवल 2५ रूपये नाम किये गये और धनश्याम के खातें में 62५ रूपये जमा करने के स्थान पर केवल 42५ रूपये जमा किये गए। इस प्रकार एक खाते के नाम पक्ष में 200 रूपये कम लिखे गए और दूसरे खाते में जमा पक्ष में 200 रूपये कम लिखे गए। ऐसी अशुद्धियाँ को क्षतिपूर्ति अशुद्धियाँ कहते हैं अर्थात् एक की कमी दूसरी पूरी कर देती हैं। ऐसी अशुद्धियाँ होने पर भी तलपट मिल जाता है।

4ण **सैद्धान्तिक अशुद्धियाँ (Errors of Principle):** ये वे अशुद्धियाँ हैं जो दोहरा लेखा प्रणाली का ठीक ज्ञान न होने तथा ठीक न समझने के कारण हो जाती है। उदाहरणतः एक व्यक्तिगत खाते की रकम व्यक्तिगत खाते में लिखने की बजाय वास्तविक खाते में लिखने की बजाय अवास्तविक खातें में या अवास्तविक खातें मे लिखने की बजाय किसी अन्य खाते में लिखी जाए। कहने का तात्पर्य है कि जब कोई रकम सही खाते में न लिखकर किसी अन्य खाते में लिखी जाए तो ऐसी अशुद्धियों का Errors of Principle कहते हैं।

५ण **दुबारा लिखी जाने वाली त्रुटियाँ (Errors of Duplication):** ये त्रुटियाँ प्रायः उस समय उदय होती है जब कोई लेनदेन प्रारम्भिक पुस्तकों में दोबारा लिखा जाता है तथा खाता बही में भी दो बार खाता दिया जाता है। जैसे मान लो राम से 300 रूपये प्राप्त हुए और इसे पुस्तकों में दो बार लिख दिया जाए और दो ही बाद राम के खाते में खता दिया जाए, ऐसी त्रुटि असावधानी के कारण हो जाया करती है। इन त्रुटियों का तलपट के मिलान पर कोई असर नहीं पड़ता। अंकेक्षक ऐसी त्रुटियों को नैत्यक जाँच (Routine checking) द्वारा ही मालूम कर सकता है।

कपट को ढूँढना

(Detection of Fraud)

यदि जान–बूझकर कोई कार्य किया जाए, जिसके फलस्वरूप संस्था को हानि पहुँचती हो, तो इसे छल–कपट कहते हैं। छल–कपट होशियार तथा जालसाज लोगों के द्वारा किया जाता है। इसका पता लगाने के लिए बड़ी चतुराई तथा बुद्धिमानी से कार्य करना पड़ता है। अंकेक्षक को इस बात का ज्ञान होना आवश्यक है कि छल–कपट कितने प्रकार का हो सकता है। तभी वह इन सभी संभावित छल–कपटों को ध्यान में रखते हुए अंकेक्षण करेगा। छल–कपट निम्नलिखित प्रकार का होता है–

वाणिज्य सम्बन्धी कपट

(Commercial Fraud)

कपट कई प्रकार से किए जा सकते हैं किन्तु जो कपट व्यवसाय के सम्बन्ध में किये जाते हैं वे वाणिज्य सम्बन्धी कपट कहलाते हैं। ये कपट दो प्रकार के हो सकते हैं–(i) मालिक की राय से किए जाने वाले कपट–इसके अन्तर्गत हिसाब–किताब में गड़बड़ की जाती है। (ii) बिना मालिक की राय के किए जाने वाले कपट, जैसे रोकड़ का गबन और माल का गबन आदि।

1. **मालिक की राय से किए जाने वाले कपट हिसाब-किताब में गड़बड़ी करना (Manipulation of Accounts):** यह एक ऐसा कपट है जिसमें व्यापारिक लेन–देनों को हिसाब–किताब की पुस्तकों में इस प्रकार गलत तरीके से लिखा जाता है जिससे कि वे व्यापारी की सही आर्थिक दशा का चित्रण न कर सकें। इस प्रकार के कपट का पता बहुत गहन जाँच से लगता है, सरकारी निगाह डालने पर ऐसे कपट पकड़ में नहीं आ पाते हैं। इस प्रकार का कपट संस्था से स्वामी, प्रबन्धक, संचालक अथवा अन्य उत्तरदायी अधिकारियों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार के कपट करने का मुख्य उद्देश्य निजी स्वार्थों की पूर्ति करना होता है।

2. **मालिक की राय के बिना किए जाने वाले कपट**

   (i) रोकड़ का गबनः चोरी करने वाले को अधिकतम रूचि रोकड़ के गबन में होती है। दूसरे रोकड़ को व्यापार से बाहर ले जाना बहुत ही सरल है, द्वार पर खड़ा चौकीदार रोकड़ के ले जाने की जाँच नहीं करता। अतः व्यवसायिक संस्थाओं में रोकड़ का काम बहुत ही विश्वसनीय व्यक्तियों को दिया जाता है फिर भी कुछ गबन हो ही जाता है। रोकड़ के गबन पर नियंत्रण रखने के लिए संस्था आंतरिक निरीक्षण (Internal check) बहुत ही उच्चकोटि का होना चाहिए।

(ii) माल आदि का गबन (*Misappropriation of Goods etc.*): प्रायः देखा जाता है कि व्यापारिक संस्थाओं के मालिक जितना ध्यान धन के गबन की ओर देते हैं उतना माल के गबन की ओर नहीं देते हैं माल को गबन अथवा अनुचित प्रयोग उन संस्थाओं में अधिक होता है जहाँ अधिक मूल्यवान तथा आकार में छोटा होता है।

त्रुटियों तथा छल-कपट को रोकना

(Prevention of Errors and Fraud)

अंकेक्षण त्रुटियों तथा छल–कपट को पूर्णतया रोक नहीं सकता है, परन्तु उसकी जाँच के भय के कारण इनमें कमी अवश्य हो जाती है। अतः यह आवश्यक है कि अंकेक्षक उन समस्त बेईमानियों एवं गड़बड़ियों को ध्यान में रखें, जिनके कारण खाते अशुद्ध कर दिये जाते हैं। उसे तर्कपूर्ण प्रश्न करने चाहिए और खातों का अन्वेषण उचित रूप से करना चाहिए। त्रुटियों एवं कपट को कम करने के लिए आन्तरिक निरीक्षण की प्रथा अत्यंत लाभदायक हो सकती है।

वास्तव में त्रुटियों एवं छल–कपट को रोकना व्यापार के कर्मचारियों की कार्यक्षमता तथा ईमानदारी पर निर्भर होतीहै, परन्तु फिर भी अंकेक्षक ऐसे सुझाव दे सकता है जिनके कारण इस प्रकार की भूलें कम हो जाएं। यद्यपि कपट का पता लगाया जा सकता है तो भी इस प्रकार का अवसर नहीं आने देना चाहिए कि कोई कर्मचारी कपट कर सके, क्योंकि इलाज करने की अपेक्षा बचाव कर लेना अधिक अच्छा होता है। (Prevention is better than cure)। इसी उद्देश्य से अंकेक्षण कराया जाता है। कुछ कपट बड़ी चतुराई से सोच–समझकर तथा सफाई से किये जाते हैं, जिनका पता लगाने में कठिनाई होती है।

अन्य उद्देश्य

(Other objects)

इस उद्देश्य के अन्तर्गत अंकेक्षण के उद्देश्य आते हैं जो वास्तव में परोक्ष होते हैं। कभी–कभी मालिक अपने यहाँ कर्मचारियों में सुधार की दष्टि से भी अंकेक्षण कराता है। इस प्रकार के उद्देश्यों की सुविधा की दष्टि से अन्य उद्देश्यो के शीर्षकों में रखा जाता है। श्रेणी में आने वाले उद्देश्यों का वर्णन निम्नाकिंत है–

1. **कर्मचारियों पर नैतिक प्रभाव डालना (Moral Effects on Employees):** अंकेक्षक का एक उद्देश्य यह भी है कि अंकेक्षण के आने से कर्मचारियों पर नैतिक प्रभाव पड़ेगा, जिसके फलस्वरूप त्रुटियाँ और कपट कम होगें तथा कर्मचारियों में सत्यता एवं ईमानदारी से कार्य करने की आदत पड़ेगी और इस प्रकार भविष्य में कार्य सुचारू रूप से और सरलतापूर्वक चलाया जा सकेगा। वास्तव में यदि कर्मचारियों का नैतिक उत्थान हो जाये, तो त्रुटियाँ तथा छल–कपट होंगे ही नहीं और अंकेक्षण का कार्य भी बहुत हल्का हो जाएगा।
2. **सरकारी अधिकारियों को संतुष्ट करना (Satisfaction to the Government Official):** किसी संस्था के हिसाब–किताब का अंकेक्षण होने के पश्चात् प्रायः यही समझा जाता है कि हिसाब–किताब उस अवधि से सम्बन्धित अंकेक्षण होने के की रिपोर्ट के अनुसार है। अर्थात् यदि अंकेक्षक अपनी रिपोर्ट में कोई भी विपरीत बात न लिखते हुए यह प्रमाणित कर देता है कि संस्था का लाभ–हानि खाता सम्बन्धित अवधि के सम्बन्ध में ठीक है तथा चिट्ठा उक्त अवधि की अन्तिम तिथि की संस्था की सही एवं वास्तविक आर्थिक स्थिति प्रकट करता है, तो किसी भी सरकारी विभाग का अधिकारी उस हिसाब–किताब पर शीघ्रतापूर्वक विश्वास कर लेता है और छान–बीन करने का प्रयत्न नहीं करता क्योंकि अंकेक्षण को एक योग्य, निष्पक्ष तथा ईमानदार व्यक्ति समझा जाता है।
3ण **वैधानिक आवश्यकताओं को पूरा करना (To fulfill the Legal Requirement):** कम्पनी अधिनियम द्वारा कम्पनियों के लेखाकर्म का अंकेक्षण कराना आवश्यक कर दिया गया है। अतः कम्पनी के लखाकर्म के लेखाकर्म के अंकेक्षण का उद्देश्य कम्पनी अधिनियम की अंकेक्षण सम्बन्धि व्यवस्थाओं का पालन करना भी है। आजकल तो साझेदारी फर्म तथा सरकारी संस्थाएं भी अपनी आर्थिक स्थिति ज्ञात कराने के लिए अंकेक्षण कराती है।

अंकेक्षण का क्षेत्र
(Scope of Audit)

अंकेक्षण हिसाब–किताब की पुस्तकों की गहन जाँच है। पुस्तकों की जाँच करने वाले एक निष्पक्ष अंकेक्षक को हिसाब–किताब तैयार करने में की गई अशुद्धियों का पता चलाना होता है और आर्थिक एवं वित्तीय लेखों की सत्यता को प्रमाणित करना होता है यह निश्चित है कि यदि सत्यापन ठीक प्रकार से न किया जाए तो लेखों के परिणामों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। इसी कारण नियमित अंकेक्षण की विधि उत्तम कही जाती है। हिसाब–किताब की अनियमिततायें एवं अशुद्धियाँ विभिन्न प्रकार की हो सकती है तथा उनके सम्पन्न होने के कारण भी बहुत से हो सकते हैं। कुछ भी हो, अंकेक्षक का यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि वह इन अनियमितताओं को प्रकाश में लाये।

प्राचीनकाल में अंकेक्षक का क्षेत्र रोकड़ बही की जाँच तक ही सीमित था, क्योंकि सौदे तथा लेन–देन प्रायः नकद हुआ करते थे। परन्तु वर्तमानकाल में सौदे बहुत बढ़ गये हैं, उधार में लेन–देन होने लगा है, व्यापार तथा यातायात में पर्याप्त उन्नति हुई है, श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा है और उद्योग–धन्धे एकाकी व्यापारी तथा साझेदारी के साथ–साथ बड़ी–बड़ी कम्पनियों द्वारा भी चलाये जा रहे हैं। अतः अंकेक्षक का क्षेत्र बहुत विस्तत हो गया है।

अंकेक्षक के लाभ

कम्पनी विधान के अन्तर्गत कम्पनियों के अंकेक्षण को अनिवार्य बना दिया गया है इससे स्पष्ट है कि अंकेक्षण का महत्व केवल कम्पनी के लिए नहीं हैं बल्कि प्रत्येक व्यवसाय के लिए इसका महत्व है। व्यवहार में देखा जाता है कि ऐसे व्यवसायी भी जिनके लिए अंकेक्षण कराना अनिवार्य नहीं है अपने खातों का अंकेक्षण कराते हैं। अंकेक्षण के विभिन्न लाभ निम्न प्रकार हैंः–

अंकेक्षण के प्रमुख लाभ तो वही है जो उद्देश्यों से बताए गए हैं। इसके अतिरिक्त इस के सामान्य लाभ निम्नलिखित हैः–

1. **उचित एवं विश्वसनीय लेखों का होनाः** अंकेक्षक के द्वारा हिसाब–किताब को लेखाकंन के सिद्धान्तों के अनुसार रखा जाता है तथा अंकेक्षण के डर से लेखा पुस्तकें उचित व ठीक ढंग से रखी जाती हैं।
2. व्यापार की सही स्थिति का ज्ञानः अंकेक्षण द्वारा सामान्यत त्रुटियाँ व कपट पकड़ जाते हैं जिससे संस्था का लाभ–हानि खाता व चिट्ठा संस्था की सही दशा का चित्रण करता है।
3. **अनुशासन बनाए रखनाः** समय–समय पर अंकेक्षक होने से कर्मचारी अनुशासन बनाए रखते हैं और प्रत्येक कार्य को विधिपूर्वक करते हैं जिससे कि अंकेक्षक उन के कार्यों में दोष न निकाल सके।
4. व्यापार के विक्रय में सहायकः व्यापार के विक्रय के समय अंकेक्षण खातों द्वारा विक्रय मूल्य निकालना बड़ा ही विश्वसनीय व आसान होता है और क्रेता को क्रय करने में कोई हिचक नहीं होती।
5. **भ्रष्टाचार समाप्त करनाः** पैसा भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है। यदि अंकेक्षण न हो तो कर्मचारी पैसे व माल का अधिक गबन कर सकते हैं किन्तु अंकक्षेण के डर से हिम्मत नहीं होती कि वे गबन करने का साहस कर सकें। इस प्रकार भ्रष्टाचार समाप्त होता है।
6. **लेखों में सुधार के सुझाव देनाः** समय–समय पर अंकेक्षण अपने नियोक्ता को पुस्तपालन व लेखांकन के सम्बन्ध में सुझाव देता रहता है जिससे कि त्रुटियाँ व गबन न हो सके। इसके अतिरिक्त अंकेक्षक आर्थिक व अन्य मामलों पर भी सलाह देता रहता है।
7. **कर्मचारियों व प्रबन्धकों को सावधान करनाः** अंकेक्षण के डर से कर्मचारी व प्रबन्धक सावधान रहते हैं और कोई भी गलत कार्य या लापरवाही करने का साहस नहीं कर पाते। इससे कर्मचारियों की कार्यक्षमता में वद्धि होती है।
8. **ख्याति का बढ़नाः** जो संस्थाएँ अपने लेखों का अंकेक्षण कराती है उनक लेखों पर जनता को विश्वास होता है जिससे संस्था की ख्याति बढ़ जाती है। ख्याति बढ़ने से संस्था को ऋण आदि प्राप्त करने में बहुत सुविधा रहती है।
9. **सच्चाई एवं ईमानदारी का प्रमाण-पत्रः** अंकेक्षक एक सच्चा व ईमानदार व्यक्ति होता है। यह अपनी रिपोर्ट द्वारा दूसरे व्यक्तियों को यह विश्वास दिलाता है कि संस्था के लेखे सही एवं उचित हैं। अंकेक्षक संस्था के लेखों की सच्चाई व ईमानदारी का प्रमाण–पत्र देकर उसकी साख को बढ़ाता है।

अंकेक्षण का वर्गीकरण

(Classification of Auditing)

1. **ऐच्छिक अंकेक्षणः (Voluntary Audit):** ऐच्छिक अंकेक्षण से तात्पर्य एक ऐसे अंकेक्षण से है जो पूर्णतः विनियोक्ता की इचछा पर निर्भर करता है तथा जिसे करवाने के लिए वह किसी विधान द्वारा बाध्य नहीं है। ऐसे अंकेक्षण को निजी अंकेक्षण के नाम से भी पुकारते है। उदाहरण के लिए एकाकी व्यापार, साझेदारी तथा अन्य व्यक्ति व संस्थाएँ।
2. **वैधानिक अंकेक्षण (Statutory Audit):** जिस संस्था के हिसाब–किताब का अंकेक्षण अनिवार्यतः किसी विधान के अन्तर्गत कराया जाता है उसे वैधानिक अंकेक्षण कहते हैं जैसे कम्पनी, सार्वजनिक ट्रस्ट, बैंक आदि का अंकेक्षण। इस प्रकार के अंकेक्षण में अंकेक्षण का कार्यक्षेत्र अंकेक्षण की योग्यता व अयोग्यता, अंकेक्षण के अधिकार एवं कर्त्तव्य विधान द्वारा निश्चित किए जाते है जिन्हें आपसी समझौते द्वारा बढ़ाया तो जा सकता है किन्तु कम नहीं किया जा सकता।

सरकारी अंकेक्षण
(Government Audit)

सरकार अपने विभागों तथा अपने द्वारा संचालित अन्य संस्थाओं के हिसाब–किताब की जाँच करवाती है। इसे सरकारी अंकेक्षण कहते है। भारत में राष्ट्रपति द्वारा कम्प्ट्रोलर एण्ड आडिटर जनरल (Comptroller and Auditor General) की नियुक्ति की जाती है, जो अपने कर्मचारियों द्वारा केन्द्र सरकार के विभिन्न विभागों तथा संस्था के लेखों की जाँच कराता है। अंकेक्षक की भाँति जाँच के बाद सरकार के समझ रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है। इसके अतिक्ति राज्य सरकारों के भी अपने अंकेक्षण विभाग होते है, जो सम्बनिधत राज्य सरकार के विभागों तथा संस्थाओं के लेखों की जाँच करके राज्य सरकार को रिपोर्ट देते है। भारत के राष्ट्रपति ने 28 मार्च 1958 को एक विशेष आदेश निकालकर भारत के कम्प्ट्रोलर और आडीटर जनरल की सीमा को कश्मीर तक बढ़ा दिया है, अर्थात् अब कश्मीर भी कम्प्ट्रोलर और आडीटर के कार्यक्षेत्र (Jurisdiction) में आ गया है।

व्यावहारिक अंकेक्षण

(Practical Audit)

व्यावहारिक अंकेक्षण को सुविधा की दष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है–(अ) आन्तरिक अंकेक्षण (ब) बाह्य अंकेक्षण।

(a) **आतरिक अंकेक्षण (Internal Audit):** आंतरिक अंकेक्षण से तात्पर्य ऐसे अंकेक्षण से है जिसमें व्यवसाय के लेखों की जाँच एक ऐसे व्यक्ति व उसके स्टाफ द्वारा की जाती है जो स्वंय उस व्यवसाय की सेवा में नियुक्त है। इस प्रकार के अंकेक्षण उस संस्था में अंकेक्षक के रूप में कार्य न करके एक लेखापन (Accountant) के रूप में कार्य करते हैं। इस लेखों की जांचकर उनमें पाई जाने वाली असत्यता को दूर करना तथा आन्तरिक निरीक्षण की प्रथा को प्रभावशाली बनाना है।

(b) **बाह्य अंकेक्षण (External Audit):**बाह्य अंकेक्षण का अर्थ ऐसे अंकेक्षण से है जिसमें किसी व्यवसाय के लेखों की जाँच ऐसे व्यक्तियों से कराई जाती है जो ''व्यावसायिक (Professional) व्यक्तियों के रूप में संगठित, स्वतन्त्र, सार्वजनिक लेखापाल है।''

इस प्रकार के अंकेक्षकों के पास सी0 ए0 (C.A.) की डिग्री होना आवश्यक है तथा ये व्यावसायिक व्यक्तियों के रूप में संगठित होते हैं। जैसे भारत में इन्स्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स द्वारा अंकक्षक संगठित है। ये अंकेक्षक स्वतन्त्र होते है तथा जिन संस्थाओं का अंकेक्षण करते हैं उनमें इनका हित नहीं होता। इनकी सेवाएँ सार्वजनिक होती है तथा ये अपनी सेवाओं के बदले में उचित फीस लेते हैं। इस प्रकार अंकेक्षकों को अंकेक्षण के पश्चात् नियोक्ता को जाँच की रिपोर्ट भी देनी होती है।

बाह्य अंकेक्षण कई प्रकार का होता है जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैः–

1. **पूर्ण अंकेक्षण (Complete Audit):** यह वह अंकेक्षण होता है जिसके अन्दर समस्त लेखा पुस्तकें, प्रमाण–पत्र खाते जोड़ घटाना आदि सभी व्यवहारों का परिक्षण किया जाता है। इस प्रकार का अंकेक्षण केवल ऐसी संस्थाओं में ही हो सकता है जो छोटी हों। बड़े पैमाने के व्यवसायों में इस प्रकार का अंकेक्षण सम्भव नहीं है। किन्तु ऐसे व्यपारों में भी पूर्ण अंकेक्षण आवश्यक है जिनका अभी तक अंकेक्षण न हुआ हों।

2. **आंशिक अंकेक्षण (Partial Audit):** यदि नियोक्ता सम्पूर्ण खातों की जाँच न करवाकर केवल किसी विशेष भाग का ही अंकेक्षण करवाता है तो इस प्रकार के अंकेक्षण को आंशिक कहते है। जैसे–कवल क्रय–विक्रय बही का अंकेक्षण कराना। इस प्रकार के अंकेक्षण की रिपोर्ट देते समय अंकेक्षक इस बात को स्पष्ट कर देता है यह रिपोर्ट केवल एक निश्चित भाग के सम्बन्ध में है। यदि अंकेक्षक ऐसा नहीं लिखता तो जो भी व्यक्ति अंकेक्षक की रिपोर्ट पर संस्था से अनुबन्ध करता है उसके लिए अंकेक्षक उत्तदायी होता है।

प्रकार

(i) **समयानुसार आंशिक अंकेक्षण**–पूरे व्यापारिक वर्ष की अपेक्षा तीन मास छः मास आदि के हिसाब का अंकेक्षण कराया जाना, समयानुसार आंशिक अंकेक्षण कहलाता है।

(ii) **कार्योनुसार आंशिक अंकेक्षण**– जब समस्त लेखा–पुस्तकों की बजाय केवल रोकड़ बही या अन्य किसी लेखा–पुस्तक का अंकेक्षण कराया जाये, यह कार्योनुसार आंशिक अंकेक्षण कहलाता है।

चालू अंकेक्षण Continous Audit : ''चालू अंकेक्षण से आशय ऐसे अंकेक्षण से है जिसके अन्दर अंकेक्षण या उसका स्टाफ वर्ष भर हिसाब–किताब की जाँच करता रहता है या निश्चित अथवा किसी अनिश्चित समय के बाद व्यापार काल के मध्य हिसाब–किताब का निरीक्षण करता है।''

डब्लू0 डब्लू0 बिग के अनुसार– '' चालू अंकेक्षण वह है जिसमें अंकेक्षक का स्टाफ वर्ष–भर खातों की जाँच में लगा रहता है।'' चालू अंकेक्षण की उपयोगिता का क्षेत्र–अंकेक्षण निम्नलिखित परिस्थितियों में बहुत उपयोगी है–

1. अधिक मात्रा में सौदे–जिन संस्थाओं में व्यापारिक सौदे बड़ी मात्रा में होते है वहाँ पर साथ–साथ इनकी जाँच कराते रहने से अशुद्धि तथा छल–कपट की सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं।
2. अपर्याप्त आन्तरिक निरीक्षण–यदि संस्था की आन्तरिक निरीक्षण प्रणाली संतोषप्रद नहीं है, तो चालू अंकेक्षण के द्वारा जाँच कार्य साथ–साथ होता रहता है।
3ण अन्तिम खाते शीघ्र बनाना– बैक, कम्पनी तथा बिजली कम्पनी आदि में अन्तिम खातों को तैयार करके शीघ्र प्रस्तुत करना पड़ता है। चालू अंकेक्षण से यह सम्भव हो जाता है।
4ण गहन जाँच की आवश्यकता– यदि किसी कारणवश गहन जाँच करवानी आवश्यक हो, चालू अंकेक्षण अपनाकर करवाई की जा सकती है।

Periodical Audit

सामायिक अंकेक्षण (Annual Audit or Final Audit):- सामायिक अंकेक्षण उसे कहते है जब वित्तीय वर्ष के अन्त में खाते बनकर तैयार हो जाती है और अंकेक्षक आकर लेखों का अंकेक्षण करता है और अपना कार्य तभी समाप्त करता है। इस प्रकार का अंकेक्षण वर्ष के अन्त में होता है इसलिए इसे वार्षिक अंकेक्षण (Annual Audit) या अन्तिम अंकेक्षण (Final Audit) भी कहते है। इस अंकेक्षण का एक और नाम चिट्ठा अंकेक्षण (Balance Sheet Audit) भी है क्योंकि इसे चिट्ठा बन जाने के बाद प्रारम्भ किया जाता है। किन्तु अमेरिका में चिट्ठी के अंकेक्षण से ही लिया जाता है।

डी0 पौला के अनुसार–''सामयिक अंकेक्षेण वह है जिसमें अंकेक्षक लेखों की अवधि की समाप्ति तक कार्य को प्रारम्भ नहीं करता है तथा बाद में सम्पूर्ण जाँच को एक ही बार व्यवसायों के लिए उपयुक्त हैः–

सामायिक अंकेक्षण की उपयोगिता का क्षेत्र– सामायिक अंकेक्षण निम्नलिखित विशेषता वाले व्यवसायों के लिए उपयुक्त है।

1. **छोटी संस्थाएँ**- यदि व्यावसायिक इकाई का आकार छोटा है एवं लेन–देन भी कम ही है तो सामायिक अंकेक्षण सबसे अधिक उपयुक्त है।
2. **आंतरिक निरिक्षण की प्रथा संतोषजनक होना**- जिन संस्थाओं में इस बात की शीघ्रता नहीं है कि अन्तिम खाते वर्ष की अन्तिम तिथि पर ही तैयार हो वहाँ पर भी सामायिक अंकेक्षण उचित रहता है।

3ण **अन्तिम खातों की शीघ्रता का न होना**- जिन संस्थाओं में इस बात की शीघ्रता नहीं है कि अन्तिम खाते वर्ष की अन्तिम तिथि पर ही तैयार हों वहाँ पर भी सामायिक अंकेक्षण उचित रहता है।

4ण **अन्तरिम खातों का न बनाया जाना**- जिन संस्थाओं में वर्ष के मध्य में अन्तरिम खाते बनने की आवश्यकता नही पड़ती वहाँ पर भी सामयिक अंकेक्षण उपयुक्त रहता है।

५ण **जहाँ विस्तत एवं गहन जाँच आवश्यक न हो**- जिन संस्थाओं में लेखों की विस्तत एवं गहन जाँच की आवश्यकता नहीं होती वहाँ पर सामयिक अंकेक्षण उपयुक्त रहता है जैसे, एकाकी व्यापार आदि

6. **निपुणता/प्रबन्ध अंकेक्षण(Efficiency/Management Audit):** इसे प्रबन्धकीय अंकेक्षण भी कहते हैं। यह अंकेक्षण का एका सलाहकारी रूप है। व्यवसाय के लिए निर्धारित नीतियों, योजनाओं, नियमों एवं उपनियमों का पालन पूर्णरूप से एवं कार्यक्षमता के साथ किया जा रहा है या नहीं इसकी जाँच करना कार्यक्षमता अंकेक्षण कहा जाता है। इस जाँच के आधार पर यह भी ज्ञात किया जा सकता है कि व्यवसाय की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए नीतियों एवं योजनाओं आदि में क्या परिवर्तन किये जाने चाहिएँ। इससे कर्मचारी की कार्यक्षमता का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

7. **रोकड़ अंकेक्षण (Cash Audit):** यदि कोई संस्था अपने एक विशेष अवधि के केवल रोकड़ के लेन–देनों की जाँच करने के लिए अंकेक्षक की नियुक्ति करती है, तो वह 'रोकड़ का अंकेक्षण' कहलाता है। उसके अन्तर्गत वह आवश्यक प्रमाणों की सहायता से केवल रोकड़वही की जाँच तक सीमित होता है। अतः इसे इस सीमा का उल्लेख अपनी रिपोर्ट मे अवश्य करना चाहिए।

8. **लागत अंकेक्षण (Cost Audit):** लागत लेखों के अंकेक्षण को 'लागत अंकेक्षण' कहा जाता है। लागत लेखों और वित्तीय लेखों (Financial Accounts) में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि लागत लेखों में अलग से अंकेक्षण की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है परन्तु जहाँ लागत लेखे एक विस्तत रूप में एक बड़े पैमाने पर रखे जाते हैं वहाँ यह जानने की आवश्यकता पड़ती है कि इतने बड़े लागत लेखों का होना अनिवार्य है या नहीं और इसके द्वारा दिखाए गए फल ठीक हैं या नहीं। अंकेक्षक को उतनी ही सतर्कता, बुद्धिमानी तथा परिश्रम के साथ कार्य करना चाहिए, जितना कि वह वित्तीय लेखों की जाँच के सम्बन्ध में करता है।

9. **विस्तत अंकेक्षण (Detailed Audit):** विस्तत अंकेक्षण, पूर्ण अंकेक्षण से भिन्न है। विस्तत अंकेक्षण से तात्पर्य है कि पूर्ण अंकेक्षण के अन्तर्गत सभी व्यवहारों अथवा आंशिक अंकेक्षण के अन्तर्गत चुने गए व्यवहारों की अत्यंन्त विस्तत तथा गहन जाँच करना। विस्तत अंकेक्षण साधारणतया किसी विशिष्ट उद्देश्य से किया जाता है।

10. **प्रमाणित अंकेक्षण (Standard Audit):** इसमें कुछ मदों की पूर्ण जाँच एवम् विश्लेषण सम्मिलित है और बाकी मदों की परीक्षण जाँच होती है। इसमें समस्त अंकेक्षण की क्रिया एक सामान्य अंकेक्षण की भाँति होती है। इस प्रकार के अंकेक्षण का वर्णन श्री रोनाल्ड ए0 आयरिश (Ronald A. Irish) ने किया है। उनका कहना है कि जब कभी कुछ विशेष मदों का पूर्ण अंकेक्षण करना हो और शेष पर सरसरी निगाह डालनी हो तो इस प्रकार के अंकेक्षण को 'प्रमाण अंकेक्षण' कहना चाहिए।

11. **मध्य अंकेक्षण या अन्तरिम अंकेक्षण (Interim Audit):** जब किसी वित्तीय वर्ष के बीच में लेखा पुस्तकों का अंकेक्षण उस समय तक की लाभ–हानि व आर्थिक स्थिति को जानने के उद्देश्य से कराया जाता है तो उसे मध्य अंकेक्षण अथवा अन्तरिम अंकेक्षण कहते है। इस प्रकार का अंकेक्षण किसी विशष उद्देश्य की पूर्ति हेतु कराया जाता है। इस प्रकार का अंकेक्षण विशेषकर उन कम्पनियों में करया जाता है जिनको कि अपना वार्षिक लाभांश घोषित करने से पूर्व कुछ मध्य लाभांश (Interim Dividend) घोषित करना पड़ता है। साझेदारी की मत्यु, अवकाश ग्रहण अथवा नए साझी के आने की परिस्थितियों में भी अंकेक्षण की आवश्यकता पड़ती है। अन्तरिम अंकेक्षण सामयिक अंकेक्षण का पूरक होता है। चालू अंकेक्षण से होने वाले लाभ भी काफी सीमा तक मध्य अंकेक्षण द्वारा पूरे कर दिये जाते हैं।

अंकेक्षण की सीमाएँ
(Limitations of Audit)

अंकेक्षक की नियुक्ति हिसाब–किताब की जाँच करके उसके सम्बन्ध में यह प्रमाणित करने के लिए की जाती है कि संस्था के लेखे नियमानुसार बनाए गए हैं तथा लाभ हानि खाता और चिट्ठा संस्था की सही एवं वास्तविक आर्थिक स्थिति प्रकट करते है। अंकेक्षक अपनी पूरी योग्यता, चतुराई तथा उचित सावधानी से अपना कार्य करता है। यदि उसे अंकेक्षण के दौरान किसी विपरित बात का पता नहीं चलता, तो वह लोखों, लाभ–हानि खाना तथा चिट्ठे की सत्यता एवं औचित्यता को प्रमाणित कर देता है।

पूरी कुशलता से जाँच करने के बाद अंकेक्षित हिसाब–किताब में अशुद्धियाँ तथा छल–कपट सामने आने से छूट सकते हैं। अतः अंकेक्षित हिसाब–किताब पर विश्वास करके निर्णय लेने वालों को चाहिए कि अंकेक्षण की सीमाओं को ध्यान में रखें, जो निम्नलिखित हैं–

1. **अंकेक्षण शत-प्रतिशत शुद्धता की गारन्टी नहीं है–** साधारणतया अंकेक्षण कार्य बड़ी संस्थाओं के द्वारा ही कराया जाता है, जिनमें काफी अधिक संख्या में व्यवहार होते है। इन समस्त व्यवहारों की गहन जाँच करना अंकेक्षण के लिए सम्भव नहीं है और न ही समय तथा धन के व्यय के दष्टिकोण से व्यावहारिक है। अतः अंकेक्षण जाँच का सहारा लेता है। परीक्षण जाँच में अशुद्धियाँ तथा कपट सामने जाने से छूट सकते है।

2. **अंकेक्षण से सभी छल-कपट प्रकट होना आवश्यक नहीं हौ–** अंकेक्षक अपनी योगतानुसार उचित सावधानी, चतुराई एवं ईमानदारी से अंकेक्षण करता है। यदि कोई कपट उसके सामने नहीं आता, तो वह लेखों को सत्य प्रमाणित कर देता है। संस्था के उच्च प्रबन्धकों अथवा विश्यासपात्र उच्च कर्मचारियों द्वारा जान बूझकर योजनाबद्ध तीकि से ऐि गए छल–कपट अंकेक्षक की पकड़ में आने से छूट जाते हैं।

3. **अंकेक्षण संस्था के कर्मचारियों की ईमानदारी का प्रमाण नहीं है–** यदि संस्था में आन्तरिक निरिक्षण प्रणाली आपनाई गई है तो एक कर्मचारी द्वारा किए गए कार्य की जाँच दूसरे कर्मचारी द्वारा की जाती है। अंकेक्षक परिक्ष्ण–जाँच का सहारा लेकर, लेखें के सत्य प्रमाणित कर देता है। आन्तरिक निरिक्षण प्रणानी में भी दो या अधिक कर्मचारी मिलकर कपटकर सकते हैं, जो अंकेक्षण के दौरान सामने नहीं आ पाता। अतः अंकेक्षण हो जाने का यह अर्थ नहीं है कि संस्था के कर्मचारियों ने उस अवधि में ईमानदारी से कार्य किया ही है।

4. **अंकेक्षक छोटी बातों पर ध्यान नहीं देता-** अंकेक्षक अत्यन्त छोटे व्यवहारों अथवा संस्था के निम्न श्रेणी के कर्मचारियों ,रा किए एग व्यवहारों पर विशेष ध्यान नहीं देता। वह केवल लाभ–हानी खते तथा चिट्ठे से सम्बान्धित व्यसहारों पर ही पूर्ण ध्यान देता है। अतः यह सम्भव है कि कुछ छोटी–छोटी अनियमितताएँ अंकेक्षण के बावजूद रह जाएँ।

५. **अंकेक्षक व्यवआरें के व्यापारिक औजित्य को नहीं समझाता-** अंकेक्षक व्यवहारों के वैधनिक औचित्य की जाँच करता है। अर्थात व्यवहार वास्तव में हुए हैं, व्यापार से सम्बान्धित हैं, अधिकृत हैं तथा उचित लेखे किए गऐ। अंकेक्षक व्यवहारों के व्यापारिक औचित्य को नहीं समझ पाता क्योंकि वह विभिन्न प्रकार के कार्य करने पाली संस्थाओं के लेखें की जाँच करता है और उन सब व्यपारों के व्याहारें के प्रकृति का ज्ञान उसे होता आवश्यक नहीं है। अर्थात अंकेक्षक वह प्रमाणित नहीं कर सकता कि व्यवहार व्यामारिक दष्टिकोण से उचित है या नहीं।

6. **अंकेक्षक की राय इेश्वरीय घेषणा नहीं होती-** संस्था के हिसाव–किताब के बारे में अंकेक्षक केवल अपनी राय प्रकट करता है। उसके द्वारा लाभ–हानि खाता तथा चिट्ठे के बारे में सही होने की राय देने का यह अर्थ नहीं हो कि यह सक अन्तिम घोषणा है और इस घेषणा के होने पर लेखों में गड़बड़ी नहीं हो सकती।

7. **भारत में अंकेक्षक को व्यावहारिक स्वतंत्रता नहीं है-** वैसे तो अंकेक्षक के अधिकार, कर्त्तव्य तथा दायित्व कम्पनी विधन के द्वारा निश्चित होते है और इनके अनुसार अंकेक्षक को एक स्वतन्त्र व्यक्ति माना गया है। परन्तु व्यवहार में कम्पनी का प्रबन्ध करने वाले व्यक्ति अपने आदपियों को ही कम्पनी का अंकेक्षक नियूक्त कराते है। अतः अंकेक्षक कम्पनी के प्रबन्धकों के प्रभाव में रहता है तथा पूर्णरूप से निष्पक्ष जाँच नहीं कर पता।

अध्याय-10
कम्पनी अंकेक्षक
(Company Auditor)

प्राचीन काल में व्यापार एवं उद्योग बहुत छोटा था जिसके फलस्वरूप स्वामी ही अपने व्यवसाय की व्यवस्था, प्रबन्ध एवं निरीक्षण करने में समर्थ थे। वह कभी भी अपनी इच्छानुसार खातों की जाँच कर लिया करता था। किन्तु आज का व्यापार इतना अधिक विस्तत हो चुका है कि व्यापार के स्वामी को इस बात का भी ज्ञान नहीं है कि उसकी संस्था में कितने कर्मचारी कार्य करते हैं, कौन–कौन व्यक्ति किस–किस प्रकार का कार्य करता है अर्थात् स्थानों पर भिन्न–भिन्न व्यक्ति उसके व्यापार का लेखा–जोखा रख रहे हैं। अतः ऐसी दशा में यह अनिवार्य हो जाता है कि स्वामी अपने पास कोई–न–कोई ऐसा निष्पक्ष व्यक्ति रखे जो उसको विभिन्न व्यवसायों के हिसाब–किताब के बारे में यह सूचना दे कि व्यवसाय का लाभ–हानि खाता व चिट्ठा सत्य तथा ठीक रूप से बनाया जा रहा है। अतः वर्तमान युग में इस कार्य हेतु ही अंकेक्षण शब्द का उदय हुआ, और जो निष्पक्ष व्यक्ति हिसाब–किताब की सत्यता का पता लगाता है उसे अंकेक्षक (Auditor) के नाम से जाता जाता है।

कम्पनी अंकेक्षक की नियुक्ति
(Appointment of Company Auditor)

भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत प्रत्येक कम्पनी के लिए अपने लेखों का अंकेक्षण करना अनिवार्य है। यह अंकेक्षण ''वैधानिक अंकेक्षण'' कहलाता है। जो व्यक्ति इस कार्य के लिए नियुक्त किया जाता है उसे ''वैधानिक अंकेक्षक'' कहते हैं। भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1 अप्रैल 1956 से लागू हुआ। इस अधिनियम की धाराएँ 224 से 233 तक अंकेक्षकों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इस धाराओं में अंकेक्षकों की नियुक्ति, अयोग्यता, पद से हटाना, पारिश्रमिक, अधिकार तथा कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया है।

अंकेक्षक का पारिश्रमिक
(Remuneration of Auditor)

संचालक मंण्डल अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त अंकेक्षक की दशा में अंकेक्षक का पारिश्रमिक संचालक मण्डल अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित किया जा सकता है, तथा अन्य दशाओं में कम्पनी द्वारा साधारण सभा में निर्धारित किया जाएगा अथवा, ऐसी रीति में निर्धारित किया जाएगा जोकि कम्पनी व्यापक सभा में निर्धारित करे।

यदि अंकेक्षक से कुछ अतिरिक्त कार्य जैसे अन्तिम खाने बनाना या आय का विवरण तैयार करने के लिए कहा जाए, तो वह अतिरिक्त पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकारी होगा। यदि कम्पनी ने अंकेक्षक के किसी व्यय का भुगतान किया है तो वह व्यय भी पारिश्रमिक में शामिल कर लिया जाएगा।

अंकेक्षकों की योग्यताएँ एवं अयोग्यताएँ
(Qualifications and Dispualifications of Auditors)

कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 226 के अनुसार कम्पनी अंकेक्षक की योग्यताएँ निम्न होनी चाहिए–

1. किसी व्यक्ति को तब ही अंकेक्षक नियुक्त किया जा सकता है, जबकि वह चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स एक्ट, 1949 के अनुसार सी. ए. (C. A.) हो।

2. एक फर्म भी अंकेक्षक नियुक्त की जा सकती है जबकि उसके सभी साझेदार चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट हों।
3. कुछ दशाओं में, पुराने नियमों के अन्तगर्त, सर्टीफिकेट प्राप्त (Certified Auditor) व्यक्ति भी अंकेक्षण नियुक्त किए जा सकते हैं। केन्द्रीय सरकार इन प्रमाण–पत्रों को रद्द कर सकती है या बढ़ा सकती है।

अयोग्यताएँ (Disqualifications): निम्नलिखित में से कोई भी व्यक्ति कम्पनी का अंकेक्षक नियुक्त किए जाने के योग्य नहीं है–

1. एक समामेलित संस्था (A body Corporate)।
2. कम्पनी का एक अधिकारी अथवा कर्मचारी।
3. ऐसा एक व्यक्ति जोकि कम्पनी के एक अधिकारी अथवा एक कर्मचारी का साझेदार या उनका कर्मचारी है।
4. ऐसा एक व्यक्ति जोकि 1,000 रू. से अधिक रकम के लिए कम्पनी का ऋणी है।
5. ऐसा एक व्यक्ति जोकि एक ऐसी निजी (Private) कम्पनी का संचालक अथवा सदस्य है जो कम्पनी का सचिव या कोषाध्यक्ष है, अथवा ऐसा एक व्यक्ति जो कि ऐसी एक फर्म का साझेदार है जो कम्पनी का सचिव एवं कोषाध्यक्ष है।
6. ऐसा एक व्यक्ति जो किसी ऐसी समामेलित संस्था का संचालक है जो कम्पनी का सचिव एवं कोषाधक्ष है।
7. ऐसा कोई व्यक्ति जो समामेलित संस्था की प्रार्थित पूँजी (Subscribed Capital) के अंकित मूल्य के 5% से अधिक अंशों का मालिक है।

यदि नियुक्ति के बाद अंकेक्षक में उपरोक्त अयोग्यताओं में से कोई भी अयोग्यता आ जाए तो उसका स्थान रिक्त समझा जाएगा।

कम्पनी अंकेक्षक के नियुक्तिकर्ता (धारा 224)

(Appointing Authority of Auditor)

1. कम्पनी के संचालकों द्वारा (By Directors)
2. कम्पनी के अंशधारियों द्वारा (By Shareholders)
3. केन्द्रीय सरकार द्वारा (By Central Government)

1. **कम्पनी के संचालकों द्वारा नियुक्ति** – कम्पनी के प्रथम अंकेक्षक की नियुक्ति संचालक मण्डल द्वारा समामेलन की तिथि से 1 माह के भीतर की जाएगी; और ऐसे अंकेक्षक प्रथम वार्षिक साधारण बैठक के समाप्त होने के समय तक कार्य करेंगे।

   किसी अंकेक्षक का पद आकस्मिक रूप से रिक्त हो जाने की दशा में संचालक मण्डल ऐसे रिक्त स्थान को पूरा कर सकता है। इस प्रकार नियुक्त किया गया अंकेक्षण अगली वार्षिक साधारण सभा के अन्त तक कार्य करता रहेगा। हाँ, यदि यह स्थान किसी अंकेक्षक के त्याग–पत्र देने के कारण रिक्त हुआ है तो उसकी पूर्ति कम्पनी अपनी साधारण सभा में कर सकती है।

2. **प्रत्येक वार्षिक साधारण सभा में नियुक्ति** – यदि संचालक मण्डल कम्पनी के प्रथम अंकेक्षक की नियुक्ति नहीं करते हैं, तो कम्पनी अपनी साधारण सभा में प्रथम अंकेक्षक की नियुक्ति कर सकती है।

   कम्पनी अपनी प्रत्येक वार्षिक साधारण सभा में अंकेक्षक की नियुक्ति करेगी और ऐसे नियुक्त किए गए अंकेक्षक उस सभा के अन्त से अगली वार्षिक साधारण सभा के अन्त तक कम्पनी के अंकेक्षक होंगे। कम्पनी, अंकेक्षक की नियुक्ति सभा के 7 दिन के भीतर, उसकी सूचना प्रत्येक अंकेक्षक को देगी, अवकाश प्राप्त करने वाले अंकेक्षक के लिए ऐसी सूचना देने की आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार नियुक्त अंकेक्षक, कम्पनी से नियुक्ति की सूचना प्राप्त करने से 30 दिन के भीतर ऐसी नियुक्ति को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने की लिखित सूचना रजिस्ट्रार को देगा।

3. **केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्ति** – जब एक वार्षिक साधारण सभा में अंकेक्षक की नियुक्ति नहीं की जाती, जो केद्रीय सरकार रिक्त स्थान को पूरा करने के लिए ऐसी नियुक्ति कर सकती है, जब केन्द्रीय सरकार, द्वारा ऐसी ऐसी नियुक्ति करने के अधिकार का समय हो जाता है, तो कम्पनी को ऐसे समय से 7 दिन के भीतर इस तथ्य की सूचना

केन्द्रीय सरकार को देनी चाहिए, और यदि कम्पनी ऐसा नहीं करती, तो कम्पनी तथा कम्पनी का प्रत्येक वह अधिकारी जिसने त्रुटि की है, जुर्माने द्वारा दण्डित किया जाएगा जो कि 500 रु. तक हो सकता है।

अनिवार्य पुनर्नियुक्ति

वार्षिक साधारण सभा में अवकाश ग्रहण करने वाला अंकेक्षक ही, चाहे वह संचालक, साधारण सभा या केन्द्रीय सरकार किसी के भी द्वारा नियुक्त किया गया हो, पुनर्नियुक्त किया जाएगा। केवल निम्नलिखित परिस्थितियों में वह फिर से नियुक्त नहीं किया जा सकता–

1. पुनर्नियुक्ति के योग्य न हो।
2. उसने अपनी अनिच्छा लिखित रूप में दे दी हो।
3. सभा में इस प्रकार का एक प्रस्ताव पास कर दिया गया हो कि उसे फिर से नियुक्त नहीं किया जाएगा अथवा उसके स्थान पर कोई दूसरा अंकेक्षक नियुक्त किया जाएगा।
4. नये अंकेक्षक को नियुक्त करने की सूचना दी जा चुकी हो, किन्तु प्रस्तावित अंकेक्षक की मुत्यु, अयोग्यता इत्यादि के कारण प्रस्ताव पर विचार न किया गया हो।

विशेष प्रस्ताव द्वारा अंकेक्षक की नियुक्ति

(Appointment of Auditor by Special Resolution)

कम्पनी अधिनियम की धारा 224 (A) के अधीन एक ऐसी कम्पनी में एक अंकेक्षक की नियुक्ति प्रत्येक वार्षिक साधारण सभा में विशेष प्रस्ताव द्वारा की जाएगी जिसकी प्रार्थित पूँजी का कम से कम 25% पथक या संयुक्त रूप से निम्न के पास हो–(1) केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, सरकारी कम्पनी या सार्वजनिक वित्तीय संस्था, (2) प्रान्तीय या राज्य अधिनियम के द्वारा स्थापित ऐसी वित्तीय या अन्य संस्था जिसकी प्रार्थित पूँजी का कम–से–कम 51% राज्य सरकार के पास हो, (3) एक राष्ट्रीयकृत बैंक या एक सामान्य बीमा व्यवसाय करने वाली कम्पनी।

यदि उक्त अवस्था में अंकेक्षक की नियुक्ति नहीं होती है तो केन्द्रीय सरकार को नियुक्ति करने का अधिकार है।

कम्पनी अंकेक्षक का हटाया जाना

(Removal of Company Auditor)

1. **प्रथम अंकेक्षक का अटाया जाना (Removal of first auditor)**: यदि प्रथम अंकेक्षक की नियुक्ति संचालकों द्वारा की गई है तो वार्षिक साधारण सभा के दिन प्रथम अंकेक्षक का कार्यालय अपने आप समाप्त हो जाता है लेकिन इस अंकेक्षक की पुनर्नियुक्ति हो सकती है किन्तु कम्पनी चाहे तो साधारण सभा में प्रस्ताव स्वीकृत करके प्रथम अंकेक्षक को हटा सकती है।
2. **अन्य अंकेक्षकों को हटाना जाना** – अन्य अंकेक्षकों को कम्पनी अपनी साधारण सभा में उनकी अवधि से पूर्व तभी हटा सकती है जब उसने इसके लिए केन्द्रीय सरकार से पहले अनुमति ले ली हो। {धारा 224 (7)}

   उपर्युक्त व्यवस्था में एक संशोधन यह किया गया है कि कम्पनी प्रथम अंकेक्षक को, जो संचालकों द्वारा नियुक्त किया गया है, साधारण सभा में प्रस्ताव पास करके केन्द्रीय सरकार से स्वीकृति प्राप्त किए बिना भी हटा सकती है।
3. **चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट इन्स्टीट्यूट की सदस्यता छूटने के कारण हटाया जाना (Termination of Membership of Institute of Chartered Accountants of India)**: कम्पनी अंकेक्षक वही व्यक्ति बन सकता है जो Institute of Chartered Account का सदस्य हो। निम्न कारणों से इन्स्टीट्यूट की सदस्यता से वंचित होने पर कोई अंकेक्षक कम्पनी के पद से हटाया जा सकता है –
   1. यदि उसकी मत्यु हो गई हो।
   2. यदि उसने सदस्यता से अलग होने के लिए इन्स्टीट्यूट को आवेदन किया है।
   3. यदि उसने इन्स्टीट्यूट की निश्चित फीस का भुगतान नहीं किया है।
   4. यदि उसमें Chartered Accounts Act में उल्लिखित कोई असमर्थता आ गई है।

अंकेक्षक की स्थिति

(Status of the Auditor)

1. **अंशधारियों का प्रतिनिधि (Agent of the Shareholders)**: कम्पनी का अंकेक्षक, अंकेक्षण के लिए अंशधारियों का प्रतिनिधि है। प्रतिनिधि के रूप में वह कम्पनी की पुस्तकों तथा अन्य सभी प्रपत्रों को देख सकता है एवं कम्पनी के प्रबन्धकों से ऐसी सूचनाएँ एवं स्पष्टीकरण माँग सकता है, जिन्हें वह अंकेक्षण के लिए आवश्यक समझे। अधिनियम के अधीन उसे अपनी रिपोर्ट अंशधारियों को देना आवश्यक है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि अंकेक्षक कुल सूचना अंशधारियों को देना चाहे, तो वह सूचना न केवल संचालकों को दी जाए बल्कि अंशधारियों के प्रति दी जाने वाली रिपोर्ट में शामिल कर लेनी चाहिए। अंकेक्षक अंशधारियों के हितों की रक्षा करने के लिए उत्तरदायी होता है।
2. **कम्पनी का अधिकारी (An Officer of the Company)**: क्या अंकेक्षक कम्पनी के मैनेजर, एकाउन्टेन्ट, आदि की भाँति कम्पनी का अधिकारी है? वास्तव में, अंकेक्षक कम्पनी का अधिकारी नहीं होता है, परन्तु अधिनियम की कुछ धाराओं के अन्तर्गत उसे कम्पनी का अधिकारी माना गया है। ये धाराएँ हैं–477, 478, 539, 543, 545, 621, 625 और 633।
3. **कम्पनी का नौकर (A Servent of the Company)**: प्रायः यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अंकेक्षक कम्पनी से पारिश्रमिक प्राप्त करता है, अतः वह कम्पनी का नौकर है। हो सकता है कि वह अन्य कर्मचारियों की भाँति नौकर न हो। वास्तव में उसकी नियुक्ति कम्पनी के संचालकों के कार्यों की जाँच करने के लिए होती है।

वास्तव में, यह परिस्थितियों पर ही निर्भर करता है कि अंकेक्षक कम्पनी का अधिकारी है, अथवा नहीं।

अंकेक्षकों के प्रकार
(Kinds of Auditors)

लारेंस, आर. डिक्सी के अनुसार अंकेक्षकों के निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है।

1. **अपूर्ण अंकेक्षक (Amateur Auditor)**: अपूर्ण अंकेक्षक से तात्पर्य ऐसे अंकेक्षकों से होता हैं जो अपना कार्य संतुष्ट रूप से नहीं कर सकते। प्रायः ऐसे अंकेक्षक बिना वेतन के (Honrary) कार्य करते हैं जिसके कारण ये अंकेक्षक कार्य में पूरी मेहनत व दक्षता से कार्य नहीं कर पाते। ऐसे अंकेक्षकों से अंकेक्षण करा कर अनेक पक्षों को नुकसान उठाना पड़ सकता है।
2. **सरकारी अंकेक्षक (Government Auditor)**: भारतीय सरकार के विभिन्न कार्यालयों के खातों का अंकेक्षण करने के लिए ऑडीटर जनरल ऑफ इण्डिया जिन व्यक्तियों को अंकेक्षण कार्य के लिए लगाता है उन्हें सरकारी अंकेक्षक के रूप में जाना जाता है। इन अंकेक्षकों के सम्बन्ध में विस्तत विवरण ऑडिट कोड (Audit Code) में दिया गया है।
3. **व्यावसायिक अंकेक्षक (Professional Auditor)**: ये अंकेक्षक Institute of Chartered Account of India द्वारा मान्यता प्राप्त होते हैं। ये वास्तव में योग्य व मान्य (Approved) अंकेक्षक होते हैं। आजकल प्रायः सभी व्यावसायिक तथा अव्यापारिक संस्थाएँ इन्हीं अंकेक्षक से अपने खातों का अंकेक्षण कराती हैं। ये अंकेक्षण अनुबंध आधार (Contract Base) पर संस्थाओं से अपना पारिश्रमिक लेते हैं और उनके लेखों का अंकेक्षण करते हैं।

अंकेक्षक के गुण

(Qualities of An Auditor)

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि भारत में अंकेक्षक के रूप में केवल वही व्यक्ति कार्य कर सकता है जिसको Institute of Chartered Accounts से मान्यता प्राप्त हो अर्थात् जो व्यक्ति सी. ए. (C. A.) हो। किन्तु व्यवसायिक एवं वैधानिक योग्यताओं के अतिरिक्त एक अंकेक्षक में अन्य गुण भी होने चाहिएँ जिससे वह अपना कार्य आसानी से कर सके, अनेक गुणों में से निम्नलिखित प्रमुख हैं–

1. पुस्तक पालन एवं लेखांकन का पूर्ण ज्ञान (Knowledge of Book-Keeping & Accountancy)
2. विभिन्न विधानों का ज्ञान (Knowledge of various laws) जैसे– Partnership Act, Company Act, Income Tax Act etc.
3. अंकेक्षण कार्य में दक्ष होना (Expert in Auditing)
4. व्यावसायिक विशेषताओं का ज्ञान (Knowledge of essentials of business concern)
5. परिश्रमी (Hard working)
6. ईमानदार (Honest)
7. चरित्रवान (High-Morale)
8. कार्य–कुशल (Efficient)
9. व्यवाहारिक (Practical)
10. स्वतंत्र तथा निडर (Independent & Fearless)
11. गोपनीयता (Secracy)
12. अनुशासन प्रिय (Discipline loving)
13. सतर्कता (Alertness)
14. स्पष्ट तथा प्रभावपूर्ण लिखने की क्षमता (Ability to write clear & Influential)
15. व्यवसायिक संगठन के विभिन्न रूपों का ज्ञान (Knowledge of different form of organization) जैसे–सांझेदारी फर्म, एकल व्यापार, कम्पनी इत्यादि।

अंकेक्षक के अधिकार
(Rights of Auditor)

1. **कम्पनी की लेखा-पुस्तकों को किसी भी समय देखने का अधिकार (Right of Access to Company's books of Accounts at all time):** कम्पनी अंकेक्षक को कम्पनी की लेखा–पुस्तकों तथा प्रमाणकों एवं प्रपत्रों की हर समय जाँच करने का अधिकार है चाहे वे पुस्तकें कम्पनी के प्रधान कार्यालय में रखी हों या अन्य किसी जगह पर।
2. **सूचनाएँ, स्पष्टीकरण माँगने का अधिकार** – अंकेक्षक को कम्पनी के अधिकारियों एवं संचालकों से वे सूचनाएँ तथा स्पष्टीकरण प्राप्त करने का अधिकार है जो अंकेक्षक के रूप में उसकी कर्त्तव्यपूर्ति के लिए आवश्यक हों।
3. **साधारण सभा की सूचना तथा अन्य सूचनाएँ प्राप्त करने का अधिकार** – अंकेक्षक को कम्पनी की सभी साधारण सभाओं की सूचनाओं (Notice) को प्राप्त करने का अधिकार है। वह सभा में उपस्थित होता है और उसमें भाषण देने का भी अधिकार रखता है।
4. **कम्पनी की शाखा के सम्बन्ध में अधिकार** – यदि कम्पनी की किसी भी शाखा के लेखों का अंकेक्षण कम्पनी अंकेक्षक के अलावा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया गया है तो कम्पनी अंकेक्षक को कम्पनी के शाखा कार्यालय पर जाने का अधिकार है। लेकिन किसी बैंकिंग कम्पनी की विदेशी शाखा के विषय मे अंकेक्षक को वहाँ जाने का अधिकार नहीं है।
5. **क्षतिपूर्ति करने का अधिकार** – धारा 201 के अनुसार एक कम्पनी अपने पार्षद अन्तर्नियमों के द्वारा अंकेक्षक के ऐसे दायित्व की, जो उसने दीवानी या फौजदारी विवाद में अपनी रक्षा करने के लिए किया हो, क्षतिपूर्ति के लिए राजी हो सकती है। जबकि अंकेक्षक को उस मुकद्दमे में या तो मुक्त कर दिया गया हो या धारा 633 के अधीन मुक्ति दे दी गई हो।

   धारा 633 के अन्तर्गत कम्पनी अंकेक्षक को, कम्पनी अधिकारी होने के कारण, कुछ मुक्ति (Relief) दी गई है।
6. **अंकेक्षक का पुस्तकों के सम्बन्ध में अधिकार (Auditors lien on Books)**: यह प्रश्न अभी तक विवादग्रस्त

है कि अंकेक्षक का संस्था की पुस्तकों पर कितना अधिकार है। प्रायः कम्पनी की पुस्तकें उसके कार्यालय में अंशधारियों तथा जनता के निरीक्षण के लिए रखी जाती हैं। अंकेक्षक का यह अधिकार नहीं है कि वह इन्हे वहाँ से ले जा सके। Herbert Alfred Burliegh Vs Ingram Clark Ltd. (1901) के मामले मे यह बात स्पष्ट कर दी गई थी कि अंकेक्षक पुस्तकों को उनके स्थान से अलग करने का अधिकार नहीं रखता है। इस प्रकार का निर्णय Arthur Francis Ltd. के मुकद्दमे में दिया गया था। Chantray Martin and Co. Vs Martin (1935) के मामले में यह निर्णय दिया गया था कि एक अंकेक्षक केवल उन कागजों पर इस प्रकार का अधिकार रखता है जो उसने स्वयं तैयार किए हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि अंकेक्षक पुस्तकों के सम्बन्ध में केवल निरीक्षण का ही अधिकार रखता है, उन्हें अलग करने का नहीं।

अंकेक्षक के गर्भित अधिकार

(Auditor's Implied Right)

1. **कर्मचारियों को ईमानदार बनाने का अधिकार** — अंकेक्षक का यह गर्भित अधिकार है कि वह कम्पनी के कर्मचारियों को ईमानदार समझे।
2. **कम्पनी के अन्तिम खाते तैयार कराकर प्राप्ति का अधिकार** — कम्पनी अंकेक्षक को यह अधिकार है कि वह कम्पनी के प्रबन्धकों से लाभ—हानि खाता तथा चिट्ठा बना हुआ प्राप्त करे। लेखा—पुस्तकों से अन्तिम खाते तैयार करना अंकेक्षक का कर्तव्य नहीं है। यदि संचालकों के अनुरोध पर अंकेक्षक अन्तिम खाते तैयार करता है तो उसका कार्य एक एकाउन्टेन्ट की भाँति माना जाएगा और अंकेक्षक इस कार्य के लिए अतिरिक्त पारिश्रमिक की माँग कर सकता है।
3. **पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार** — अंकेक्षक अपना कार्य समाप्त करके अपनी रिपोर्ट कम्पनी को प्रस्तुत करता है। इसके पश्चात् अंकेक्षक को पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार होता है।

कम्पनी अंकेक्षक के कर्त्तव्य
(Duties of Company's Auditor)

कम्पनी अंकेक्षक के कर्त्तव्यों को अध्ययन की सुविधा की दष्टि से निम्नलिखित शीर्षकों में विभक्त किया गया है—

I. भारतीय कम्पनी अधिनियम के अनुसार कर्त्तव्य,

II. चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट अधिनियम के अनुसार

I. भारतीय कम्पनी अधिनियम के अनुसार कम्पनी अंकेक्षक के कर्त्तव्य

1. **विशेष जाँच करना** — कम्पनी अधिनियम (संशोधित), 1965 के अनुसार कम्पनी अंकेक्षकों के कर्त्तव्यों में कुछ वद्धि हो गई है, जिसका वर्णन अधिनियम की धारा 227(1)(a) में किया गया है, जो निम्न प्रकार है—
   (i) क्या कम्पनी के द्वारा दिए गए ऋण और अग्रिम भुगतान (Loans and Advances) जो प्रतिभूति के आधार पर दिए गए हैं, वे उचित रूप से सुरक्षित हैं और जिन शर्तों पर ये दिए गए हैं, वे शर्तें कम्पनी और उसके सदस्यों के हितों के विरूद्ध तो नहीं हैं?
   (ii) क्या कम्पनी के लेन—देन जो पुस्तकों की प्रविष्टियों से प्रकट होते हैं, कम्पनी के हित के विरूद्ध तो नहीं है?
   (iii) यदि कम्पनी धारा 372 के अनुसार, विनियोजित कम्पनी है या एक बैंकिंग कम्पनी है, तो क्या इसकी सम्पत्तियों का वह भाग जो अंशों, ऋण—पत्रों या अन्य प्रतिभूतियों में है, इनके क्रय—मूल्य से कम में बेचा गया है?
   (iv) क्या कम्पनी द्वारा दिए गए ऋण और अग्रिम निक्षेपों (Deposits) की तरह दिखलाए गए हैं?
2. **विशेष रिपोर्ट देना** — अंकेक्षक अपने द्वारा अंकेक्षित खाता, चिटठे् तथा लाभ—हानि खाते और ऐसे अन्य प्रपत्रों के सम्बन्ध में जो स्पष्टीकरण दिए गए हैं, उसके अनुसार ये खाते कम्पनी की सच्ची तथा उचित

स्थिति प्रकट करते हैं। उसे अपने रिपोर्ट मे यह लिखना होगा कि–

(i) कम्पनी ने सभी उचित लेखा पुस्तकें रखी हुई हैं अथवा नहीं और कम्पनी की शाखाओं से जिनका उसने अंकेक्षण नहीं किया है, अंकेक्षण कार्य के लिए उचित रिटर्न मिल गए हैं या नहीं;

(ii) लाभ–हानि खाता तथा चिट्ठा उसके बही खातों तथा विवरणिका (Return) के अनुसार हैं या नहीं; और

(iii) उसे ये सभी सूचनाएँ व स्पष्टीकरण प्राप्त हो गए हैं अथवा नहीं जो आवश्यक थे।

3. **प्रविवरण में सम्मिलित करने के लिए रिपोर्ट देना** – यदि कोई विद्यमान कम्पनी प्रविवरण का निर्गमन करती है तो उसके अंकेक्षक को उस प्रविवरण में सम्मिलित करने के लिए निम्न विषयों पर अपनी रिपोर्ट देनी होगी–

(i) कम्पनी के गत् पाँच वर्षों का लाभ या हानि।

(ii) कम्पनी के आर्थिक वर्ष की समाप्ति वाले दिन कम्पनी की सम्पत्ति एवं दायित्व।

(iii) पिछले पाँच वर्ष की लाभांश दर या लाभांश से सम्बन्धित सूचनाएँ।

(iv) यदि कम्पनी ने पिछले पाँच वर्षों के खाते तैयार न कर रखे हों तो उनका विवरण धारा 56(1)

4. **वैधानिक रिपोर्ट को प्रमाणित करना** – अंकेक्षक को कम्पनी द्वारा निर्गमित वैधानिक रिपोर्ट के सम्बन्ध में यह प्रमाणित करना होता है कि उसमें लिखे निम्नलिखित अंश सही हैं अथवा नहीं? धारा 165(3)

(i) कम्पनी द्वारा आबंटित अंश,

(ii) ऐसे अंशों पर प्राप्त धनराशि,

(iii) कम्पनी की प्राप्ति एवं भुगतान।

5. **अनुसंधानकर्त्ता की सहायता करना** – यदि किसी कम्पनी का अनुसंधान (Investigation) चल रहा हो तो उस कम्पनी के अंकेक्षक का ये कर्त्तव्य है कि उस कम्पनी से सम्बन्धित उन सब पुस्तकों एवं पत्रों को, जो उसके पास हैं, सुरक्षित रखें और उन्हें निरीक्षक (Inspector) को या उसके द्वारा केन्द्रीय सरकार की स्वीकति से अधिकत व्यक्तियों को दे दे तथा निरीक्षक की यथासंभव सहायता करे। धारा 246(1) व (6) बी

6. **ऐच्छिक समापन पर रिपोर्ट देना** – धारा 488(2) के अनुसार जब कम्पनी स्वेच्छा से समाप्त होती (voluntry winding-up) है और उसके संचालक धारा 488(1) के अनुसार कम्पनी की शोधन–क्षमता (solvency) के विषय में अपनी घोषणा करते हैं तो अंकेक्षक का ये कर्त्तव्य हो जाता है कि वह इस घोषणा के बारे में अपनी रिपोर्ट दे।

7. कम्पनी अधिनियम की धारा 240 के अनुसार जब कम्पनी का अनुसंधान होता है, तो अंकेक्षक का कर्त्तव्य है कि वह निरीक्षक (Inspector) की आवश्यक सहायता करे तथा उसके पास कम्पनी से संबंधित जो पुस्तकें व प्रपत्र हों उनको उसे दे। धारा 240(6) की व्यवस्था के अन्तर्गत अंकेक्षक को भी कम्पनी के एजेण्ट के रूप मे माना गया है।

II. चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट अधिनियम के अनुसार

(Duty of an Auditor under Chartered Accountants Act, 1949)

जो व्यक्ति चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट की प्रैक्टिस कर रहे हैं उन्हें कर्त्तव्यों का पालन करना अनिवार्य होता है–

1. **अयोग्य व्यक्ति को अपने नाम से प्रैक्टिस न करने देना** – एक चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट किसी अन्य व्यक्ति को अपने नाम से प्रैक्टिस नहीं करने देगा। अन्य व्यक्ति जो चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट (C.A.) नहीं है या उसका स्वंय साझेदार या कर्मचारी नहीं है।ऽ

2. **दूसरों की आय से हिस्सा न लेना** – वह वकील, नीलाम करने वाला, दलाल या किसी ऐसे व्यक्ति, जो इन्स्टीट्यूट (Institute) का सदस्य न हो, के व्यवसाय की आय में से हिस्सा प्राप्त नहीं करेगा।

3. **अयोग्य व्यक्तियों से साझेदारी नहीं** – अंकेक्षक Chartered Accountants in Practice के अतिरिक्त अन्य

किसी भी व्यक्ति से साझेदारी नहीं करेगा।

4. **प्रचार न करना** — एक अंकेक्षक को कम्पनी में नियुक्ति के विषय में प्रचार नहीं करना चाहिए और न ही किसी प्रकार की सिफारिश करनी चाहिए।

5. **पिछले अंकेक्षक को अपनी नियुक्ति की सूचना** — यदि अंकेक्षक उस पद पर नियुक्त होता है जिस पर पहले से कोई अन्य अंकेक्षक कार्य कर रहा है तो उसे उस पद पर अपनी स्वीकति देने से पूर्व पहले वाले चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट (C.A.) को सूचित करना होगा।

6. **अपनी आय में से दूसरों को हिस्सा न देना** — इन्स्टीट्यूट के सदस्य या अवकाश प्राप्त साझेदार या मत साझेदार के वैधानिक उत्तराधिकारी के अलावा वह अन्य किसी व्यक्ति को अपने व्यवसाय की आय में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिस्सा नहीं देगा।

7. **कम्पनी अधिनियम की धारा 226 का पालन करना** — अंकेक्षक अपनी नियुक्ति से पूर्व यह देखेगा कि उसकी नियुक्ति के लिए धारा 226 में वर्णित नियमों का पालन किया गया है या नहीं।

8. **लाभ पर आधारित फीस स्वीकार नहीं करना** — किसी भी अंकेक्षक को अपने नियोक्ता से व्यवसाय से लाभ के प्रतिशत के रूप में फीस स्वीकार नहीं करनी चाहिए।

9. **अन्य व्यवसाय न करना** — अंकेक्षक को परिषद (Council) द्वारा निर्धारित कार्यों के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

10. **प्रतिस्पर्द्धा न बढ़ाना**— अंकेक्षक ऐसे पद को, जिस पर कोई चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट पहले से कार्यरत है, स्वीकार नहीं करेगा।

अंकेक्षक के दायित्व
(Liabilities of Auditors)

कम्पनी में अंकेक्षक का दायित्व

एक सीमित दायित्व वाली कम्पनी के अंकेक्षक की स्थिति निजी संस्था (एकाकी व्यापार अथवा साझेदारी संस्था) के अंकेक्षक से भिन्न है। कम्पनी के अंकेक्षक की नियुक्ति, कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों के अधीन की जाती है इसलिए कम्पनी अधिनियम में उसके दायित्वों को भी स्पष्ट रूप से वर्णित किया गया है। अध्ययन की सुविधा की दष्टि से कम्पनी अंकेक्षक के दायित्व को हम निम्नलिखित भागों में विभक्त कर सकते हैं।

1. **सामान्य दायित्व (Civil Liability)**
   (a) लापरवाही के लिए दायित्व (Liability for Negligence)
   (b) कर्त्तव्य—भंग के लिए दायित्व (Liability for Misfeasance)
2. **सापराध कार्यों के लिए दायित्व (Criminal Liability)**
3. **अन्य पक्षों के प्रति दायित्व (Liability for Third Parties)**

I. सामान्य दायित्व
(Civil Liability)

अंकेक्षक के दायित्व को पुनः दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैः—

(a) लापरवाही के लिए दायित्व (Liability for Negligence); और (b) कर्त्तव्य—भंग के लिए दायित्व (Liability for Misfeasance)। अब हम इन दोनों प्रकार के सामान्य दायित्वों पर विस्तार से प्रकाश डालेंगें।

(a) लापरवाही के लिए दायित्व (Liability for Negligence): एजेन्सी अधिनियम के अधीन प्रत्येक एजेन्ट का यह

कर्त्तव्य होता है कि वह अपने नियोक्ता द्वारा सौंपे गए कार्य को समुचित सावधानी तथा बुद्धिमानी से करे। एक अंकेक्षक कम्पनी द्वारा नियुक्त किया जाता है और कम्पनी के हितों की रक्षा करने वाला उसका एजेन्ट होता है। यदि वह अपना कार्य करने में लापरवाही दिखाता है और उसके लापरवाह होने से कम्पनी के हितों को धक्का लगता है एवं इसके परिणामस्वरूप कम्पनी को आर्थिक हानि हो जाती है तो अंकेक्षक उसके लिए उत्तरदायी होगा। ऐसी स्थिति में कम्पनी अंकेक्षक से क्षतिपूर्ति करवा सकती है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि अंकेक्षक ने लापरवाही की थी, परन्तु उससे नियोक्ता को कोई हानि न हुई हो, तो अंकेक्षक उत्तरदायी न होगा, और यदि अंकेक्षक की बिना लापरवाही किए हुए भी नियोक्ता को हानि हो जाए, तो भी अंकेक्षक उत्तरदायी न होगा। संक्षिप्त रूप में हम यह कह सकते हैं कि अंकेक्षक केवल उसी लापरवाही के लिए उत्तरदायी होता है जिसके द्वारा हानि होती है।

(b) कर्त्तव्य–भंग के लिए दायित्व

'कर्त्तव्य–भंग' से आशय ऐसे कर्त्तव्य–भंग से है, जिसके परिणामस्वरूप कम्पनी को हानि उठाना पड़े। यदि कोई अंकेक्षक अपने कर्त्तव्यों के निष्पादन में लापरवाह है, और ऐसी लापरवाही के परिणामस्वरूप कम्पनी को हानि उठानी पड़ती है, तो कम्पनी अपने जीवन–काल में उसके विरूद्ध कार्रवाई कर सकती है। किन्तु यदि कम्पनी समापन में चली गई हो, तो कम्पनी के निस्तारक (Liquidator) अथवा किसी लेनदार या अंशधारी द्वारा कर्त्तव्य–भंग की कार्रवाई अंकेक्षक के विरूद्ध चलाई जा सकती है। कम्पनी अधिनियम की धारा 543 के अधीन, यदि कोई कम्पनी समापन में हो, तो उसके वर्तमान व पिछले संचालक, प्रर्वतक, प्रबन्ध अभिकर्ता तथा अंकेक्षक अपने कर्त्तव्य–भंग या विश्वास भंग करने के कारण कम्पनी को हुई हानि की पूर्ति के लिए उत्तरदायी होंगे। यदि उनके विरूद्ध कर्त्तव्य–भंग की कार्रवाईयाँ समय से शुरू की जाएँ।

धारा 633 के अधीन, यदि न्यायालय को यह विश्वास हो जाए कि अंकेक्षक ने अपने कर्त्तव्य पालन में ईमानदारी, सतर्कता एवं बुद्धिमानी से कार्य किया है, तो उसके ऊपर चलाए हुए लापरवाही या कर्त्तव्य–भंग या विश्वास–भंग के मामलों में उसे क्षमा किया जा सकता है। साधारणतः अंकेक्षक अपने बचाव के लिए इसी धारा की शरण लेते हैं।

II. अन्य पक्षों के प्रति दायित्व
(Liability towards third parties)

चूँकि अंकेक्षक नियोक्ता द्वारा नियुक्त किया जाता है, इसलिए वह सिर्फ उसके प्रति ही उत्तरदायी है, अन्य किसी पक्ष के प्रति नहीं। यह उचित भी है, क्योंकि उन अन्य पक्षों के प्रति दायित्व (बाह्य) लोगों ने न तो उसे नियुक्त किया है और न ही वे उसे पारिश्रमिक देते हैं, अतः उनके प्रति वह उत्तरदायी क्यों हो। यदि अंकेक्षक कुछ कपट करता है तब वह अवश्य उत्तरदायी होगा किन्तु किसी कपट के अभाव में न्यायालय अन्य पक्ष के प्रति उसे उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता। यह निर्णय लीलिवर और डेनिस बनाम गोल्ड, 1983 के मामले में दिया गया था।

हाँ, नैतिक दष्टि से अवश्य अंकेक्षक अन्य पक्षों के प्रति भी उत्तरदायी होगा। इस दष्टि से उसका उत्तरदायी केवल अपने नियोक्ता तक ही सीमित नहीं है, वरन् उन अन्य लोगों के प्रति भी होता है जो उसकी रिपोर्ट के आधार पर कम्पनी से व्यवहार करते हैं।

सापराध कार्यों के लिए दायित्व

(Criminal Liability)

अंकेक्षक कम्पनी का अधिकारी होता है। यदि अंकेक्षण अवधि (Audit Period) में अंकेक्षक कोई ऐसा कार्य करे जो विशेष वैधानिक प्रतिबन्धों के विरूद्ध हों और न्याय की दष्टि में अपराध हो (Crime) तो अंकेक्षक भी उसी प्रकार दायी होगा जैसे अन्य अपराधी (Criminals)। अंकेक्षक को हथकड़ियाँ पहनाकर जेल भी भेजा जा सकता है तथा जुर्माना भी किया जा सकता है। जासेफ लंकास्टार (Joseph Lancaster) ने सापराध दायित्व की व्याख्या इस प्रकार की है–

"एक अंकेक्षक, अंकेक्षण कार्य के दौरान उन अनेक अपराधों को करने के लिए दायी हो जाता है जो कानून के अनुसार 'अपराध' (Crimes) कहे जाते हैं। सापराध दायित्व अंकेक्षण–कर्त्तव्यों के पालन में त्रुटियों से उत्पन्न होते हैं जिसके अन्तर्गत सापराध अवहेलना (Criminal neglect) हो अथवा वास्तविक जालसाजी (Actual fraud) या षड्यन्त्र (Conspiracy) हो और जिसमें कार्य करने का उद्देश्य अवैधानिक हो।"

(सापराध दायित्व के अन्तर्गत लेखों से सम्बन्धित प्रमाणकों, प्रपत्रों एवं पुस्तकों को नष्ट करना, नियोक्ता की सम्पत्ति को हानि पहुँचाना, असत्य लेखों जानते हुए सही प्रमाणित करना आदि आता है)

अवैतनिक अंकेक्षक का दायित्व
(Liability of an Honorary Auditor)

जहाँ तक अवैतनिक अंकेक्षक का लापरवाही के लिए दायित्व का प्रश्न है, वह वैतनिक अंकेक्षक की भाँति ही समान रूप से उत्तरदायी है। वह अपने दायित्व से इस आधार पर मुक्त नहीं हो सकता है कि वह किसी प्रतिफल के लिए कार्य नहीं कर रहा है। उसका नियोक्ता के साथ अनुबन्ध किसी प्रतिफल के लिए नहीं था। यदि वह दायित्व से मुक्त होना चाहता है तो उसे कार्य प्रारम्भ से ही नहीं करना चाहिए। पर कार्य पूरा होने पर जब वह अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर देता है तो वह अपने कार्य के लिए उतना ही उत्तरदायी है जितना कि वैतनिक अंकेक्षक।

कम्पनी की शाखाओं के अंकेक्षक
(Hranch Auditors)

शाखाओं के अंकेक्षण से सम्बन्धित निम्नलिखित व्यवस्था है–

यदि कम्पनी की कोई शाखा होती है तो उसके हिसाब–किताब (1) कम्पनी के अंकेक्षकों द्वारा, या (2) धारा 226 के अन्तर्गत किसी योग्य व्यक्ति के द्वारा, अंकेक्षित किए जाते हैं। यदि शाखा भारत से बाहर हो तो इसके खाते–

1. धारा 224 के अधीन नियुक्त कम्पनी के अंकेक्षक के द्वारा, या
2. उस व्यक्ति के द्वारा जो धारा 226 के अनुसार कम्पनी के अंकेक्षक के रूप में कार्य करने के योग्य है, अथवा
3. उस देश के कानून के अनुसार कम्पनी के अंकेक्षक के रूप में कार्य करने के योग्य व्यक्ति द्वारा अंकेक्षित किए जाएँगे। धारा 228 (1)

नियुक्ति –कम्पनी अपनी साधारण सभा में निर्णय करती है कि कम्पनी की शाखा के खाते कम्पनी के अंकेक्षक के अलावा किसी अन्य अंकेक्षक द्वारा जाँचे जाएँगे। यदि सभा अंकेक्षक की नियुक्ति नहीं करती तो संचालक मण्डल को यह अधिकार दे सकती है कि कम्पनी के अंकेक्षक की सलाह से किसी योग्य व्यक्ति को शाखा का अंकेक्षक नियुक्त कर दे। ऐसा व्यक्ति शाखा का अंकेक्षक कहलाता है। धारा [228 (3) (अ)]

अधिकार तथा कर्त्तव्य – शाखा के खातों के अंकेक्षण के समय, अंकेक्षक के, शाखा कार्यालय के खातों के सम्बन्ध में वही अधिकार तथा कर्त्तव्य होंगे, जो इस सम्बन्ध में कम्पनी अंकेक्षक को दिए जाएँ। धारा 228 (3) (ब)

रिपोर्ट – शाखा का अंकेक्षक शाखा के अंकेक्षित खातों के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट तैयार करके कम्पनी अंकेक्षक के पास भेजेगा। कम्पनी का अंकेक्षक, कम्पनी के अंकेक्षण की रिपोर्ट बनाते समय यथाविधि इस रिपोर्ट का उपयोग कर सकेगा। धारा 228 (3) (स)

पारिश्रमिक – शाखा अंकेक्षक का पारिश्रमिक तथा नियुक्ति की शर्तें कम्पनी द्वारा साधारण सभा में निश्चित की जाती हैं अथवा संचालकों द्वारा निश्चित की जाती हैं, जबकि साधारण सभा द्वारा संचालकों को ऐसा अधिकार दे दिया गया हो।

धारा 228 (3) (द)

अध्याय-11

अनुसन्धान
(Investigation)

परिभाषा
(Definition)

अनुसन्धान का अर्थ, किसी विशेष प्रयोजन से, व्यवसाय के लेखों की जाँच करना है। अनुसन्धान का क्षेत्र विस्तत होता है। इसमें केवल चिट्ठे एवं लाभ–हानि खाते का सत्यापन ही नहीं होता, बल्कि नियोक्ता के विशेष उद्देश्य से सम्बन्धित सूचनाएँ भी प्राप्त करनी होती है। इसमें व्यवसाय की वास्तविक वित्तीय स्थिति तथा उनकी अर्जन–शक्ति का पता लगाने के लिए उसकी हिसाब–किताब की पुस्तकों की गहन जाँच की जाती है। टेलर व पैरी के शब्दों में अनुसन्धान का अर्थ है, "व्यवसाय या संगठन की पुस्तकों व लेखों की जाँच करके उसकी तकनीकी, वित्तीय और आर्थिक–स्थिति सम्बन्धी तथ्यों का ज्ञान करना।"

अनुसन्धानकर्त्ता की योग्यताएँ
(Qualifications of an Investigator)

1. उसे चार्टर्ड एकाउन्टेण्ट होना चाहिए।
2. विभिन्न–व्यापारों का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए।
3. अपने व्यवसाय का पूरा ज्ञान तथा अनुभव होना चाहिए अर्थात् लेखा व्यवसाय के सीनियर व्यक्ति ही अनुसंधान कार्य के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं।
4. उसमें चतुरता, धैर्य, शीघ्र समझने की शक्ति तथा नैतिक बल भी होना चाहिए।

अनुसंधान करते समय ध्यान देने योग्य बातें
(Essentials during Investigation)

अनुसंधान करते समय अनुसंधानकर्त्ता को निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिएः–

1. उसे ईमानदार होना चाहिए और किसी से प्रभावित नहीं होना चाहिए।
2. उसे अनुसंधान करने में यथेष्ट सावधानी, चतुराई और बुद्धिमता का परिचय देना चाहिए।
3. उसे अपने नियोक्ता से अनुसंधान के उद्देश्य, समय और सीमाएँ इत्यादि के सम्बन्ध में लिखित आदेश प्राप्त करना चाहिए।
4. आवश्यकता पड़ने पर विशेषज्ञों की सहायता भी प्राप्त कर लेनी चाहिए।
5. जिन बातों का अनुसंधान किया जाए, उनको गुप्त रखना चाहिए और काम पूरा होने के उपरान्त ही अपनी स्पष्ट रिपोर्ट देनी चाहिए।
6. अंकेक्षक को यह मालूम करना चाहिए कि किस अवधि के लेखों का अनुसंधान होगा।

अंकेक्षण और अनुसंधान में निम्नलिखित मुख्य अन्तर हैंः

क्र. सं. (Serial No.)	अन्तर का आधार (Basis of Difference)	अंकेक्षण अनुसंधान (Auditing)	अनुसंधान (Investigation)
1.	उद्देश्य (Objects)	इसका उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि लाभ–हानि खाते द्वारा प्रगट किया हुआ फल तथा चिट्ठे द्वारा प्रदर्शित स्थिति विवरण सत्य एवं उचित है या नहीं।	इसका उद्देश्य गहन कपट की जाँच करना तथा कुछ विशेष उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए गहन छानबीन करना है।
2.	अवधि (Terms)	इसमें केवल व्यापार के एक वर्ष के लेखों की जाँच की जाती है।	इसमें कई वर्षों के अंकेक्षण किए हुए खातों की जाँच की जाती है।
3.	नियोक्ता (Employer)	यह व्यापार के स्वामी की ओर से कराया जाता है।	यह प्रायः बाहर वालों की ओर से कराया जात है। यद्यपि व्यापार का स्वामी भी कभी–कभी इसे करा लेता है।
4.	क्षेत्र (Scope)	अंकेक्षण का क्षेत्र सीमित होता है।	अनुसंधान का क्षेत्र व्यापक एवं विस्तत होता है।
5.	अनिवार्य होना (Compulsory)	कम्पनियों के लिए अंकेक्षण अनिवार्य है।	यह किसी भी दशा में अनिवार्य नहीं है।

अनुसंधान के उद्देश्य
(Object of Investigation)
or
(Types of Investigation)

उद्देश्य के अनुसार ही अनुसंधान का स्वरूप खड़ा होता है। कुछ ऐसे उद्देश्य जिनके लिए प्रायः अनुसंधान कराया जाता हैः–

भावी क्रेता द्वारा

जो व्यक्ति किसी व्यापार को खरीदना चाहता है, उसे प्रायः निम्न बातों की जाँच कराने की इच्छा रहती हैः–

(अ) उससे माँगा गया मूल्य उचित है अथवा नहीं।

(ब) विक्रेता ने सम्पत्ति एवं दायित्व चिट्ठे में ठीक दिखलाएँ हैं अथवा नहीं।

(स) भविष्य में उस व्यापार से लाभ होने की आशा है अथवा नहीं।

अतः अनुसंधानकर्त्ता को निम्न बातों की सावधानीपूर्वक जाँच करनी चाहिएः–

1. **उपार्जन शक्ति की जाँच (Earning Capacity):** अनुसंधानकर्त्ता उपार्जन शक्ति की जाँच निम्न विधि से कर सकता है–
   (i) पिछले कई वर्षों के लाभ–हानि खातों को देखना,

(ii) पिछले कई वर्षों के क्रय–विक्रय को देखना,

(iii) पिछले वर्षों में से प्रत्येक वर्ष के कुल लाभ का बिक्री के साथ प्रतिशत निकाल कर इन प्रतिशतों की परस्पर तुलना करना,

(iv) ऋण पर ब्याज, पूँजी पर ब्याज व अन्य व्यापारिक व्ययों की जाँच करना।

उसे यह भी देखना चाहिए कि कहीं लेखों में जोड़–तोड़ (Window Dressing) तो नहीं की गई है, अर्थात् किन्हीं कत्रिम तरीकों से लाभ को बढ़ाकर तो नहीं दिखाया गया है। यह लाभ, बिक्री को बढ़ाकर दिखाया जा सकता है। इसके लिए अनुसन्धानकर्त्ता को अत्यन्त सावधानी बरतनी चाहिए। उसे भविष्य में लगाए जाने वाले सरकारी प्रतिबन्धों (जिनके कारण भविष्य में लाभ कमाने की आशा कम होती हो, की ओर भी संकेत करना चाहिए)।

2. **ख्याति की जाँच Checking of Goodwill):** ख्याति के मूल्यांकन की कई विधियाँ हैं, परन्तु अधिलाभों के आधार पर ख्याति का मूल्यांकन करना अच्छा माना जाता है या फिर व्यावसायिक दष्टिकोण के आधार पर ख्याति का उचित मूल्यांकन करके जाँच करनी चाहिए।

3. **सम्पत्तियों और दायित्व का मूल्याकंन (Valuation of Assets & Liabilities):** सम्पत्तियों का भौतिक निरीक्षण करना चाहिए और वास्तविक मूल्य का अनुमान लगाना चाहिए, पुराने रिकार्ड की जाँच करनी चाहिए, ह्रास के आयोजन की औचित्यता जाँचनी चाहिए, अमूर्त सम्पत्तियों की वर्तमान उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए सही मूल्यांकन करना चाहिए। दायित्व पक्ष की सभी मदों की वास्तविकता को भी जाँचना चाहिए। देनदारों और लेनदारों से पत्र–व्यवहार करके राशि को प्रमाणित कर लेना चाहिए।

4. **अंकेक्षक की रिपोर्ट (Auditor's Report):** यदि विक्रेता ने अपने खातों का अंकेक्षण करवाया है तो अनुसंधानकर्त्ता को अंकेक्षक द्वारा दी गई रिपोर्ट की जाँच करनी चाहिए जो उसके कार्य को भी सरल बना देगी।

5. **विशेष योग्यता (Special Knowledge):** यदि व्यापार चलाने के लिए किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता है तो क्रेता के पास ऐसी योग्यता है या नहीं आदि की जाँच करनी चाहिए।

6. **बाजार की स्थिति (Position of Market):** खरीदे जाने वाले व्यापार की बाजार स्थिति क्या है? प्रतियोगिता है या नहीं? क्या ग्राहक स्वामित्व बदलने पर वहाँ आएँगे या नहीं? आदि की भी जाँच करनी चाहिए।

7. **अन्य तथ्य (Other Factors):**

(i) क्या विक्रेता फिर नए सिरे से व्यवसाय करने लगेगा?

(ii) अन्तिम स्टॉक का मूल्यांकन ठीक किया गया है या नहीं?

(iii) अप्राप्य ऋणों के लिए प्राप्त संचय किया गया है या नहीं?

ऋणदाता द्वारा

अनुसंधानकर्त्ता को अनुसंधान द्वारा ऋणदाता के उन सभी प्रश्नों के उत्तर स्पष्ट रूप से दे देने चाहिएं। उसे निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. ग्राहक की सही आर्थिक स्थिति जानने के लिए उसे ग्राहक से नवीन स्थिति विवरण तैयार करवाना चाहिए ताकि उसके व्यापार की ठीक स्थिति का पता चल सके।

2. व्यापार की सम्पत्तियों की सूची अलग से तैयार की जानी चाहिए ताकि गिरवी रखी गई सम्पत्तियों का साफ–साफ पता लगाया जा सके।

3. व्यापार के दायित्त्वों की सूची भी अलग से तैयार की जानी चाहिए ताकि पता चल सके कि कितने ऋण पूर्णतः सुरक्षित हैं, कितने अंशतः सुरक्षित हैं।

4. वर्तमान लाभ–उपार्जन क्षमता, भविष्य में बढ़ेगी या नहीं।

5. क्या ऋण किसी ऐसे उद्देश्य की पूर्ति के लिए लिया जा रहा है जिससे व्यापार बढ़ेगा या पुराने ऋण के भुगतान के लिए लिया जा रहा है।
6. गिरवी रखे जाने वाली सम्पत्ति की आर्थिक स्थिति क्या है? प्राप्य मूल्य क्या है? भविष्य में उसका मूल्य बढ़ेगा या नहीं।
7. अनुसंधानकर्त्ता को यह भी मालूम करना चाहिए कि ग्राहक ने ऋण के लिए कहीं और आवेदन किया है या नहीं, वहाँ से ऋण मिला या नहीं, आदि कारणों की भी जाँच करनी चाहिए।

कम्पनी के अंशों का मूल्यांकन करने के लिए

कभी–कभी कम्पनी अपने अन्तर्नियमों द्वारा यह प्रतिबन्ध लगा देती है कि यदि कोई व्यक्ति अपने अंशों को बेचना चाहेगा तो सर्वप्रथम इन अंशों के क्रय का प्रस्ताव वर्तमान अंशधारियों के समक्ष रखा जाएगा और यह प्रस्ताव ऐसे उचित मूल्य पर अंशधारियों के समक्ष रखा जाएगा जिस को अंकेक्षक उपयुक्त समझता है। ऐसी दशा में किसी अंशधारी द्वारा अंश बेचने पर अंकेक्षक खातों का अनुसंधान करता है और फिर अंशों का उचित मूल्यांकन करता है। मूल्यांकन निम्न आधारों पर किया जा सकता है–

1. कम्पनी के गत वर्षों के आधार पर।
2. कम्पनी की शुद्ध सम्पत्तियों के आधार पर।

अंशों का मूल्य निर्धारण करने वाले अनुसंधानकर्त्ता को मूल्यांकन के समय निम्न बातों का ध्यान चाहिए–

1. मुद्रा बाजार की दशा।
2. व्यापार का रूख।
3. पूर्वाधिकार अंशों पर दी जाने वाली लाभांश की दर।
4. कम्पनी द्वारा गत वर्षों में बाँटा गया लाभांश तथा भविष्य की सम्भावना।

कर अधिकारियों द्वारा अनुसंधान

(Investigation by Tax-Authorities)

कभी–कभी कर बचाने के उद्देश्य से व्यवसाय के स्वामी द्वारा लाभ को कम दिखाया जाता है। ऐसी दशा में कर अधिकारियों द्वारा उस संस्था के खातों की जाँच करवाई जा सकती है। अनुसंधानकर्त्ता को निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए–

1. प्राप्तियों और भुगतान का गहराई से निरीक्षण करना चाहिए।
2. बैंक पास–बुक का निरीक्षण विस्तत ढंग से करना चाहिए ताकि चैक द्वारा किए गए भुगतान और प्राप्तियों का सही पता चल सके।
3. आयकर दष्टिकोण से किस आय और व्यय को स्वीकत किया गया है।
4. व्यय को बढ़ाकर तो नहीं दिखाया गया है।
5. संचितियों और ह्रास के आयोजन की पर्याप्त जाँच गहन रूप से की जानी चाहिए।
6. बिक्री रिकार्ड ठीक–ठीक की गई है या नहीं।
7. क्या क्रय को बढ़ाकर दिखाया गया है?
8. स्टॉक का मूल्यांकन ठीक–ठीक किया गया है या नहीं।

सरकार द्वारा अनुसंधान

(Investigation by Government)

कुछ व्यापार ऐसे होते हैं जो सरकार द्वारा नियन्त्रित होते हैं अर्थात् सरकार की आज्ञानुसार उतना ही काम किया जाता है।

जितना आदेश होता है। यदि कोई व्यक्ति इन नियन्त्रित व्यापारों में से कोई व्यापार करना चाहता है तो उसे सरकार के पास सूचना भेजनी पड़ती है और विश्वास दिलाना होता है कि वह सरकारी नियंत्रण व नियमों के अनुसार कार्य कर सकता है। कई बार ऐसी परिस्थितियाँ भी आ जाती हैं कि सरकारी नियमों के अधीन उसे अपने लेखों का अनुसंधान करवाना पड़ता है। राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा के विरूद्ध कार्य करने वाली संस्था के कार्य करने के बारे में भी जाँच करवायी जा सकती है।

यदि केन्द्रीय सरकार के विचार में

1. कम्पनी के व्यवसाय का संचालन उसके ऋणदाताओं, सदस्यों अथवा अन्य किन्हीं व्यक्तियों को धोखा देने के अभिप्राय से किया जा रहा है।
2. कम्पनी के निर्माण अथवा उसके प्रबन्ध से सम्बन्धित व्यक्ति कपट, कर्त्तव्य–भंग या दुर्व्यवहार के लिए कम्पनी या किसी भी सदस्य के प्रति दोषी हों; या
3. कम्पनी के सदस्यों को वे सब सूचनाएँ न दी गई हों जो उन्हें दी जानी थीं।

तो केन्द्रीय सरकार कम्पनी का अनुसंधान करने के लिए एक या एक से अधिक निरीक्षक नियुक्त कर सकती है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि किसी भी फर्म (Firm of Accountants) कम्पनी या संघ को निरीक्षक की तरह नियुक्त किए जा सकते हैं।

प्रवेश करने वाले साझेदार की ओर से

जब एक व्यक्ति किसी साझेदारी संस्था में साझेदार बनना चाहता है और वह इसलिए इस संस्था के लेखों का अनुसंधान कराता है, तो अनुसंधानकर्त्ता को उन्हीं बातों की जाँच करनी पड़ती है जो वह भावी क्रेता के लिए करता है। इसके अतिरिक्त उसे निम्न बातों की और जाँच करनी होती है–

1. फर्म में नये साझेदारी की आवश्यकता क्यों है? ऐसा तो नहीं कि संस्था में आर्थिक संकट हो और इसलिए उसे नये साझेदार की आवश्यकता पड़ी हो।
2. यदि नया साझेदार किसी पुराने साझेदार के स्थान पर जा रहा है जो अवकाश–प्राप्त है या उसकी मत्यु हो चुकी है तो अनुसंधानकर्त्ता को यह देख लेना चाहिए कि पुराने साझेदार के विशेष ज्ञान से संस्था को कितना लाभ होता था, क्या नया साझेदार उस कमी को पूरा कर सकता है? यदि नहीं तो व्यापार ख्याति व लाभ पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा?
3. क्या प्रवेश करने वाले साझेदार द्वारा दी गई पूँजी से व्यापार की कार्यशील पूँजी बढ़ती है? ऐसा होने से व्यापार की उपार्जन शक्ति में भी वद्धि होगी। यदि यह राशि व्यापार के ऋण–शोधन में व्यय की जाती है तो आगामी लाभों में वद्धि की संभावना नहीं होगी।
4. नये साझेदार को लाभ में क्या प्रतिशत मिलेगा? क्या ऐसा प्रतिशत उन सबकी पूँजी के अनुपात में है?

एक विनियोजक की ओर से अनुसंधान

जो व्यक्ति किसी व्यवसाय में धन लगा रहा है, और वह इसलिए अनुसंधानकर्त्ता की नियुक्ति करता है, तो वह यह जानना चाहेगा कि–

1. उसके द्वारा विनियोजित धन राशि कितनी सुरक्षित रहेगी, और
2. उससे उसको क्या प्राप्ति (Yield) होगी। अतः ऐसे अनुसंधान में प्रायः उन्हीं बातों की जाँच की जाती है जिनकों बैंक या ऋण देने वाली संस्था करती है। बैंक, ऋण की तरलता (Liquidity) की ओर अधिक ध्यान देता है जबकि विनियोजक व्यापार के लाभ तथा भावी प्रवत्ति को जानने का प्रयत्न करता है।

3. यदि विनियोजक अपनी राशि किसी फर्म में विनियोग कर रहा है तो विनियोजक एवं उस फर्म के मध्य हुए प्रसंविदे की जाँच करके यह देखना चाहिए कि उसमें लिखी शर्तें विनियोजक के हित में हैं या नहीं।

4. यदि राशि कम्पनी के अंशों या ऋणपत्रों में लगायी जा रही है तो विभिन्न प्रकार के अधिकारियों के अधिकारों को देखने के लिए, उस कम्पनी के पार्षद् सीमा नियम तथा अन्तर्नियम देखकर यह तय करना होगा कि किस प्रकार की प्रतिभूति में धन।

स्वामी द्वारा कपट की दशा में अनुसंधान (Investigation by Owner in Case of Fraud)

व्यापार के स्वामी द्वारा कभी–कभी ऐसी दशा में भी अनुसंधान करवाया जाता है जब उसे अपने कर्मचारियों द्वारा किए जाने वाले कार्यों में छल व कपट होने का शक हो जाता है। ऐसी अवस्था में अनुसंधानकर्त्ता द्वारा अत्यधिक सावधानी एवं चतुराई से जाँच करनी होती है। अतः उसे नियोक्ता से लिखित आदेश प्राप्त कर लेना चाहिए क्योंकि कपट का रूप कुछ भी हो सकता हैः

(a) रोकड़ का गबन (Misappropriation of Cash)

(b) माल का गबन (Misappropriation of Goods)

(c) हिसाब–किताब की गड़बड़ी (Manipulation of Accounts)

(a) ***रोकड़ का गबनः*** रोकड़ के गबन पता लगाने के लिए अनुसंधानकर्त्ता को सर्वप्रथम आन्तरिक निरीक्षण प्रणाली की जाँच करनी चाहिए। संदिग्ध व्यक्तियों के अधिकार व कर्त्तव्यों का पता लगाना चाहिए। रोकड़ शेष का मिलान पास–बुक के साथ करना चाहिए। रोकड़ गणना करनी चाहिए। नकद बिक्री, नकद कटौती व अन्य छुटपुट नकद व्यवहार की विशेष रूप से जाँच होनी चाहिए।

(b) ***माल का गबनः*** माल के गबन को ढूँढना कठिन काम है। जहाँ वस्तुएँ हल्की परन्तु मूल्यवान हों वहाँ ऐसे गबन प्रायः पाए जाते हैं। इसके लिए माल भीतरी पुस्तक, कुल क्रय, क्रय वापसी, कुल विक्रय वापसी आदि की गहरी जाँच करना आवश्यक है। स्टाक रजिस्टर से स्टाक की मात्रा की जाँच करनी चाहिए। प्रेषण और 'बिक्री या वापसी' के आधार पर बेचे गए माल की जाँच करना आवश्यक है। भौतिक जाँच करन अन्तिम स्टाक का पुस्तकों से मिलान करना चाहिए।

(c) ***हिसाब-किताब की गड़बड़ीः*** खातों में गड़बड़ी व्यापार की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने पर अच्छी दिखाने के लिए, वास्तविक लाभ छिपाने के लिए, ऋणदाताओं को धोखा देने के लिए आदि कारणों से प्रभावित होती है। खातों में गड़बड़ी उन्हीं लोगों द्वारा सम्भव है जो उच्च अधिकारी हैं या फिर स्वामी हैं। सम्पत्तियों के अधिमूल्यन व दायित्वों के अवमूल्यन द्वारा यह सम्भव होता है। अनुसंधानकर्त्ता को इस अवस्था में अधिक सावधान होने की आवश्यकता होती है। उसे सम्पत्तियों एवं दायित्वों का निष्पक्ष सत्यापन करना चाहिए।

अनुसंधानकर्त्ता द्वारा पूरी जाँच करके एक रिपोर्ट देनी चाहिए जिसमें उन सभी कपटों का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए और भविष्य में इन कपटों को रोकने के उपाय भी सुझाए गए हों।

जाँच-पड़ताल तथा अनुसंधान

(Inquiry and Investigation)

भारतीय कम्पनी (संशोधित) अधिनियम, 1975 की धारा (IA) के अन्तर्गत अंकेक्षक के कर्त्तव्यों में कुछ व्यवहारों की निश्चित जाँच–पड़ताल करना अनिवार्य कर दिया जाता है। अतः यह अंकेक्षक का वैधानिक कर्त्तव्य है। जबकि

कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 235 के अन्तर्गत गम्भीर अनियमितताओं एवं गड़बड़ियों के होने पर ही केन्द्रीय सरकार अनुसंधान कराती है। इस कार्य के लिए जिस व्यक्ति की नियुक्ति की जाती है उसे निरीक्षक (Inspetor) कहते हैं। यह एक नियमित कार्य है जबकि अनुसंधान एक नियमित कार्य नहीं होता कम्पनी अंकेक्षक का यह कर्त्तव्य होता है कि वह सरकार द्वारा नियुक्त निरीक्षक की सहायता करे। अनुसंधानकर्त्ता का ऐसा कोई कर्त्तव्य नहीं होता है।

विशेष अंकेक्षण एवं अनुसंधान

(Special Audit and Investigation)

यदि केन्द्रीय सरकार चाहे तो भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 233A के अन्तर्गत किसी भी कम्पनी का विशेष अंकेक्षण करने का आदेश दे सकती है। धारा 235 के अनुसार यह सामान्य अंकेक्षण तथा अनुसंधान से भिन्न होता है। कम्पनी अंकेक्षक अपनी रिपोर्ट कम्पनी को देता है जबकि ऐसा निरीक्षक अपनी रिपोर्ट केन्द्रीय सरकार को देता है। विशेष अंकेक्षण से कम्पनी की प्रतिष्ठा को धक्का नहीं लगता लेकिन कुछ परिस्थितियों में कराए गए अनुसन्धान से कम्पनी की प्रतिष्ठा को ठेस अवश्य पहुँचती है।

अध्याय-12
अंकेक्षण रिपोर्ट एवं आन्तरिक अंकेक्षण
(Audit Report and Internal Audit)

अंकेक्षण रिपोर्ट
(Audit Report)

अंकेक्षण कार्य होने के बाद प्रत्येक अंकेक्षक को अपने किए हुए कार्य का सारांश रूप में एक विवरण देना होता है, जिसे अंकेक्षण रिपोर्ट कहते हैं। इस पर अंकेक्षक के हस्ताक्षर होते हैं। यह अंकेक्षण प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। अंकेक्षक द्वारा किये गए कार्य का यह एक सार है जिसमें हिसाब–किताब के प्रति उसके विचार भी प्रकट किए जाते हैं। प्रत्येक अंकेक्षण द्वारा किये गए कार्य अन्तिम उत्पाद (Final Product) अंकेक्षक रिपोर्ट है। इसे अंकेक्षित हिसाब–किताब की सहायता का मापदण्ड भी कहा जा है।

कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 227(2) के अनुसार–अंकेक्षक अपना अंकेक्षण कार्य पूरा करने के बाद, अपने नियोक्ता के हिसाब–किताब, वार्षिक चिट्ठे, लाभ–हानि खाते एवं उनके साथ संलग्न किए गए प्रलेखों को कम्पनी की साधारण सभा में प्रस्तुत किए जाने के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट देता है। यदि यह रिपोर्ट व्यापारिक वर्ष (Financial Year) के बीच में बनायी जाए तो इसको अन्तरिम रिपोर्ट (Interim Report) कहते हैं।

अंकेक्षण रिपोर्ट का महत्व
(Importance of Audit Report)

अंकेक्षण रिपोर्ट एक महत्त्वपूर्ण प्रपत्र है। इसी के आधार पर व्यवसाय के सम्बन्ध में निश्चित योजना बनाई जाती है। अंशधारी कम्पनी में अपना धन लगाते हैं, उनके धन से स्थापित व्यापार का प्रबन्ध एवं प्रचलन उनके द्वारा चुने गए संचालक करते हैं। अंशधारी यह जानना चाहते हैं कि उनके धन का कम्पनी में दुरूपयोग तो नहीं हो रहा है। संचालक छल–कपट करके माल या रोकड़ का गबन तो नहीं कर रहे हैं। उन्हें जो लाभांश मिला है वह कम्पनी अधिनियम की धाराओं के अनुसार ही है। यह समस्त बातें उन्हें अंकेक्षण रिपोर्ट से ही ज्ञात होती हैं।

इस रिपोर्ट का महत्त्व संचालकों के लिए तो और भी अधिक होता है क्योंकि सभी कार्य वे स्वयं नहीं करते, उन्हें कर्मचारियों पर निर्भर करना होता है। अतः कर्मचारियों ने कोई छल–कपट तो नहीं किया, इस रिपोर्ट से ही पता चलता है। ऋणदाता जो कि अपना धन कम्पनी को ऋण के रूप में देता है, इस बात का ध्यान रखता है कि कम्पनी की आर्थिक दशा कैसी है जिससे कि उनके धन के ब्याज की वसूली नियत समय पर हो सके। वे आर्थिक–स्थिति देखते समय अंकेक्षित खातों पर ही अधिक विश्वास करते हैं जिसके लिए वे कुछ वर्षों की अंकेक्षण रिपोर्ट देखते हैं।

रिपोर्ट तैयार करते समय ध्यान देने याग्य बातें

एक अच्छी रिपोर्ट में निम्नलिखित बातों का समावेश होना चाहिएः–

1. रिपोर्ट की भाषा सरल एवं साधारण हो।
2. रिपोर्ट अनुच्छेदों में विभाजित होनी चाहिए।
3. अंकेक्षक को तब कोई सलाह नहीं देनी चाहिए जब तक कि उससे सलाह माँगी न गई हो।

4. रिपोर्ट तथ्यों पर आधारित हो तथा कोई बात गोपनीय नहीं होनी चाहिए।
5. रिपोर्ट पक्षपात रहित होनी चाहिए तथा लेखा–पुस्तकों की गलतियों को स्पष्ट रूप से लिखा जाना चाहिए।
6. रिपोर्ट में की गई आलोचना किसी व्यक्ति विशेष को हानि पहुंचाने वाली न हो।
7. रिपोर्ट बिना किसी महत्त्वपूर्ण तथ्य को छोड़ते हुए सूक्ष्म–से–सूक्ष्म लिखी जानी चाहिए।
8. रिपोर्ट में बहुअर्थी शब्दों का प्रयोग वाँछनीय नहीं होता है।
9. अन्त में, रिपोर्ट पर अंकेक्षक के हस्ताक्षर, स्थान, नाम एवं तिथि का उल्लेख होना चाहिए।

अंकेक्षण रिपोर्ट की विषय सामग्री
(Subject-matter of Audit Report)

कम्पनी अधिनियम, 1956 के धारा 227(2) और (3) के अनुसार अंकेक्षण को अपनी रिपोर्ट में निम्नलिखित बातें स्पष्टतः देनी चाहिए–

1. क्या उसकी सम्मति में तथा उसको प्राप्त सूचनाओं एवं स्पष्टीकरण के अनुसार कम्पनी के खाते अधिनियम द्वारा आवश्यक सूचना देते हैं। तथा–
   (i) कम्पनी का चिट्ठा उसके वित्तीय वर्ष के अन्त की आर्थिक स्थिति का, और
   (ii) लाभ–हानि खाते की दशा में, उस आर्थिक वर्ष के लिए लाभ–हानि का ''सच्चा तथा उचित'' चित्र देते हैं या नहीं

   धारा 227 के अनुसार अंकेक्षक के दो प्रमुख कर्त्तव्य होते हैं–
   (i) अंकेक्षक को अपनी रिपोर्ट में यह लिखना पड़ता है कि कम्पनी अधिनियम द्वारा आवश्यक विधि के अनुसार खाते तैयार किए गए हैं या नहीं।
   (ii) अंकेक्षक को यह स्पष्ट करना होता है कि खाते ''सच्चा एवं उचित'' चित्र प्रस्तुत करते हैं या नहीं।
2. उसने वह सभी सूचनाएँ और स्पष्टीकरण प्राप्त कर लिए हैं जो उसकी जानकारी एवं विश्वास के लिए अंकेक्षण कार्य के लिए आवश्यक हैं।

   अंकेक्षक को केवल संस्था की लेखा–पुस्तकों तथा प्रमाणकों तक पहुंचने का अधिकार ही नहीं है अपितु वह अपने कर्त्तव्यों के लिए उन सूचनाओं एवं स्पष्टीकरण को, जो वह आवश्यक समझता है, कम्पनी के संचालकों या उच्च अधिकारियों से प्राप्त कर सकता है।
3. उसकी राय में कम्पनी अधिनियम के अनुसार उचित पुस्तकें रखी हैं या नहीं और कम्पनी की जिन शाखाओं का उसने निरीक्षण नहीं किया है, उनसे उचित विवरण प्राप्त हो गए हैं या नहीं।
4. किसी शाखा की लेखा–पुस्तकों से सम्बन्धित रिपोर्ट जिसे धारा 228 के अनुसार कम्पनी अंकेक्षक के द्वारा अंकेक्षण किया गया हो, उसे प्राप्त हो गई है अथवा नहीं और अपनी रिपोर्ट तैयार करते समय उसका किस प्रकार उपयोग किया है।

   साधारण रूप से अंकेक्षक को शाखा के अंकेक्षकों की रिपोर्ट पर विश्वास करना चाहिए, जब तक खातों में विशेष धोखाधड़ी न हो। यदि अंकेक्षक ने शाखा के खातों की जाँच नहीं की है तो उसे अपनी रिपोर्ट में इस बात का उल्लेख करना चाहिए।
5. कम्पनी का चिट्ठा तथा लाभ–हानि खाता, जिनका उल्लेख रिपोर्ट में किया गया है, कम्पनी की लेखा–पुस्तकों तथा विवरणों के अनुरूप हैं अथवा नहीं।

6. जब तक अंकेक्षण रिपोर्ट में दी जाने वाली उपराक्त पाँचों बातों का उत्तर 'हाँ' यानि सकारात्मक (Positive) प्राप्त न हो जाए, तब तक अंकेक्षक यह नहीं कह सकता है कि कम्पनी का चिट्ठा तथा लाभ–हानि खाता, कम्पनी की पुस्तकें एवं खाते कम्पनी अधिनियम के अनुसार हैं या नहीं।

7. यदि रिपोर्ट अंकेक्षक अपनी रिपोर्ट में कोई मर्यादा (Qualification) लगाना चाहता है तो अंकेक्षक को इसके लिए कारण देने होंगे तथा यह भी जाँच करनी होगी कि कम्पनी के हिसाब–किताब में कहाँ कमजोरी है।

8. रिपोर्ट पर हस्ताक्षर धारा 229 के अनुसार केवल वही व्यक्ति जो कम्पनी का अंकेक्षक नियुक्त हुआ है अथवा यदि धारा 22(1) के अनुसार एक फर्म की नियुक्ति हुई तो भारत में प्रैक्टिस करने वाला उसका एक साझेदार हो, अंकेक्षक की रिपोर्ट अथवा दूसरे किसी प्रलेख पर हस्ताक्षर कर सकता है।

9. यदि अंकेक्षक को चिट्ठे की तिथि के बाद किन्तु अपनी रिपोर्ट देने से पूर्व कुछ असाधारण लाभों या हानियों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है तो उसे रिपोर्ट में उनका उल्लेख अवश्य कर देना चाहिए।

अंकेक्षण रिपोर्ट
(Types of Audit Report)

अंकेक्षण रिपोर्ट निम्न प्रकार की है:

1. **अन्तिम रिपोर्ट (Final Report)**–अंकेक्षक अपना पूर्ण कार्य समाप्त करने के पश्चात् जो रिपोर्ट देता है, उसे अन्तिम रिपोर्ट कहते हैं। अधिकतर सभी अंकेक्षकों से अन्तिम रिपोर्ट ही माँगी जाती है।

2. **अन्तरिम रिपोर्ट (Interim Report)**– कभी–कभी अंकेक्षक को पूरा कार्य समाप्त करने से पहले ही बीच में अपनी रिपोर्ट देनी पड़ती है। इसे अन्तरिम रिपोर्ट कहते हैं।

3. **आंशिक रिपोर्ट (Partial Report)**- यदि अंकेक्षक को पूरे खातों की जांच के लिए नियुक्त नहीं किया जा सकता, बल्कि लेखा पुस्तकों के किसी एक भाग की जांच के लिए नियुक्त किया जा सकता है, तो इस भाग की जाँच की रिपोर्ट को आंशिक या अंशतः रिपोर्ट कहते हैं। इस रिपोर्ट को लिखते समय अंकेक्षक को यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस रिपोर्ट के पढ़ने वाले इसे पूर्ण रिपोर्ट या अन्तिम न समझ बैठें।

   (a) ***स्वच्छ रिपोर्ट (Clean Report)*** –जब अंकेक्षक इस बात से संतुष्ट हो जाएं कि हिसाब ठीक है या उसमें कोई त्रुटियाँ तथा कपट नहीं है, लाभ–हानि खाते द्वारा दर्शाया लाभ या हानि और चिट्ठे द्वारा दिखायी आर्थिक–स्थिति पूर्णतया सही है, तो वह स्वच्छ रिपोर्ट दे देगा। वास्तव में, स्वच्छ रिपोर्ट पर ही व्यापार की ख्याति निर्भर करती है।

   (b) ***मर्यादित रिपोर्ट (Qualified Report)*** –जब अंकेक्षक जाँचे गए हिसाब से सन्तुष्ट नहीं होता अर्थात् उसमें कोई कमी पाता है, तो वह रिपोर्ट में सम्मिलित कर लेता है। ऐसी रिपोर्ट जिसमे कोई मर्यादा (Qualification) लगा दी जाए मर्यादित (Qualified) रिपोर्ट कहलाती है। जब अंकेक्षक अपनी रिपोर्ट में कोई मर्यादा जोड़ना आवश्यक समझे तो उसे इसके कारण भी देने चाहिएँ।

स्वच्छ रिपोर्ट और अमर्यादित रिपोर्ट में अन्तर
(Difference between Clean and Qualified Report)

1. स्वच्छ रिपोर्ट यह दिखती है कि पुस्तकों में कोई त्रुटि या छल–कपट नहीं है जबकि मर्यादित रिपोर्ट द्वारा यह पता चलता है कि पुस्तकों में त्रुटियों और छलकपट शेष हैं।

2. स्वच्छ रिपोर्ट द्वारा यह पता चलता है कि 'चिट्ठा' एवं लाभ–हानि खाता व्यपार की 'सच्ची एवं उचित' स्थिति पकट करते हैं। परन्तु मर्यादित रिपोर्ट यह दर्शाती है कि 'चिट्ठा' एवं 'लाभ–हानि खाता' व्यापार की 'सच्ची एवं उचित' स्थिति प्रकट नहीं करते।

3. स्वच्छ रिपोर्ट में किसी भी प्रकार की मर्यादा का उल्लेख नहीं किया जाता जबकि मर्यादित रिपोर्ट में मर्यादा/मर्यादाओं का उल्लेख किया जाता है।

4. स्वच्छ रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि अंकेक्षक जाँची गई पुस्तकों की शुद्धता से सतुष्ट है परन्तु मर्यादित रिपोर्ट में वह जाँचे गए हिसाब–किताब से सन्तुष्ट नहीं होता।

5. स्वच्छ रिपोर्ट व्यापार की ख्याति को बढ़ाती है और मर्यादित रिपोर्ट व्यापार की ख्याति को कम करती है।

आन्तरिक अंकेक्षण
(Internal Audit)

अर्थ (Meaning) –आन्तरिक अंकेक्षण, आन्तरिक नियंत्रण पद्धति का एक महत्वपूर्ण अंग है। आन्तरिक अंकेक्षण व्यावसायिक संस्था के लेखे/खातों और क्रियाओं का पुनर्निरीक्षण है जो व्यवसाय के ही इस कार्य हेतु नियुक्त कर्मचारियों द्वारा साधारणतः लगातार किया जाता है। व्यवसाय में इस कार्य के लिए अलग से स्टाफ होता है जो आन्तरिक अंकेक्षक (Internal Auditor) के अन्तर्गत कार्य करता है। आन्तरिक अंकेक्षक के लिए यह जरूरी नहीं है कि उसमें व्यावसायिक अंकेक्षक की योग्यता हो। आंतरिक अंकेक्षण का सम्बन्ध मुख्य रूप से खातों तथा आर्थिक मामलों से होता हैं

आंतरिक अंकेक्षण का महत्त्व

बड़ी व्यावसायिक संस्थाओं के लिए आन्तरिक अंकेक्षण एक आवश्यकता है। किन्तु हमारे देश में इसका वैधानिक महत्व और भी बढ़ गया है। भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत एक कम्पनी तथा उसकी शाखाओं के हिसाब–किताब का अंकेक्षण अंकेक्षक द्वारा करवाना अनिवार्य है। लेकिन यदि किसी कम्पनी की शाखा में आन्तरिक अंकेक्षण के प्रबन्ध है और आन्तरिक अंकेक्षक एक 'योग्य अंकेक्षण' है तो केन्द्र सरकार, प्रार्थना–पत्र देने पर, उस शाखा को अनिवार्य वैधानिक अंकेक्षण से मुक्त कर सकती है। इस प्रकार के प्रार्थना–पत्र के साथ कम्पनी के प्रबन्ध संचालक अथवा मैनेजर का एक प्रमाण–पत्र दिया जाना चाहिए कि आन्तरिक अंकेक्षण का प्रबन्ध संतोषजनक है। कम्पनी अंकेक्षक ने एक लिखित घोषणा भी कि उसकी राय में आन्तरिक अंकेक्षक का प्रबन्ध पर्याप्त है और शाखा के हिसाब–किताब ठीक से रखे गये हैं, प्रार्थना–पत्र के साथ संलग्न करना चाहिए।

क्रेन्दीय सरकार द्वारा कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 227(4A) के अधीन आदेश जारी करके अंकेक्षक का यह कर्त्तव्य निर्धारित कर दिया गया है कि वह वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ में 25 लाख रूपये से अधिक प्रदत्त पूँजी वाली कम्पनियों के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट में यह स्पष्ट करे कि उस कम्पनी में आन्तरिक अंकेक्षण की उचित व्यवस्था है अथवा नहीं। ऐसी व्यवस्था के अभाव में अंकेक्षक की रिपोर्ट मर्यादित रिपोर्ट हो जायेगी। केन्द्रीय सरकार के इस आदेश ने आन्तरिक अंकेक्षण के महत्त्व में वद्धि की है।

आन्तरिक अंकेक्षण के उद्देश्य

(Objective of Internal Audit)

आन्तरिक अंकेक्षण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. **पुनर्निरीक्षण (Review) करना**–कर्मचारियों द्वारा किये गए कार्य का पुनर्निरीक्षण करना इसका प्रमुख उद्देश्य है।

2. **यह विश्वास दिलाना कि आन्तरिक निरीक्षण प्रणाली प्रभावी है (Effective and Internal Check System)**-आन्तरिक अंकेक्षण प्रबन्धकों को यह विश्वास दिलाता है कि उनके द्वारा लागू की गई आन्तरिक निरीक्षक प्रणाली प्रभावपूर्ण तरीके से चल रही है।

3. **अशुद्धियों को रोकना तथा ज्ञात करना (Prevention Internal Check System)**- संस्था के कर्मचारियों पर नैतिक प्रभाव डालकर उन्हें सावधानी से कार्य करने के लिए आन्तरिक अंकेक्षण प्रेरित करता है। परिणामस्वरूप अशुद्धियों में कमी होती है। यदि अशुद्धियों का पता आन्तरिक निरीक्षण से नहीं चलता तो वे आन्तरिक अंकेक्षण के द्वारा पकड़ में आ जाती है।

4. **अधिकत व्यवहार (Authorise Transactions)**- आन्तरिक अंकेक्षक सामान्यतया यह देखता है कि व्यवसाय के सभी कार्य स्वीकत नीतियों, नियमों तथा गतिविधियों (procedures) के अनुसार चलाये जा रहे हैं।

5. **छल-कपट का पता लगाना (Discovered Fraudulent Entries)**– आन्तरिक अंकेक्षण के अन्तगर्त वित्तीय तथा अन्य प्रकार के लेन–देन की समीक्षा करना भी बहुत आवश्यक है ताकि छल–कपट प्रकाश में आता रहे और भविष्य में इसकी संभावनाएं कम से कम हो सकें।

6. **योजनाबद्धता की जाँच (To Examine Planned Procedure)**– आन्तरिक अंकेक्षण द्वारा यह जाँच की जाती है कि प्रत्येक व्यवहार के सम्बन्ध में जो योजना बनाई गई थी तथा जो प्रक्रिया (Procedure) निश्चित की गई थी उन्हीं के अनुसार कार्य हुआ है।

7. **प्रक्रियाओं में सुधार (Amendments in Procedures)**– व्यवहारों के लेखों के सम्बन्धों में जो क्रियाएँ (Procedures) हैं। उसकी कमियों का पता लगाकर उनमें आवश्यकतानुसार सुधार करना आतंरिक अंकेक्षण का उद्देश्य है।

आन्तरिक अंकेक्षक की योग्यताएँ

(Qualification of Internal Auditor)

कम्पनी के लिए बाहरी अंकेक्षक की भाँति आन्तरिक अंकेक्षक के लिए कम्पनी अधिनियम में कोई योग्यता निर्धारित नहीं की गई है, क्योंकि आन्तरिक स्थिति तथा प्रबन्ध के निर्णय पर निर्भर करता है। अतः आन्तरिक अंकेक्षक बनने के लिए उसको चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट या लागत लेखपाल (Cost Accountant) होना अनिवार्य नहीं है। बहुत–सी संस्थाओं में चार्टर्ड एकाउण्टेन्ट तथा लागत लेखपाल (Cost Accountant) जैसे योग्यता प्राप्त व्यक्ति ही आन्तरिक अंकेक्षक नियुक्त किए जाते हैं। कहीं–कहीं प्रशिक्षित कर्मचारी, जिनका लेखाकर्म तथा अंकेक्षण विभाग में कार्य करने का लम्बा अनुभव होता है, आन्तरिक अंकेक्षक नियुक्त किए जाते हैं।

आन्तरिक अंकेक्षण के सिद्धान्त
(Principles of Internal Audit)
अथवा
आन्तरिक अंकेक्षण के आधार
(Basis of Internal Audit)

आन्तरिक अंकेक्षण के आधारभूत सिद्धान्त/आधार निम्नलिखित हैं–

1. **स्वतंत्र विभाग (Independent Department)**- आंतरिक अंकेक्षण विभाग दिन–प्रतिदिन प्रबन्धकीय कार्यों में उच्च प्रबन्ध की सहायता करता है। इसलिए इस विभाग को स्वतंत्र रखा जाता है। इसका कार्य किसी भी प्रकार के खातों को तैयार करना नहीं है। क्योंकि आन्तरिक अंकेक्षक परामर्शदायी (advisory) कार्य है यह रेखीय कार्य (Line function) नहीं बन सकता है। यह एक स्वतंत्र कार्य है।

2. **कार्यकारी कार्यों से मुक्त (Free to Executive Functions)** आन्तरिक अंकेक्षक को व्यवसाय के कार्यकारी (executive) कार्यों से स्वतंत्र रखा जाता है। अंकेक्षक परामर्शदाता की स्थिति में कार्य करता है। आन्तरिक अंकेक्षक का कार्य अन्य व्यक्तियों के द्वारा किये गये कार्यों की समीक्षा करना है और वह अपनी राय से प्रबन्ध को समय–समय पर अवगत कराता है।

3. **पर्याप्त अनुसंधान (Sufficient Investigation)**- आन्तरिक अंकेक्षक को संगठन की क्रियाओं की किसी भी अवस्था में जाँच करने तथा पर्याप्त अनुसंधान करने का प्रत्येक समय तथा प्रत्येक परिस्थिति में पूर्ण अधिकार है।

आन्तरिक अंकेक्षक के कार्य

(Functions of Internal Auditor)

आन्तरिक अंकेक्षक के कार्यों के सम्बन्ध में कोई वैधानिक प्रावधान नहीं है। फिर भी, आन्तरिक अंकेक्षक के निम्न कार्य हो सकते हैं–

1. **अनुसंधान (Investigation)**– आन्तरिक अंकेक्षक को संगठन के लेखों, सम्पत्तियों, दायित्वों तथा व्यवसाय की अन्य सम्पत्तियों (जैसे–भू–सम्पत्ति, धन–सम्पत्ति आदि) और जाँच सम्बन्धी कार्यों से मिले कर्मचारियों के कार्यों का अनुसंधान करना चाहिए।
2. **मूल्याकंन (Appraisal)**– आन्तरिक अंकेक्षक का प्रमुख कार्य संस्था की योजनाओं, नीतियों, गतिविधियों, लेखे व रिपोर्टों की समीक्षा तथा मूल्यांकन करना भी है।
3. **परामर्शदायी कार्य (Advisory Functions)**– आन्तरिक अंकेक्षक का प्रबन्ध के प्रति परामर्श देने का भी उत्तरदायित्व है। इसके अन्तर्गत, नियोजन, समन्वय, अभिप्रेरणा व नियंत्रण आदि क्रियाएँ सम्मिलित हैं। इस कार्य के अतिरिक्त वह विनियोग, क्रय, उत्पाद, अभिलाभांश की घोषणा आदि कार्यों के लिए निर्णय लेने में प्रबन्ध को परामर्श देता है।

आन्तरिक अंकेक्षण के लाभ

(Advantages of Internal Audit)

आन्तरिक अंकेक्षण के निम्न लाभ हैं–

1. आन्तरिक अंकेक्षण योजनाओं तथा संगठन की लाभदेयता (Profitability) वद्धि के लिए लागू किए गए प्रभावी नियंत्रण की प्रक्रियाओं के पालन में प्रबन्ध की सहायता करता है।
2. कर सम्बन्धी लेखे तथा कर–विवरणी (Tax return) तैयार करने में प्रबन्ध की सहायता करता है।
3. व्यवसाय में आन्तरिक आवश्यकतानुसार प्रबन्ध के आदेश पर रचनात्मक सुझाव व क्रियालाप में सुधार के उपाय बताने में सक्षम होता है।

आन्तरिक अंकेक्षण की हानि

आन्तरिक अंकेक्षण की निम्न हानि है–

1. यदि आन्तरिक अंकेक्षक के कर्मचारी अकुशल हैं, तो उपयोगी सेवाएँ नहीं दे सकते हैं।
2. आन्तरिक अंकेक्षण–विभाग की स्थापना केवल बड़े व्यावसायिक संस्थान में ही सम्भव है, अधिक लागत (Cost) की व्यवस्था करना छोटे व्यवसायों के लिए सम्भव नहीं है।
3. प्रायः देखा गया है कि आन्तरिक अंकेक्षक प्रबन्ध से मिलकर वित्तीय स्थिति को बिगाड़ने में योगदान करते हैं।
4. आन्तरिक अंकेक्षक के लिए वैधानिक योग्यता निर्धारित नहीं की गयी है। अतः अयोग्य अंकेक्षक की नियुक्ति की संभावना व्यक्तिगत सम्बन्धों के आधार पर बनी रहती है।
5. आन्तरिक अंकेक्षक का दष्टिकोण उतना स्पष्ट तथा निष्पक्ष व स्वतंत्र नहीं हो सकता जितना कि बाहरी अंकेक्षक का हो सकता है। आन्तरिक अंकेक्षक संस्था के ही वेतनभोगी कर्मचारी होते हैं अतः वे अधिकांशतः प्रबन्ध की इच्छा के अनुसार तथा उससे दबाव व प्रभाव में कार्य करते हैं।

अंकेक्षण योजना

(Audit Plan)

सफल अंकेक्षण के लिए यह आवश्यक है कि अंकेक्षण पूर्व निश्चित योजना व विवेक से किया जाए। अंकेक्षण करते समय अंकेक्षक को अनेक समस्याओं के सामना करना पड़ता है अतः उसे अंकेक्षण प्रारम्भ करने से पूर्व उन सब समस्याओं पर विचार कर लेना चाहिए जो अंकेक्षण के समय उदय होती हैं। इस प्रकार अंकेक्षक को अंकेक्षण की योजना बनाने से पूर्व अनेक बातों का ज्ञान प्राप्त होता है जिनमें से प्रमुख निम्न हैं–

अंकेक्षण कार्यक्रम

(Audit Programme)

अंकेक्षण का कार्यक्रम एक लिखित प्रोग्राम होता है जिसमें अंकेक्षक तथा उसके सहयोगियों द्वारा अंकेक्षण का कार्य करने की सम्पूर्ण योजना होती है। अंकेक्षण कार्यक्रम एक प्रकार की सूची होती है जिसके द्वारा अंकेक्षण का कार्य होता है।

डब्ल्यू. डब्ल्यू. बिग के अनुसार–"एकरूपता लाने और यह निर्णय करने के लिए लेखांकन के सम्पूर्ण कार्यक्रम का अंकेक्षण हो जाए, एक कार्यक्रम बनाया जाता है जिसे 'अंकेक्षण कार्यक्रम' कहा जाता है। इसमें प्रत्येक कर्मचारी अपने हस्ताक्षर अपने भाग के कार्य पर करता है।"

विशेषताएँ

उपर्युक्त परिभाषा से अंकेक्षण कार्यक्रम की निम्न विशेषताओं (characteristics) का ज्ञान होता है–

1. **लिखित** – अंकेक्षण कार्यक्रम लिखित होना चाहिए जिससे भविष्य में अंकेक्षक व उसके सहयोगियों में किसी कार्य के बारे में मतभेद न हो।
2. **स्पष्ट** – कार्यक्रम इतना सरल व स्पष्ट होना चाहिए कि अंकेक्षक स्टाफ का प्रत्येक सदस्य उसे आसानी से समझ सके। यदि कार्यक्रम स्पष्ट नहीं होगा तो सहयोगियों को समय–समय पर अंकेक्षक से सम्पर्क स्थापित कर बार–बार पूछना होगा और इस प्रकार समय का दुरूपयोग होगा।
3. **लेखांकन विधि के अनुसार ही कार्यक्रम बनाना** – अंकेक्षण कार्यक्रम लेखांकन प्रणाली के अनुसार ही होना चाहिए जिससे कार्य बिना किसी बाधा के तेजी से चलता रहे लेन–देन के छूटने का भय न हो।
4. **कार्य-विभाजन** – अंकेक्षक को चाहिए कि उसके अपने स्टाफ में कार्य–विभाजन व्यवसाय में स्थित विभागों के अनुसार होना चाहिए। इसके अतिरिक्त कार्य का विभाजन करते समय प्रत्येक विभाग के लेखों का भी ध्यान रखना चाहिए।
5. **पुनः जाँच** – अंकेक्षण कार्यक्रम की समय–समय पर जाँच करते रहना चाहिए जिससे उसमें समय–समय पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सके।
6. **कार्यक्षेत्र के अनुसार** – अंकेक्षण कार्यक्रम के अनुसार कार्य करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अंकेक्षक के स्टाफ के सदस्य कोई ऐसा कार्य न करें जो अंकेक्षक के कार्यक्षेत्र से बाहर हो।

अंकेक्षक कार्यक्रम के लाभ

(Advantages of Audit Programme)

1. **योग्यतानुसार कार्य-विभाजन** – अंकेक्षण कार्यक्रम बनाने से अंकेक्षक अपने स्टाफ के सदस्यों को उनकी योग्यतानुसार कार्य सौंपता है इससे कार्य उच्च कोटि का होता है तथा जल्दी होता है क्योंकि अपने कार्य में कुशल व्यक्ति अपने कार्य को बहुत जल्दी पूरा करता है।
2. **उत्तरदायित्व निश्चित करना** – अंकेक्षण कार्यक्रम के द्वारा प्रत्येक कर्मचारी को उसके द्वारा किए जाने वाले कार्य के प्रति उत्तरदायी बना दिया जाता है जिससे वह व्यक्ति अपने कार्य को बड़ी ही समझदारी व सावधानी से करता है क्योंकि त्रुटि होने पर वही व्यक्ति उसकी हानि के लिए उत्तरदायी होगा।
3. **कार्य-नियन्त्रण में सुविधा** – अंकेक्षण के कार्य को अनेक व्यक्तियों में उनकी योग्यतानुसार बाँट दिया जाता है जिससे अंकेक्षक उनके कार्य पर आसानी से नियन्त्रण रख सकता है तथा त्रुटि के लिए सम्बन्धित व्यक्ति को दोषी ठहरा सकता है।
4. **कर्मचारियों के बदलने के अंकेक्षण-कार्य पर प्रभाव न होना** – चूँकि अंकेक्षण कार्यक्रम द्वारा कार्य–विभिन्न कर्मचारियों में बाँट दिया जाता है इसलिए किसी कर्मचारी के परिवर्तन की दशा में अंकेक्षण के कार्य पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि नया व्यक्ति पुराने व्यक्ति के कार्य को आसानी से ग्रहण कर सकता है।

5. **अंकेक्षक के व्यवसाय में वद्धि** – अंकेक्षण कार्यक्रम के द्वारा अंकेक्षक अपने कार्य को इस प्रकार व्यवस्थित करता है कि वह अन्य दूसरी संस्थाओं के कार्य को भी आसानी से चला सके। इस प्रकार वह अपने कार्य में अधिकाधिक वद्धि कर सकता है।

अंकेक्षण कार्यक्रम की हानियाँ

(Demerits of Audit Programme)

अंकेक्षण–कार्यक्रम से निम्नलिखित हानियाँ हो सकती हैं–

1. **स्वतंत्र निर्णय का अभाव** – अंकेक्षक के कर्मचारी बने–बनाए कार्यक्रम के अनुसार कार्य करते हैं। वे परिस्थितिनुसार अपनी सूझ–बूझ का प्रयोग करते हुए अंकेक्षण कार्य को और अधिक सुचारू रूप से करने का स्वतंत्र निर्णय नहीं ले पाते।
2. **कार्य का यन्त्रवत् होना** – अंकेक्षण कार्य लिपिक कार्य की भाँति यन्त्रवत् हो जाता है जिस कारण स्टाफ को नीरसता अनुभव होने लगती है और वे कार्य को अधिक कुशलता तथा ध्यानपूर्वक नहीं कर पाते।
3. **नैतिक प्रभाव में कमी** – एकरूपता के कारण संस्था के कर्मचारियों को पहले से पता होता है कि कौन–कौन –सी मदों का अंकेक्षण होगा? अतः वे पहले से ही सोच–समझकर कार्य करते हैं। अंकेक्षण का जो नैतिक प्रभाव कर्मचारियों पर होना चाहिए, वह नहीं रहता।
4. **उत्साह कम** – कार्य–कुशल क्लर्क का काम करने का उत्साह कम होता है क्योंकि वह एक निश्चित कार्यक्रम के अनुसार ही कार्य करता है। इसमें वह कोई सुझाव नहीं दे सकता।

कार्य प्रणाली

(Procedure of Work)

अंकेक्षण कार्यक्रम बन जाने के पश्चात् अंकेक्षण का वास्तविक कार्य प्रारम्भ करता है। कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व वह कुछ बातों के लिए नियोक्ता को आदेश देता है जैसे प्रमाणक, प्रारम्भिक लेखे की पुस्तकें, अन्तिम खाते, विभिन्न प्रकार की आवश्यक सूचियाँ, अन्तिम रहतिया आदि। उपर्युक्त सभी बातें पूरी होने पर वह अपने कर्मचारियों को जिन्हें कि ऑडिट क्लर्क कहते हैं कार्य के लिए भेजता है; इन क्लर्कों की भी दो भागों में विभक्त किया जाता है–वरिष्ठ (Senior) एवं कनिष्ठ (Junior)। छोटे क्लर्क बड़े क्लर्कों की देख–रेख में कार्य करते हैं। अंकेक्षक का कार्य प्रायः इन्हीं क्लर्कों के द्वारा किया जाता है और अंकेक्षक केवल इसके द्वारा किए गए कार्यों की जाँच करता है।

अंकेक्षक के कर्मचारी अपना कार्य भिन्न–भिन्न विधियों के आधार पर करते हैं। कुछ लेन–देनों की विस्तत जाँच की जाती है। कुछ की नैत्यक जाँच तथा कुछ की परीक्षण जाँच की जाती है। जब कर्मचारी प्रत्येक व्यवहार की गहरी जाँच करते हैं तो उसे गहरी जाँच कहा जाता है यदि किसी संस्था में आन्तरिक निरीक्षण की प्रथा संतोषप्रद होती है तो वहाँ परीक्षण जाँच से ही काम चल जाता है अन्य परिसिथितियों में लेन–देन की गहरी जाँच की जाती है। जाँच के दौरान जो भी त्रुटियाँ नजर में आती हैं उन्हें एक पुस्तक में लिख लिया जाता है जिसे अंकेक्षण पुस्तक कहते हैं इसका विस्तत विवरण नीचे दिया गया है

अंकेक्षण पुस्तिका

(Audit Note Book)

अंकेक्षण पुस्तिका एक ऐसी पुस्तिका या रजिस्टर है जिसमें अंकेक्षक अंकेक्षण करते समय किसी भी बात को जिसको कि वह याद रखना चाहता है या भविष्य के लिए उपयोगी समझता है, लिख लेता है। प्रत्येक संस्था के अंकेक्षण के लिए अंकेक्षक अलग–अलग अंकेक्षण पुस्तिका रखता है जिसमें वह संस्था विशेष के महत्वपूर्ण तथ्यों की संक्षिप्त टिप्पणियाँ नोट कर लेता है। यह पुस्तिका भविष्य में उसे पर्याप्त सहायता प्रदान करती है। विशेषतः किसी संस्था का दोबारा अंकेक्षण अनेक महत्वपूर्ण बातों को इस पुस्तिका में लिख लेता है जो आवश्यकता पड़ने पर न्यायालय में भी प्रस्तुत की जा सकती और अपने ऊपर लगाये गये लापरवाही के दोषों से बचता है।

इस पुस्तक में प्रायः सूचनाएँ लिखी जाती हैं–

1. समस्त वैधानिक प्रलेखों का संक्षिप्त सार जैसे–पार्षद् सीमानियम, अन्तर्नियम, कार्यवाही पुस्तक (Minutes), अनुबंध पत्र आदि कम्पनी की दशा में तथा साझेदारी अनुबंध पत्र आदि कम्पनी की दशा में तथा साझेदारी अनुबंध साझेदारी की दशा में।
2. अंकेक्षण कार्यक्रम की प्रति।
3. अंकेक्षण के सम्बन्ध में किये गए वास्तविक कार्य का उचित ब्यौरा।
4. व्यवसाय में प्रयुक्त सभी तकनीकी मामले तथा शब्दावलियाँ।

अंकेक्षण के काम-काज से सम्बन्धित कागज-पत्र

(Auditor's Working Papers)

अंकेक्षक अपना कार्य करते समय बहुत–से कागजों का प्रयोग करता है। इनमें से कुछ तो नियोक्ता को देने पड़ते हैं और कुछ उसकी स्वयं की आवश्यकता के होते हैं जिन्हें अंकेक्षक अपने पास रखता है। कारण, यदि भविष्य में नियोक्ता उस पर दावा करे कि उसने असावधानी से कार्य किया है, तो वे उसके बचाव में सहायक हो सकेंगे। इन्हीं कागज–पत्रों को अंकेक्षण सम्बन्धी काम–काज के कागज कहा जाता है। ये कागज–पत्र निम्नाकिंत हैं–

1. नियोक्ता व अंकेक्षण में होने वाला अनुबंध।
2. अंकेक्षित व्यवसाय की विशेषताएँ।
3. अंकेक्षण के सम्बन्ध में आए हुए पत्रों तथा भेजे हुए पत्रों की प्रतियाँ।
4. अंकेक्षण कार्यक्रम।
5. प्रलेखों के वे भाग जो अंकेक्षक ने प्रतिलिपि करके अपने पास रख लिए हैं।
6. अंकेक्षण पुस्तिका।
7. अंकेक्षण रिपोर्ट की प्रतिलिपि।
8. अंकेक्षण कार्य के सम्बन्ध में प्राप्त जानकारी एवं सूचनाएँ।
9. वे कागज, जिन पर अंकेक्षक ने गुणा, भाग, जोड़–बाकी आदि किए।
10. संस्था के नियमों या अन्तर्नियमों की प्रतिलिपि या उनके महत्वपूर्ण अंश।
11. प्रबन्धकों की बैठकों की महत्वपूर्ण कार्यवाही की प्रतिलिपि।
12. अन्य कोई कागज, जो अंकेक्षण का कार्य करते समय प्रयोग में लाया गया हो।

अंकेक्षक कार्यक्रम के उद्देश्य

(Objectives of Audit Programme)

1. **प्रमाण के रूप में** – उपर्युक्त पत्रों को यदि रखा जाता है तो भविष्य में होने वाले कानूनी विवाद अथवा अदालती कार्यवाही के समय इन्हें प्रमाण के रूप में दिखाया जा सकता है।
2. **भविष्य की योजना बनाने के लिए**–भविष्य की योजना बनाने में पिछले सभी लेखपत्र अत्यन्त सहायक होते हैं और सत्य तो है कि किसी भी योजना का आधार गत वर्षों के कार्यपत्र ही होते हैं।
3. **वैधानिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु**–व्यापार के अन्तर्गत बहुत से कार्यपत्रों की आवश्यकता वैधानिक रूप से होती है जैसे, कर चुकाने के लिए, कोई लाइसेंस आदि प्राप्त करने के लिए, स्कंध विनिमय के लिए तथा अनेक आवश्यकताओं के लिए विभिन्न कार्यपत्रों की आवश्यकता होती है।
4. **कर्मचारियों के कार्यों का मूल्यांकन एवं नियंत्रण**– अंकेक्षक का स्टॉफ लेखों की जाँच के समय अनेक कार्यपत्रों को देखकर ही इस बात का अनुमान लगा लेता है कि उसके कर्मचारी कितनी कार्यक्षमता से कार्य कर रहे हैं।

अच्छे कार्यपत्रों की विशेषताएँ

(Essentials of Good Working Papers)

1. कार्यपत्रों में सभी आवश्यक सूचनाएँ होनी चाहिएँ जिससे वे अधिकतम उपयोगी सिद्ध हो सकें। अनावश्यक तथ्यों को कार्यपत्रों में सम्मिलित नहीं करना चाहिए।
2. कार्यपत्रों में तथ्यों को स्पष्ट रूप से लिखना चाहिए।
3. तथ्य पाठकों की जल्दी समझ में आने चाहिए, जैसे आवश्यक स्थानों पर दी गई सूचियाँ अपने आप में साफ–साफ होनी चाहिएँ जिससे आगे अनेक बातों के सम्बन्ध में परेशानी न उठानी पड़े।
4. कार्य–पत्रों को इस प्रकार से क्रम में रखना चाहिए किसी भी विशेष मामले को शीघ्र ढूढ़ा जा सके। यदि ये क्रम से नहीं रखे गए हैं तो किसी भी तथ्य का पता लगाने में देर लगाने में देर लगेगी और रिपोर्ट पर इसका प्रभाव पड़ेगा।

अंकेक्षक व्यापार की प्रकृति तथा अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अंकेक्षण–प्रक्रिया का चुनाव करता है। वह व्यवसाय की सम्पत्तियों, दायित्वों तथा अन्य मदों के बारे में नियोक्ता से विभिन्न सूचनाएँ तथा विवरण–पत्र माँगता है तथा इसकी सहायता से अंकेक्षण प्रविधियों (Audit Techniques) का प्रयोग करते हुए जाँच का कार्य करता है।

अंकेक्षण प्राविधि

(Audit Techniques)

अंकेक्षण प्राविधियों के अर्न्तगत वे सब कार्य सम्मिलित हैं, जो अंकेक्षक अंकेक्षण करने के विभिन्न सबूतों को प्राप्त करने में अपनाता है। जैसे–नैत्यक जाँच, परीक्षण जाँच।

नैत्यक जाँच

(Routing Checking)

व्यापारिक संस्था का आकार अथवा उसका संगठन या स्वभाव कैसा भी हो कुछ पुस्तकें तथा लेखे तो प्रत्येक संस्था को रखने पड़ते है। इन पुस्तकों तथा लेखों की जाँच नैत्यक जाँच कहलाती है। नैत्यक जाँच में निम्नलिखित कार्य आते हैं–

1. प्रारम्भिक लेखा–पुस्तकों के समस्त जोड़ों, उप–जोड़ों गणनाओं, अगले पष्ट पर ले जाए गए (Carried forward) आदि की जाँच करना।
2. खाता–बही में की गई खतौनी की जाँच करना।
3. खातों के जोड़, अगले पष्ठ पर लाना तथा निकाले हुए शेषों की जाँच करना।
4. खातों के शेषों के आधार पर बनाए गए तलपट में लिखे आँकड़ों की जाँच करना।

नैत्यक जाँच में प्रयोग होने वाले चिह्न) - नैत्यक जाँच में जो चिह्न प्रयोग किए जाते हैं उन्हें टिक मार्क (Tick Mark) या चैक मार्क (Check Mark) कहा जाता है। इन चिह्नों को–

1. छोटा तथा स्पष्ट होना चाहिए।
2. भिन्न–भिन्न क्रियाओं के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के चिह्न प्रयोग करने चाहिए।
3. लेखों वाले रंग से इनका रंग भिन्न होना चाहिए।
4. चिह्नों का आशय गुप्त रखना चाहिए।
5. प्रति वर्ष चिन्हों के रंगों को बदलना अच्छा है।

नैत्यक जाँच करने के लिए विभिन्न प्रकार में लाए जाते हैं, अतः कुछ लोग इसे चिह्न लगाने का कार्य (Tick work) और कुछ इन चिह्नों को जाँच के निशान (Check marks) कहते हैं।

चिह्नों का स्थान - चिह्न किस स्थान पर लगाए जाँए यह महत्वपूर्ण है। साधारणतया पोस्टिंग के सत्यापन के लिए चिह्न उस राशि की बाँए ओर लगाया जाता है जिसे जाँचा जा चुका है और इस राशि की प्रमाणन के साथ जाँच करने के लिए दाहिनी ओर चिह्न लगाया जाता है। जोड़ों की जाँच होने पर जोड़ के नीचे चिह्न लगाया जाता है। यह अति आवश्यक है कि चिह्नों के स्थान के बारे में पहले से ही निर्णय ले लिया जाए।

अंकेक्षण करते समय चिह्नों का उसी प्रकार ध्यान रखना चाहिए जैसा चलते समय सड़क के बारे में, बातें करते समय शब्दों के बारे में तथा क्रय करते समय जेब का रखा जाता है। इन सभी दशाओं में थोड़ी–सी भी लापरवाही काफी उलझनें एवं कठिनाई पैदा कर देती है।

इस जाँच का प्रमुख उद्देश्य प्रारम्भिक पुस्तकों एवं खाता–बहियों के लेखे की गणित सम्बन्धी शुद्धता की जाँच करना है तथा यह भी देखना है कि लेखे नियमानुसार किए गए है या नहीं। इससे जाँच के बाद परिवर्तित किए गए अंकों का भी पता चलता है।

नैत्यक जाँच के गुण

(Advantages)

1. **सरलता** – नैत्यक जाँच इतनी सरल है कि इसे कोई भी व्यक्ति आसानी से कर सकता है। इसलिए यह जाँच प्रायः कनिष्ठ क्लर्कों द्वारा करवाई जाती है।
2. **लौकिक शुद्धता का ज्ञान** – इस जाँच के द्वारा प्रारम्भिक लेखों की पुस्तको में गणित सम्बन्धी त्रुटियाँ का ज्ञान शीघ्र हो जाता है।
3. **खतौनी की जाँच** – इस जाँच के द्वारा यह भी पता लगाया जा सकता है कि प्रारम्भिक पुस्तकों से खाता बही में जो खतौनी की गई है वह ठीक है या नहीं।
4. **त्रुटियों व छल-कपट का पता लगाना** – नैत्यक जाँच के द्वारा छोटी–मोटी त्रुटियाँ व छल–कपट शीघ्र ही पकड़ में आ जाते हैं।
5. **अंक परिवर्तन का पता लगाना** – नैत्यक जाँच में अंकेक्षक अनेक प्रकार के चिह्नों का प्रयोग करता है जिससे यदि अंकेक्षण के उपरान्त किसी अंक में कोई परिवर्तन किया जाता है तो वह सहज ही पकड़ में आ जाते है।

दोष

(Disadvantages)

1. **यंत्रवत्** – यह जाँच वास्तव में कोई विशेष जाँच नहीं है वरन् पूर्णतः यंत्रवत् होती है इसलिए कर्मचारी इसमें रूचि से कार्य नहीं करते।
2. **चतुराई से किए गए छल-कपट का पता न लगना** – नैत्यक जाँच बहुत ही साधारण जाँच है और इसमें उन छल–कपटों का पता नहीं लग सकता जो अधिक चतुराई से किए जाते हैं।
3. **सैद्धान्तिक अशुद्धियों का पता न लगना** - नैत्यक जाँच से उन सैद्धान्तिक अशुद्धियों का पता नहीं लग सकता जो सैद्धान्तिक अशुद्धियाँ होती हैं, जैसे पूँजीगत व आयगत का अन्तर।
4. **कार्य में शीघ्रता व लापरवाही** – चूँकि नैत्यक जाँच का कार्य शीघ्रता व लापरवाही से किया जाता है इसलिए इसमें त्रुटियाँ रह जाने की आशंका रहती है जिससे बाद की जाँच व्यर्थ जाती है।

निष्कर्ष – नैत्यक जाँच अंकेक्षण कार्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है इसी के आधार पर बाद की जाँच होती है। यदि नैत्यक जाँच का कार्य वरिष्ठ कर्मचारी की देख–रेख में कराया जाए तो इसकी हानियों से बचा जा सकता है। अंकेक्षक किसी लेन–देन की पूर्ण जाँच करे या केवल कुछ हिस्सों की, यह इस बात पर निर्भर है कि उस व्यवसाय में अंकेक्षण निरीक्षण की प्रथा कहाँ तक सफल हुई।

परीक्षण जाँच

(Test Checking)

यदि किसी संस्था में आंतरिक निरीक्षण प्रथा (Internal Check System) संतोषजनक है तो अंकेक्षक को विस्तत एवं अत्यंत सावधानी से जाँच करने की आवश्यकता नहीं रह जाती वरन् जहाँ–तहाँ कुछ लेखों को चुनकर, उनकी जाँच करने से ही शेष सभी खातों व लेखों को सही मान सकता है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यदि चुनी हुई व लेखें सही है तो लेखों प्रविष्टियाँ ठीक होंगे। इसी आधार पर अंकेक्षण करने को परीक्षण जाँच (Test Checking) कहते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि परीक्षण जाँच में बहियों के सभी लेखों की जाँच न करके केवल कुछ चुने हुए लेखों की ही जाँच की जाती है। उनके ठीक होने पर यह मान लिया जाता है कि अन्य लेखे भी ठीक हैं। यदि परीक्षण जाँच के समय त्रुटियाँ प्रकट होती हैं तो इन त्रुटियों के आधार पर परीक्षण जाँच का क्षेत्र बढ़ाया जा सकता है।

परीक्षण जाँच के लाभ

(Advantages)

1. **समय की बचत होना** – समय बहुत कम लगता है और व्यर्थ में शक्ति नष्ट नहीं होती।
2. **फल सही होने की सम्भावना** – फल प्रायः ठीक ही होता है, क्योंकि कर्मचारी वर्ग समझता है कि उनकी पुस्तकों में से कोई भी लेखे जाँचे जा सकते हैं। अतः वे प्रत्येक लेखे को निश्चित रूप से ठीक लिखते हैं।
3. **कई व्यवसायों का अंकेक्षण सम्भव होना** – अंकेक्षक कई व्यवसायों का अंकेक्षण एक साथ कर सकता है क्योंकि इस जाँच के द्वारा कम समय में अधिक कार्य किया जा सकता है।
4. **आन्तरिक निरीक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया जाना** – चूँकि यह जाँच वहीं प्रयोग में लाई जाती है जहाँ आन्तरिक निरीक्षण की प्रथा संतोषजनक होती है अतः इस प्रथा की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। यह प्रथा जितनी ही अच्छी होगी कार्य उतना ही संतोषप्रद रहेगा।

परीक्षण जाँच की हानियाँ

(Disadvantages)

1. **रिपोर्ट का असंतोषजनक होना** – इस जाँच के आधार पर बनायी गई रिपोर्ट सन्तोषजनक नहीं होती है क्योंकि यह रिपोर्ट सम्पूर्ण लेखों की गहन जाँच के आधार पर नहीं दी जाती है।
2. **त्रुटियों तथा कपटों का प्रकट न होना** – चूँकि इस जाँच में कुछ की लेखों की जाँच की जाती है इसलिए यह सम्भव है कि त्रुटियाँ चतुराई के साथ किए गए छल–कपट अंकेक्षक के सामने न आ सके।
3. **कार्य असावधानी से किया जाना** – नियोक्ता के कर्मचारी अपना कार्य असावधानी से करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि उनके लिखे गए सभी लेखे अंकेक्षक द्वारा नहीं देखे जाएँगे।

परीक्षण जाँच एवं अंकेक्षक का उत्तरदायित्व

(Test Checking and Auditor's Responsibility)

यह बात पूर्णतया अंकेक्षक की इच्छा पर निर्भर है कि वह परीक्षण जाँच–प्रणाली का सहारा ले अथवा नहीं। इन्स्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउन्टेण्ट्स ऑफ इण्डिया द्वारा परीक्षण जाँच अपनाने पर कोई आपत्ति नहीं की गई है। परन्तु परीक्षण प्रणाली अपनाने के कारण हिसाब–किताब में अशुद्धियाँ अथवा छल–कपट छूट जाने पर अंकेक्षक को दोषमुक्त करने का कोई प्रावधान नहीं है। यदि परीक्षण जाँच अपनाने के कारण नियोक्ता को हानि होती है तथा

अंकेक्षक के विरूद्ध न्यायालय में लापरवाही का मुकदमा चलाया जाता है, तो अंकेक्षक अपने बचाव में यह तर्क नहीं दे सकता कि उसने चूँकि परीक्षण जाँच की थी अतः वह दोषमुक्त है।

सावधानियाँ

(Precautions)

परीक्षण जाँच करते समय यदि निम्न सावधानियाँ बरती जाएँ तो परीक्षण जाँच संतोषजनक एवं प्रभावशाली हो सकती है–

1. **प्रतिनिधि लेखों को चुनना (To Select Representative Entries):** परीक्षण जाँच हेतु जो भी मदें चुनी जाँए वह सम्पूर्ण लेखों का प्रतिनिधित्व करती हुई होनी चाहिए तभी परीक्षण जाँच से सही परिणाम निकाले जा सकते हैं।
2. **प्रत्येक कर्मचारी के कार्य की जाँच (Each Employee's Work should be Subjected to Test):** मदों के चुनाव में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक कर्मचारी द्वारा किए गए कार्य में से कुछ–न–कुछ मदें अवश्य चुननी चाहिएँ जिससे प्रत्येक कर्मचारी के कार्य की जाँच हो जाए।
3. **प्रारम्भ और अन्त के लेखों को चुनना (Selection of Entries of Different Period):** जिन प्रविष्टियों को परीक्षण जाँच के लिए चुना जाए वे विभिन्न समय की होनी चाहिएँ अर्थात प्रारम्भ एवं अन्त की होनी चाहिए जिससे ये मदें पूरे वर्ष का प्रतिनिधित्व करें।
4. **प्रारम्भ और अन्त के लेखों को चुनना (Entries of the Opening and Closing Months should be Largely):** जिस अवधि के लेखों का अंकेक्षण हो रहा है, उसके प्रारम्भ और अन्त के लेखों को भली–भांति जाँचना चाहिए क्योंकि अधिकतर गड़बड़ी अन्त के दिनों में ही की जाती हैं। प्रारम्भ और अन्त के लेखों की जाँच त्रुटियाँ व कपटों के पकड़ने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।
5. **रोकड़ बही एवं हस्तांतरण बही की पूर्ण जाँच (Through Vouching of Cash Book and Transfer Books):** रोकड़ बही के प्रमाणन और जर्नल के हस्तांतरण की जाँच परीक्षण न करके विस्तत जाँच करनी चाहिए।
6. **शंकीय मदों की पूर्ण जाँच (Complete Checking of Doubtful Items):** यदि किसी मद पर अंकेक्षक को शक हो कि उसमें गड़बड़ी की गई है तो उस मद की परीक्षण जाँच न होकर पूर्ण जाँच होनी चाहिए।

जाने वाले व्ययों का रुपया सीधे काटने का अधिकार नहीं देता चाहिए अर्थात उनके व्ययों का भुगतान अलग से करना चाहिए तथा ग्राहकों से प्राप्त रोकड़ अलग लेनी चाहिए।

(iii) यात्री एजेन्टों को इस बात का निर्देश देना चाहिए कि वे ग्राहकों से प्राप्त धन राशि को प्रतिदिन रोकड़िये के पास जमा कराएँ और यदि वे बाहर हों तो उन शहरों में स्थित बैंको में जहाँ संस्था का खाता हो जमा करा दें और यदि उन शहरों में संस्था का खाता न हो तो प्रतिदिन की प्राप्ति को डाक द्वारा मुख्य कार्यालय में भेज देना चाहिए।

(iv) यात्री एजेन्टों को इस बात का निर्देश देना चाहिए कि ग्राहकों से प्राप्त रकम की वे केवल कच्ची रसीद दें। पक्की रसीद बाद में मुख्य कार्यालय से ही भेजनी चाहिए।

(v) जिन ग्राहकों से रुपया प्राप्त नहीं हो रहा है उनके सम्बन्ध में एजेन्टों को यह आदेश देना चाहिए कि वे समय–समय पर इस बात की सूचना दें कि भुगतान प्राप्त करने में विलम्ब क्यों हो रहा है? ऐसे ग्राहकों के पास मुख्य कार्यालय को समय–समय पर तकाजा भी भेजते रहना चाहिए।

3. **डाक द्वारा बिक्री (Postal Sales)**: डाक द्वारा बिक्री से ग्राहकों को माल मिलने से पहले ही रकम अदा करनी पड़ती है, क्योंकि डाकिया माल की सुपुर्दगी तब तक नहीं करता है जब तक कि माल की कीमत ग्राहक से वसूल न कर ले। इसमें गड़बड़ी की संभावना बहुत कम रहती है। परन्तु यदि नियोक्ता के कर्मचारी बेईमान हों, तो वे प्राप्त रकम का गबन कर सकते है। अतः इस प्रकार की बिक्री में निम्नलिखित आंतरिक निरीक्षण की विधि अपनायी जानी चाहिए–

(i) ***वि. पी. पी. से भेजे हर माल का रजिस्टार रखना*** – अलग से डाक बिक्री (V.P.P. or Value Payable Post) का लेख रखना चाहिए और इस कार्य के लिए अलग से रजिस्टर बनाना चाहिए जिसमें डाक से प्राप्त रकम का लेख होना चाहिए।

(ii) ***डाकखाने से वापस आए हुए माल का लेखा*** – वी. पी. पी. रजिस्टार में वापस आए माल का लेखा रखना चाहिए

(iii) ***रोकड़ पुस्तक एवं वी. पी. पी. रजिस्टर की जाँच*** – इस रजिस्टार की जाँच बड़ी सतकर्ता तथा सावधानी से करनी चाहिए। यह अधिक अच्छा हो कि इसके जाँचने का दायित्व एक उच्च अधिकारी पर रखा जाए। वी.पी.पी. के लिए किए गए रोकड़–पुस्तक में लेखों की जाँच वी. पी. पी. रजिस्टार तथा ग्राहकों के आदेशों से की जानी चाहिए।

(iv) ***डाकखाने में व्यय का हिसाब*** – वी. पी. पी. द्वारा माल भेजने में डाकखाने के व्यय होते हैं। इनका उचित लिसाब न रखने पर कपट की संभवना रहती है।

नगद भुगतान

(Cash Payment)

रोकड़ बुक की जाँच पड़ताल के लिए भुगतानों को भली भाँति देखना चाहिए। इसकी जाँच के लिए निम्नलिखित विधियां हैं–

1. **चैक बुक उत्तरदायी अधिकारियों के पास होना** – चैक बुक को उत्तरदायी अधिकारियों के अधिकार में रखना चाहिए ताकि उसका दुरूपयोग न किया जा सके। जो चैक नष्ट कर दिए जाए या लिखने से गलत हो जाए उन्हें फाड़ना नहीं चाहिए।
2. **लेनदारों से पत्र व्यवहार करना** – लेनदारों को समय–समय पर विवरण पत्र भेजकर भुगतान की पुष्टि कराते रहना चाहिए।
3. **टिकट का प्रयोग होना** – यदि भुगतान 20 रु. से अधिक का है तो उसकी रसीद पर टिकट लगाकर पाने वाले के हस्ताक्षर कराने चाहिए।
4. **भुगतानों का निश्चित समय पर किया जाना**– कुछ भुगतान निश्चित समय के उपरांत किए जाते हैं। जहाँ तक सम्भव हो, उन्हें एक निश्चित तिथि पर ही करना चाहिए।
5. **खुदरा रोकड़ पुस्तक की जाँच** – खुरदा रोकड़ की रकम की जाँच सतर्कता से करनी चाहिए।
6. **बैंक समाधान विवरण** – बैंक की पास बुक से, बैंक खाने का समय–समय पर मिलान करते रहना चाहिए तथा बैंक समाधान विवरण तैयार करना चाहिए।

अध्याय-14

प्रमाणन, सम्पत्तियों तथा दायित्वों का सत्यापन (Vouching, Verification of Assets and Liabilities)

प्रमाणन

Vouching

अर्थ(Meaning)-जब कभी कोई वस्तु बाजार में क्रय की जाती है, तो विक्रेता वस्तु के साथ ही एक रसीद देता है, जिस पर वस्तु का विवरण, दर तथा कुल कीमत आदि लिखी होती है। अनेक व्यक्ति इस रसीद या कैशमीमों को फेंक देते हैं। परन्तु इसका लेखाकर्म में बहुत महत्त्व है। प्रत्येक व्यवसायी इसे सावधानी से रखता है क्योंकि उसके द्वारा की गई लेखांकन प्रविष्टियों (Entries) की सच्चाई का यही प्रमाण है। अंकेक्षक के लिए हिसाब–किताब की पुस्तकों के लेखों को प्रमाणित करना सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। अतः संस्था की लेखा–पुस्तकों में कोई भी ऐसी प्रविष्टि (Entry) न हो जिसके लिए प्रमाणक (Voucher) न हो जिसकी प्रविष्टि न की गई हो (There should be no entry without a voucher and no voucher without its entry)। इस प्रकार प्रमाणन, प्रमाणकों की सहायता से लेखा–पुस्तकों में की गई प्रतिष्टियों की जाँच है।

जब अंकेक्षक खातों की शुद्धता, सत्यता तथा पूर्णता के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट देता है, तो उसे देखना होता है कि हिसाब–किताब की पुस्तकों में किया हुआ प्रारम्भिक लेखा–पुस्तकों से अधिकत है और इसके पीछे कोई छल–कपट नहीं है। यही प्रमाणन (Vouching) कहलाता है।

जॉसेफ लंकास्टर के अनुसार–''साधारणतः यह समझा जाता है कि प्रमाणन लेखा–पुस्तकों की प्रविष्टियों के प्रमाणकों अथवा लेखा–साक्ष्यों की जाँच करता है। यद्यपि यह विचारधारा निर्मूल है, जिससे अंकेक्षक सन्तुष्ट हो जाए कि प्रविष्टि न केवल कागजी प्रमाण के आधार पर की गई है, बल्कि वह लेखा–पुस्तकों में भी ठीक लिखी गई है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने से निम्न विशेषताओं का ज्ञान होता है:.

1. **लेखों की जाँच प्रमाणकों से करना**– प्रमाणन के अन्तर्गत हिसाब–किताब की बहियों में किए गए लेखों की जाँच प्रमाणकों द्वारा की जाती है।
2. **प्रमाणकों की शुद्धता की जाँच करना**– प्रमाणन के अन्तर्गत इस बात की भी जाँच की जाती है कि जिन प्रमाणकों की सहायता से लेखे किए गए हैं, वे प्रमाणक ठीक एवं सत्य हैं।
3. **लेखों का ठीक होना**-प्रमाणन का उद्देश्य यह है कि बहियों में किए गए लेखे, ठीक उचित एंव अधिकत हैं।

प्रमाणन के उद्देश्य

(Objects of Vouching)

1. **लेखों की शुद्धता एवं सत्यता प्रमाणित करना**– प्रमाणन का मुख्य उद्देश्य यह देखना है कि जो लेखे हिसाब–किताब की बहियों में लिखे गए हैं वे सत्य हैं या नहीं। प्रत्येक लेखे से सम्बन्धित उचित प्रमाणक का होना, लेखे की सत्यता का प्रमाण है।

2. **व्यापारिक लेन-देन के लिखे जाने का ज्ञान**– प्रमाणन के द्वारा अंकेक्षक को यह विश्वास हो जाता है कि ऐसा कोई भी लेन–देन पुस्तकों में लिखने से छूटा नहीं है जो व्यापार से सम्बन्धित है।

3. **व्यापार से सम्बन्ध न रखने वाले लेखों का ज्ञान**– प्रमाणन का एक उद्देश्य यह जानना भी है कि कहीं ऐसे लेन–देन तो पुस्तकों में नहीं लिखे गए जिनका व्यापार से कोई सम्बन्ध ही न हो जैसे यदि कोई लेन–देन व्यापार से सम्बन्धित न होकर व्यापारी के व्यक्तिगत खर्चे से है और उसका लेखा व्यापारिक पुस्तकों में कर लिया गया है।

प्रमाणन का महत्व
(Importance of Vouching)

प्रमाणन के महत्व के सम्बन्ध में डा. पॉला ने लिखा है "प्रमाणन अंकेक्षण का सार है और अंकेक्षक की पूरी सफलता इस पर निर्भर है कि प्रमाणन का कार्य कितनी चतुरता तथा पूर्णता के साथ किया गया है।"

उपर्युक्त विचार प्रमाणन के महत्व पर प्रकाश डालता है। जब प्रमाणन द्वारा जाँच कर ली जाती है तो यह विश्वास हो जाता है कि व्यापार से सम्बन्धित कोई भी सौदा लिखने से नहीं छूटा है तथा जो सौदे व्यापार से सम्बन्धित नहीं है उन्हें लिखा नहीं गया है। अन्य शब्दों में, जो भी सौदे लिखे गये हैं वे उचित, ठीक तथा अधिकृत हैं।

यदि प्रमाणन का कार्य सजीवता, सतर्कता और विवेक से किया जाए, तो त्रुटियों का ही नहीं वरन् कुशलतापूर्वक किए गए कपटों का भी अंकेक्षक पता लगा सकता है और अंकेक्षण कार्य भी अधिक विश्वास के साथ एवं सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

प्रमाणन-अंकेक्षण की रीढ़ की हड्डी
(Vouching-Backbone of Auditing)

प्रमाणन के महत्व के बारे में कुछ विद्वानों का तो यह मत है कि "प्रमाणन अंकेक्षण की रीढ़ की हड्डी है।" यह कथन पूर्णतः सत्य प्रतीत होता है। क्योंकि जिस प्रकार शरीर में रीढ़ की हड्डी के टूटने या कमजोर होने पर मानव शरीर की सब क्रियाएं प्रभावित होती हैं और मनुष्य अपने इच्छित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकता। हड्डी टूटने पर न तो मनुष्य ठीक प्रकार से चल सकता और न ही खड़ा हो सकता है। इसी प्रकार अंकेक्षण में प्रमाणन के कमजोर होने से या न होने से अंकेक्षक अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। प्रमाणन जितना भी अच्छा तथा लगन के साथ किया जाता है उतना ही अंकेक्षण सरल, सुविधाजनक तथा विश्वसनीय हो जाता है।

दूसरे, रीढ़ की हड्डी बहुत ही सख्त होती है। इसी प्रकार प्रमाणन का कार्य भी पूर्णतः ठोस होना चाहिए, जिससे अंकेक्षण अपने इच्छित लक्ष्यों की प्राप्ति कर सके।

प्रमाणक
(Voucher)

हिसाव–किताब की पुस्तकों में किए गए लेखों की सत्यता का प्रमाण देने वाले प्रलेखों को ही प्रमाणन कहते हैं। ये वे प्रलेखीय साक्ष्य (Documentary evidences) है जो किसी दावा या अन्य तथ्य के विवरण अथवा खाता बहियों में लेखों का समर्थन करें। सामान्यतः यह समझा जाता है कि प्रमाणक रूपए के भुगतान के लिए प्राप्त रसीद है किन्तु आधुनिक लेखांकन के दष्टिकोण से इसके अन्तर्गत ''रोकड़ के वास्तविक भुगतान के लिए प्राप्त साक्ष्य के अतिरिक्त वे साक्ष्य भी आते है जिससे यह ज्ञात हो सके कि प्रयोजन से रोकड़ का भुगतान किया जा रहा है।'' प्रमाणकों को व्यवहार में हम कई रूपों में देखते हैं। यह एक रसीद, अनुबंध पत्र, बीजक, जमा–पत्र व नाम–पत्र मजदूरी–सूची,

बिल तथा अन्य पत्र–व्यवहार आदि के रूप में पाये जाते हैं। विभिन्न विद्वानों ने प्रमाणक की परिभाषा निम्न प्रकार दी है:–

आर्थर डब्ल्यू. होम्स् के अनुसार–सौदे की सत्यता के प्रमाण में आने वाला कोई भी पत्र प्रमाणक कहलाता है।"

प्रमाणकों के भेद

(Kinds of Vouchers)

प्रमाणकों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है:–

1. **मूल प्रमाणक (Primary Vouchers)**: हिसाब–किताब के लेखों से सम्बन्धित जो वास्तविक अथवा भौतिक लिखित प्रमाण होते हैं, उन्हें मूल प्रमाणक कहते हैं। जैसा कि यदि कोई व्यक्ति भुगतान करता है तो उसे जो रूपए की रसीद मिलती है वह भुगतान का मूल प्रमाणक है।
2. **गौण प्रमाणक (Secondary Vouchers)**: यदि मूल प्रमाणक खो जाता है, खराब हो जाता है अथवा अंकेक्षण को किसी प्रमाणक पर सन्देह हो जाता है और उसके लिए वह अन्य प्रमाणक चाहता है तो ऐसी दशा में फिर से पत्र–व्यवहार करके प्रमाणक प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त किया गया प्रमाणक गौण प्रमाणक कहलाता है क्योंकि यह मूल प्रमाणक की प्रतिलिपि होती है।

प्रमाणकों की जाँच करते समय ध्यान देने योग्य बातें

(Special Points While Examining Vouchers)

अंकेक्षक को प्रमाणकों की जाँच करते समय निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए–

1. प्रमाणक नियोक्ता के नाम में तथा व्यापार से सम्बन्धित है।
2. यदि कोई प्रमाणक किसी संचालक, साझेदार अथवा प्रबन्ध से निजी नाम में है तो यह देखना चाहिए कि इसका सम्बन्ध व्यापार से ही है।
3. प्रमाणक उसी व्यापारिक वर्ष से सम्बन्धित है।
4. प्रमाणक छपे हुए फार्म पर हो, तारीख डाला हुआ हो, रकम अंकों तथा शब्दों में स्पष्ट लिखी हो, रसीदी टिकट (यदि राशि 20 रूपये से अधिक हो) लगा हो तथा उचित व्यक्ति के द्वारा हस्ताक्षर किया गया होना चाहिए।
5. प्रमाणक में लिखा विवरण लेख पुस्तकों के विवरण से मिलता हो।
6. प्रमाणक का भुगतान संस्था के उचित अधिकारी द्वारा पास कर दिया गया हो।
7. जिस प्रमाणक के विवरण की जाँच कर ली जाए, उसे रबड़ की मुहर लगाकर विशेष चिन्ह से रद्द कर देना याहिए।
8. प्रमाणकों पर क्रम संख्या पड़ी होनी चाहिए तथा इन्हें किसी आधार पर फाइल किया हुआ मिलना चाहिए।
9. खोए हुए प्रमाणकों की सूची प्राप्त करनी चाहिए। इनकी प्रतिलिपियाँ या गौण प्रमाणक देखने चाहिए।
10. संदेहास्पद प्रमाणकों को अपनी नोट–बुक में नोट करना चाहिए तथा उन पर विशेष चिन्ह लगा देना चाहिए।
11. किसी एक लेखा–पुस्तक के प्रमाणकों की एक जाँच एक ही बैठक में पूरी करनी चाहिए।
12. यदि किसी प्रमाणक का विवरण कटा हुआ है तो उस पर उचित अधिकारी के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं।

प्रमाणन के सम्बन्ध में अंकेक्षण के कर्त्तव्य

(Duties of Auditor in Relation to Vouching)

अंकेक्षक को अंकेक्षण कार्य में प्रमाणन को उचित स्थान अवश्य देना चाहिए। प्रमाणन के महत्व शीर्षक में यह बात भलीभाँति स्पष्ट की जा चुकी है कि मनुष्य की रीढ़ की हड्डी के समान अंकेक्षण में प्रमाणन आधारभूत प्रक्रिया है। प्रमाणकों की जाँच करते समय अंकेक्षक को पीछे वर्णित 12 बातों पर ध्यान देना चाहिए जिससे कि प्रमाणन कार्य सही हो सके, आर्थात् अंकेक्षक को लेखों की सत्यता, शुद्धता, पूर्णता तथा अधिकार का ज्ञान हो सके।

रोकड़ बही का प्रमाणन

(Vouching of Cash Book)

प्रारम्भिक लेखे की पुस्तकों में सबसे महत्वपूर्ण रोकड़ बही है अतः रोकड़ बही का प्रमाणन भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। रोकड़ के गबन के अधिक अवसर होते हैं। अतः रोकड़ का प्रमाणन बड़ी ही सावधानी से करना चाहिए।

रोकड़ बही के प्राप्ति पक्ष का प्रमाणन

(Vouching of Debit Side of Cash Book)

शीर्षक बही के प्राप्ति पक्ष में प्रायः निम्न मदें आती है जिसका यहाँ विस्तार से वर्णन किया जाएगा–नकद बिक्री, देनदारों से प्राप्त रकमें, दिए हुए ऋणों पर प्राप्त ब्याज, व लाभांश की प्राप्ति, बिल प्राप्त कमीशन, विनियोगों की बिक्री, सम्पत्ति की बिक्री, एजेन्टों से प्राप्ति, बीमा पॉलिसी से प्राप्त रकम, चंदों की प्राप्ति, अंशों के विक्रय से प्राप्ति व अन्य प्राप्ति।

1. **नकद बिक्री (Cash Sales)**: नकद बिक्री के सम्बन्ध में गबन की काफी सम्भावनाएँ होती है। अतः अंकेक्षक को इसकी जाँच बड़ी सावधानी से करनी चाहिए। लंकास्टर का मत है, ''बिक्री का प्रमाणन क्रय के प्रमाणन की तुलना में अधिक कठिन है।'' अतः प्रमाणन करते समय अंकेक्षक को निम्न बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिएः–
   (i) कच्ची रोकड़ बही के दैनिक योग की जाँच पक्की रोकड़ बही की प्रविष्टियों से करनी चाहिए।
   (ii) नकद बिक्री को नकद पत्रिका (Cash Memo) की प्रतिलिपियों से जाँचना चाहिए और इन प्रतिलिपियों को प्रतिदिन की बिक्री के सारांश से मिलना चाहिए।
   (iii) कच्ची रोकड़ बही का मिलान बिक्री के सारांश से करना चाहिए।
   (iv) अंकेक्षक को यह भी देखना चाहिए कि प्रत्येक कार्बन प्रतिलिपि पर क्रम संख्या पड़ी है या नहीं।
2. **देनदार बिल से प्राप्त रकमें (Proceeds from Debtors)**: इन रकमों की जाँच करने के लिए अंकेक्षक को प्रतिपर्ण–प्राप्ति बहियों की जाँच करनी चाहिए। कभी–कभी ऐसा भी हो सकता है कि जो प्रतिपर्ण प्राप्ति बहियाँ प्रयोग में नहीं आ रही हैं, उनमें से फाड़कर रसीद दे दी जाए। अतः देनदारों के पास जाँच–पत्र भेजकर और उनसे उत्तर प्राप्त करके अंकेक्षक को यह विश्वास करना चाहिए कि ठीक–ठीक रकमें प्राप्त हो चुकी हैं या नहीं। इन लोगों की दी गई छूट या कटौती की रकमों को जाँचते समय यह देखना चाहिए कि नियमों के विरूद्ध छूट या कटौती तो नहीं दे दी गई है।
3. **प्राप्य बिल से प्राप्त रकम (Bill Received)**: बिल लेखा बही से उन सभी बिलों की रकम को मिलाकर जाँच जा सकता है जिसका भुगतान तिथि पर भुगतान हो चुका है।

   भुनाए हुए बिलों से प्राप्त नकदी की जाँच प्राप्य बिल पुस्तक के साथ करनी चाहिए। कटौती के रेट जाँच करनी चाहिए।

4. **ब्याज और लाभांश (Interest and Dividents)**: लाभांश अधिपत्रों को उनके प्रतिरूपों से मिलाना चाहिए। यदि लाभांश बैंक द्वारा प्राप्त किया गया है, तो इसकी जाँच बैंक से मिली हुई सूचना से करनी चाहिए। जो रूपया बैंक में जमा है उसके ब्याज की जाँच बैंक की पास–बुक से की जा सकती है। यह भी निश्चय कर लेना चाहिए की सभी ब्याज या लाभांश मिल गया है या नहीं। ब्याज और लाभांश को भिन्न भिन्न सम्बन्धित विनियोजित पत्रों से जाँचना चाहिए। यह जानने के लिए कि लाभांश विक्रय किये गए विनियोगों पर उचित रूप से लिखे गये हैं या नहीं, अंकेक्षक को दलालों के बिक्री नोट (Brokers sale note) देखने चाहिए।

5. **प्राप्त कमीशन (Commission Received)**: प्राप्त कमीशन का सम्बन्धित प्रपत्रों से मिलान करना चाहिए। कमीशन की दर को देखकर सही–सही रकम निकालकर मिलाना चाहिए।

6. **दिए हुए ऋणों पर प्राप्त ब्याज (Intrest on Loan)**: ऋण देते समय जो ऋण प्रसंविदे (Loan Contract) होते हैं उन्हें देखना चाहिए और उन्हें देखकर ब्याज की दर तथा ऋण देने की तिथि का समय नोट करना चाहिए साथ ही यह भी देखना चाहिए कि ब्याज प्राप्त होनी वाली तिथियों पर ब्याज का लेखा पुस्तकों में किया गया है या नहीं। ब्याज प्राप्त होने पर जो रसीद हो जाती है उसका प्रतिरूप (Counterfoil) भी देखना चाहिए। यदि ब्याज को बैंक में जमा कर दिया गया है तो बैंक की पास बुक को भी देखना चाहिए।

7. **प्राप्त किराया (Rent Received)**: प्राप्त किराये की जाँच करते निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिएः–
   (i) किरायेदारों से यदि कोई अनुबन्ध हुआ है तो उसकी जाँच करनी चाहिए। जिससे वास्तविक किराये का पता लगाया जा सके तथा मरम्मत व किराये की देय तिथि आदि की शर्तों को ज्ञात किया जा सके।
   (ii) किराये की रसीदों के प्रतिरूप को देखकर उनका मिलान रोकड़ बही से करना चाहिए।
   (iii) यदि किराये पर कई मकान या दुकान आदि उठाए गए हों तो अंकेक्षक को इस हेतु किराया तालिका (Rent Roll) से भी सहायता लेनी चाहिए।

8. **सम्पत्तियों की बिक्री से प्राप्ति (Proceeds from Sale of Sundry Assets)**: विविध प्रकार की सम्पतियों को बेचने से प्राप्त रकम का प्रमाणन निम्न प्रकार से करना चाहिए।
   (i) रोकड़ बही तथा सम्पत्ति खातों का आपस में मिलान करना चाहिए।
   (ii) विविध सम्पत्तियों की बिक्री से प्राप्त रकम की जाँच सम्बन्धित प्रमाणकों से करनी चाहिए। जैसे बिक्री प्रसंविदा, दलाल या बिक्री नोट, पत्र–व्यवहार आदि।
   (iii) प्राप्ति के बदले दी गई रसीदों के प्रतिरूप से लेखों की जाँच करनी चाहिए।
   (iv) यदि सम्पत्ति एजेन्ट या निलामकर्त्ता द्वारा बेची गई है तो उसकी जाँच उनके द्वारा भेजे गए विवरण–पत्रों से की जानी चाहिए।

9. **बीमा पालिसी से प्राप्त हुई रकम (Receipt from Insurance Policy)**: इस रकम की जाँच के लिए बीमा कम्पनियों द्वारा भेजे गए पत्र–व्यवहारों को देखना चाहिए और वह रकम बैंक द्वारा प्राप्त की गई है, तो पास–बुक को भी देखना चाहिए।

10. **प्राप्त हुए चन्दे (Receipts from Subscription)**: चन्दा मिलने पर जो रसीद दी जाती है उसे प्रतिपर्ण (Counterfoil) से मिलान करना चाहिए। सदस्यों के रजिस्टर तथा खातों का भी मिलान करना चाहिए।

रोकड़ बही के भुगतान पक्ष का प्रमाणन

(Vouching of Payment Side of Cash Book)

1. **नकद क्रय के लिए भुगतान (Payment for Cash Purchases)**: जो माल नकद क्रय द्वारा किया जाता है उसके लिए किए गए भुगतान की जाँच उन कैशमीमों से की जा सकती है जो क्रय करने पर विक्रेता से

प्राप्त होते है। सभी क्रय पूर्णतथा अधिकृत होने चाहिए और अंकेक्षक को यह भी देख लेना चाहिए कि सारा माल प्राप्त हो चुका है या नहीं। अधिक अच्छा हो कि प्राप्त कैशमीमों का मिलान उस आदेश से कर लिया जाए जिसके आधार पर माल क्रय किया गया है।

2. **लेनदारों का भुगतान (Payment of Creditors)**: जिन व्यापारियों से उधार माल क्रय किया जाता है उनको भुगतान करते समय लेनदारों से प्राप्त की हुई रसीदों को देखना चाहिए और यदि नियोक्ता तथा लेनदारों के बीच कुछ निश्चित अवधि के बाद एक–दूसरे के खाते आते–जाते रहते हैं तो उनकी भी जाँच कर लेनी चाहिए।

3. **देय बिलों का भुगतान (Payment of Bills Payable)**: इनके भुगतान की जाँच लौटाए हुए बिलों से करनी चाहिए। यदि भुगतान बैंक से कराया गया है तो इसकी जाँच बैंक की पास–बुक से करनी चाहिए।

4. **वेतन का भुगतान (Payment of Salary)**: क्लर्कों का वेतन साधारण तौर से वेतन पुस्तक में लिख दिया जाता है, अतः रोकड़ पुस्तक का इससे मिलान कराना चाहिए। अंकेक्षक को देखना चाहिए कि जिस वेतन का भुगतान हो गया है उन पर पाने वाले व्यक्तियों ने अपने हस्ताक्षर कर दिए हैं? वेतन पुस्तक के ऊपर किसी उत्तरदायी अधिकारी के हस्ताक्षर होने चाहिएं तथा ये भुगतान अधिकृत सीमा के अन्दर ही किए गए हों। यदि किसी क्लर्क को साधारण वेतन के अतिरिक्त भत्ता इत्यादि दिया गया हो तो इसके लिए भी उचित अधिकारी की स्वीकृति देखनी चाहिए। मुख्य अधिकारियों (जैसे चीफ एकाउण्टेन्ट, सेक्रेटरी और मैनेजर) के वेतन को डायरेक्टर्स मिनट–बुक से जाँचना चाहिए और यह भी पूछना चाहिए कि क्या वह अधिकारी आमतौर से संचालकों द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। उनकी नौकरी से सम्बन्धित प्रसंविदों को भी देखना चाहिए।

5. **पेटेण्ट तथा कापीराइट का क्रम (Purchase of Patent and Copyright)**: इन भुगतानों की किए हुए प्रसंविदे से जाँच करनी चाहिए। अंकेक्षक को यह देख लेना चाहिए कि इनकी नवीनीकरण का व्यय हमेंशा आयगत माना जाता है।

6. **प्लांट और मशीनरी का क्रम (Purchases of Plant and Machinery)**: इनके सम्बन्धों में जो भी भुगतान किये जाएँगे उनके लिए कोई न कोई प्रमाणक आवश्यक होंगे। अंकेक्षक को देखना चाहिए कि ये सभी पूँजीगत व्यय हैं और उचित अधिकारी की राय से खरीदे गये हैं। अगर इनको नीलामी से खरीदा गया है तो नीलाम करने वाले का प्रमाण–पत्र देखना चाहिए। यदि किराया–पत्र प्रसंविदे (Hire Purchase Agreements) द्वारा क्रय किए गए हैं तो उस प्रसंविदों को देखना चाहिए।

7. **किराया, चुंगी आदि (Freight and Octroi)**: रेल किराया और चुंगी कर यदि फारवर्डिंग एजेण्ट (Forwarding Agent) द्वार किया गया हो, तो उससे प्राप्त विवरण–पत्र और रसीद का मिलान करना चाहिए। यदि माल बेचने में गाड़ी, मोटर आदि का भी प्रयोग किया गया है, तो इनके मालिकों से प्राप्त हुई रसीद आदि को देखना चाहिए।

8. **डाक खर्च (Postal Expenses)**: बड़ी संस्थाओं में डाक भेजने का रजिस्टर अलग से रखा जाता है। जब डाक के टिकट खरीदे जाते हैं तो प्रविष्टि कर दी जाती है तथा रोजाना भेजे जाने वाले पत्रों पर लगा डाक–खर्च इसमें लिखा रहता हैं जिस पर संस्था के उचित अधिकारी के हस्ताक्षर होते हैं। अंकेक्षक डाक–खर्च इसमें लिखा रहता है, जिस पर संस्था के उचित अधिकारी के हस्ताक्षर होते हैं। अंकेक्षक डाक–खर्च का प्रमाणन इस रजिस्टर से कर सकता है।

9. **बैंक व्यय (Bank Charges)**: बैंक अर्द्धवार्षिक इन्सीडेन्टल चार्जेज क्लीयरिंग के चैकों पर बट्टा तथा ओवरड्राफ्ट पर ब्याज आदि की समय–समय पर संस्था के नाम लिखकर सूचना भेजता रहता है। इसका प्रमाणन इन सूचना पत्रों पास बुक तथा रोकड़ बही से मिलान करके किया जाता हैं।

10. **बीमा (Insurance)**: बीमा की रकम के भुगतान के सम्बन्ध में बीमा कम्पनी की पॉलिसी व रसीद की जाँच करनी चाहिए।

क्रय बही का प्रमाणन

(Vouching of Purchase Book)

क्रय बही का प्रमाणन करने से पूर्व अंकेक्षक को सर्वप्रथम आन्तरिक निरीक्षण प्रणाली की जाँच करनी चहिए। यदि आन्तरिक निरीक्षण प्रणाली संतोषजनक है तो उसे प्रमाणन की निम्न विधि अपनानी चाहिएः–

1. **बीजकों के आधार पर लेखों की जाँच**: माल खरीदने के सम्बन्ध में जो बीजक प्राप्त हुए हों उन्हीं के आधार पर क्रय बही में लेखे होने चाहिए। प्रत्येक लेखे की जाँच सम्बन्धित बीजक से करनी चाहिए। स्वयं बीजक की भी जाँच करनी चाहिए कि वह पूर्ण तथा ठीक एवं उचित है या नहीं। प्रत्येक बीजक के साथ लगी हुई आदेश पत्र की प्रतिलिपि व स्टोर कीपर के माल प्राप्ति नोट की भी उचित जाँच करनी चाहिए। बीजक भुगतान के लिए उच्च अधिकारी का आदेश होना चाहिए।
2. **जाँचे गए बीजकों पर विशेष चिन्ह**: जिन बीजकों को जाँच लिया जाए उन पर अंकेक्षक को एक विशेष चिन्ह डाल देना चाहिए जिससे कि कोई भी बीजक दुबारा न प्रस्तुत किया जा सके।
3. **खोए हुए प्रमाणकों का रिकार्ड रखना**: यदि प्रमाणन के समय अंकेक्षक को कुछ प्रमाणक नहीं मिलते हैं तो उसे उनकी दूसरी प्रतिलिपि (Duplicate Copy) भी देखनी चाहिए और यदि कोई प्रमाणक बिल्कुल ही खो गया हो तो अपनी अंकेक्षण नोटबुक (Note Book) में लिख लेना चाहिए।
4. **पूँजीगत क्रय बही में न लिखना**: अंकेक्षक को प्रमाणन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यदि कोई पूँजीगत क्रय किया गया हो तो उसे क्रय बही में नहीं लिखना चाहिए। क्रय बही में केवल लाभगत क्रय ही ब्यौरा होना चाहिए।
5. **क्रय बही के योग एवं खतौनी का जाँच**: क्रय बही के लेखों की सत्यता के पश्चात उसके योगों एवं क्रय बही में किये गए लेखों की खतौनी की पर्याप्त जाँच करनी चाहिए।
6. **माल आगम पुस्तिका की क्रय बही से जाँच**: व्यापार में जब भी माल खरीदा जाता है तो उसकी प्रविष्टि माल आगम पुस्तिका में की जाती है। अतः माल आगम पुस्तिका की जाँच क्रय–बही से करके लेन देनों की सत्यता का पता लगाना।

क्रय वापसी बही का प्रमाणन

(Vouching of Purchase Return Book)

प्रक्रियाः

1. क्रय वापसी के बदले विक्रेताओं से प्राप्त जमा पत्रों (Credit Notes) के विवरण से क्रय वापसी बही प्रविष्टियों की जाँच करनी चाहिए। इनके विवरण समान होने चाहिए।
2. जिस समय माल वापिस भेजा जाता है फर्म एक नाम पत्र (Debit Notes) तैयार करके विक्रेता के पास भेजती है। इन नाम–पत्रों की प्रतिलिपियों से मिलान करके देखना चाहिए कि वापिस भेजे गए सम्पूर्ण माल तथा राशि का विक्रेता से जमा–पत्र (Credit Note) प्राप्त हो गया है तथा क्रय बही से भी विवरण मिलता है।
3. स्टोर विभाग द्वारा तैयार किए गए माल निकास पत्र (Goods Desapatched Note) तथा संस्था के मुख्य द्वार पर रखी हुई माल बाहरी पुस्तक (Goods Outward Book) के विवरणों से भी क्रय वापसी बही के विवरणों की जाँच करनी चाहिए।

4. क्रय वापसी बही की प्रविष्टियों का लेनदारों के खातों से मिलान करना चाहिए।
5. प्रत्येक जमा–पत्र पर प्रमाणन करने के पश्चात् कोई चिन्ह अथवा मुहर लगा देनी चाहिए जिससे वह दोबारा प्रस्तुत न किया जा सके।
6. क्रय की भाँति वर्ष के प्रथम तथा अन्तिम कुछ दिनों में छल–कपट किए जाने की सम्भावना रहती है। अतः इसे अच्छी प्रकार जाँचना चाहिए।

विक्रय बही का प्रमाणन

(Vouching of Sales book)

प्रक्रियाः

1. बीजक की प्रतिलिपि के सम्पूर्ण विवरण का विक्रय बही के विवरण के मिलान करना चाहिए।
2. व्यापारिक बट्टा किस दर पर दिया गया है। यह दर संस्था के नियमानुकूल अथवा क्रेता के साथ किए गए समझौते के अनुसार ठीक होनी चाहिए।
3. स्टोर विभाग द्वारा तैयार किए गए माल निकास–पत्र (Goods Despatched Note) तथा मुख्य द्वार पर रखी हुई माल बाहरी पुस्तक (Goods Outward Book) में लिखी माल की मात्रा तथा किस्म आदि की बीजक की प्रतिलिपि से जाँच करनी चाहिए।
4. वर्ष के प्रथम तथा अन्तिम सप्ताहों की गहन जाँच करके देख लेना चाहिए कि जिस माल के बीजक बने हैं। वह वास्तव में भेजा जा चुका है तथा कोई भी भेजा हुआ माल ऐसा नहीं है जिसका बीजक न बना हो।
5. विक्रय बही की प्रविष्टियों की जाँच देनदारों के खातों से मिलान द्वारा करनी चाहिए।
6. देनदारों को समय–समय पर भेजे गये हिसाब विवरण पत्रों के विवरण से जाँच करनी चाहिए।
7. चालान पर भेजा गया माल (Goods sent on Consignment) तथा पसन्दगी के लिए भेजा गया माल (Goods sent on Approval) को वास्तविक विक्रय नहीं माना जाता। अंकेक्षण को देखना चाहिए कि इन्हें विक्रय बही में तो नहीं चढ़ाया गया है।

विक्रय वापसी बही का प्रमाणन

(Vouching of Sales Return Book)

प्रक्रिया

(i) जारी किये हुए जमा–पत्रों की प्रतिलिपि की विक्रय वापसी बही के विवरण से मिलान करके जाँच करनी चाहिए।

(ii) क्रेता द्वारा भेजे गए नाम–पत्रों (Debit Note), माल भीतरी पुस्तक, मालप्राप्ति पत्रों तथा जारी किए हुए जमा–पत्रों (Credit Notesa) का आपस में मिलान करके इनकी समानता ज्ञात करनी चाहिए।

(iii) जमा पत्रों पर तैयार करने वाले, जाँचने वाले कर्मचारी तथा उचित अधिकारी के हस्ताक्षर होने आवश्यक है।

(iv) विक्रय वापसी बही की प्रविष्टियों के देनदारों का खातों से मिलान करना चाहिए।

(v) समय–समय पर भेजे गए हिसाब विवरण को देखना चाहिए।

(vi) जिस मूल बिजक द्वारा वापिस प्राप्त हुआ माल भेजा गया था, उसे देखकर यह जाँचना चाहिए कि वास्तव में माल संस्था के द्वारा ही बेचा गया था। उसी दर तथा किस्म आदि की जाँच भी आवश्यक है।

देय बिल बही

(Bill Payable Book)

देय बिल बही का प्रमाणन करते समय निम्न विधियाँ अपनानी चाहिए–

1. देय बिल बही तथा लेनदार खातों का मिलान–लेनदारों के खातों का देय बिल बही से मिलान करके सम्बन्धित प्रविष्टियों की सत्यता को जानना चाहिए।
2. भुगतान किए गए बिलों का रोकड़ बही व पास बुक से मिलान कर भुगतान की वास्तविकता का पता लगााना चाहिए यदि भुगतान नकद किया गया है तो प्राप्तकर्त्ताओं की रसीद देखनी चाहिए और यदि भुगतान चैक द्वारा किया गया है चैक के प्रतिरूप की जाँच करनी चाहिए।
3. देय बिल बही तथा देय बिल खाते का मिलान–देय बिल बही और देय बिल खाते का मिलान कर यह देखना चाहिए कि दोनों का शेष एक ही आता है या नहीं।
4. अनादर बिलों की जाँच– यदि कुछ शेष बिलों का अनादर कर दिया गया है तो उसकी पूरी जाँच करनी चाहिए यदि उसका नवीनीकरण भी हुआ है तो उसकी भी जाँच करनी चाहिए।
5. योग एवं खतौनी की जाँच– इस पुस्तक के योग की सावधानीपूर्वक जाँच करनी चाहिए तथा इसकी खतौनी ठीक की गई है या नहीं।

प्राप्य बिल–बही

(Bills Receivable Book)

1. प्राप्य बिल बही तथा देनदार के खातों का मिलान– प्राप्य बिल बही तथा देनदार के खातों का मिलान कर सम्बन्धित प्रविष्टियों की सत्यता का पता लगाना चाहिए।
2. प्राप्य बिलों का बही में लिखना– अंकेक्षक को इस बात की जाँच करनी चाहिए कि समस्त प्राप्य बिलों को इस बही में लिखा गया है या नहीं। संदेह होने पर उससे सम्बन्धित हिसाब–विवरण व पत्र–व्यवहार भी देखने चाहिए।
3. भुनाए गए बिलों की जाँच रोकड़ बही व पास बुक द्वारा–भुगतान तिथि पर जिन बिलों को भुना लिया गया है उनकी जाँच रोकड़ बही व पास बुक से करनी चाहिए यदि कोई बिल अनादर हो गया है तो निकराई व्यय जोड़कर ग्राहक के नाम से लिखना चाहिए।
4. बेचान किए गए बिलों की जाँच– जिन प्राप्य बिलों को लेनदारों के पक्ष मे बेचान कर दिया है उनकी जाँच प्राप्य बिल बही तथा लेनदारों के खातों का मिलान करके करनी चाहिए। इसकी जाँच के लिए प्राप्य बिल के प्रतिरूप तथा लेनदारों के हिसाब–किताब की सहायता लेनी चाहिए।

मुख्य जर्नल
(Journal Proper)

उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त व्यापारीगण एक अन्य सहायक पुस्तक भी प्रयोग में लाते हैं, जिसे मुख्य रोजनामचा (Journal Proper) कहते हैं। इस पुस्तक में वह सभी लेखें किए जाते हैं जो ऊपर समझाई हुई पुस्तकों में नहीं किए जातें। इसके अतिरिक्त अशुद्धियाँ ठीक करने के लेखे, समायोजन के लेखे, हस्तांतरण के लेखे, अन्तिम लेखें एवं प्रारम्भिक तथा चालान के लेखे भी लिखे जाते हैं। अंकेक्षक को इस बही की जाँच उचित रीति करनी चाहिए। इस बही की जाँच को भली–भाँति समझने के लिए यह अच्छा होगा कि इसमें किए गए भिन्न–भिन्न लेखों को अलग समझ लिया जाए। इसमें निम्नलिखित लेखे किए जाते हैं–

1. **प्रारम्भिक लेखे (Opening Entries):** इन लेखों का प्रमाणन पिछले वर्ष के चिट्ठे से किया जाएगा। यदि किसी नई संस्था से पुराने व्यवसाय को खरीदा गया हो तो विक्रेता के साथ किए गए प्रसंविदे कम्पनी के अर्न्तनियम और संचालकों की बैठकों के कार्य विवरण से प्रारम्भिक लेखों का प्रमाणन करना चाहिए।
2. **अन्तिम लेखे (Closing Entries):** इन लेखों में सभी प्रविष्टियाँ आती हैं जो खातों को बन्द करने के लिए की जाती है। प्रायः ये खाते माल खाता, लाभ–हानि खाता में हस्तांतरित किए जाते हैं। यह देखना चाहिए कि अन्तिम बाकियाँ ठीक निकाली गई हैं और खातों को सही खाते में हस्तांतरित किया गया है।
3. **अप्राप्य ऋण (Bad Debts) :** अप्राप्य ऋण का देनदारों को दिए गए नोटिस, पत्र व्यवहार एवं अन्य कागजी सबूतों से प्रमाणन करना चाहिए। यह भी देखना चाहिए कि जिस ऋण को अप्राप्य घोषित कर दिया गया है, उच्च अधिकारी द्वारा स्वीकत किया गया है। यदि कुछ सन्देह हो, तो पूरी छानबीन करनी चाहिए।
4. **संदिग्ध ऋण के लिए संचय (Provision for Doubtful Debts):** इसकी जाँच के लिए किसी उत्तरदायी अधिकारी की स्वीकति देखनी चाहिए। यह भी देखना चाहिए की संचय की रकम पर्याप्त है।
5. **ह्रास (Depreciation):** ह्रास की रकम के लिए संस्था की परंपरा को देखना चाहिए कि इस वर्ष की ह्रास दरों में पिछले दरों की अपेक्षा अन्तर तो नहीं है। मालिक, साझेदार, संचालक या अन्य अधिकारी की स्वीकति देखकर ह्रास दरों के औचित्य का प्रमाणन करना चाहिए।
6. **समायोजन के लेखे (Adjusting Entries):** समायोजन के लेखों के लिए यह देखना आवश्यक है कि अदत्त व्यय अथवा पूर्वदत्त व्यय के लिए ठीक आयोजन किया गया है और वैसे ही आमदनी जो प्राप्त हो गई है अथवा जो प्राप्त हो गई है और अर्जित नहीं हुई है, उसका उचित समायोजन कर लिया गया है। इन सबके लिए गहन जाँच करनी चाहिए।

सामान्य बही खाता
(General Ledger)

क्रय और विक्रय खाता–बहियों के अतिरीक्त एक सामान्य खाता–बही का भी प्रयोग किया जाता है। व्यक्तिगत खातों के अतिरिक्त एक सामान्य खाता बही का भी प्रयोग किया जाता है। व्यक्तिगत खातों के अतिरिक्त अन्य सभी खातों का अध्ययन इस खाता बही के द्वारा किया जा सकता है। अंकेक्षक को इस बही में किए गये लेखों की जाँच निम्न प्रकार से सतर्कतापूर्वक करनी चाहिए–

(i) इस खाता–बही में की गई प्रत्येक खतौनी का प्रमाणन करना चाहिए।

(ii) प्रत्येक खाते के जोड़ और बाकी का नियमित निरीक्षण करना चाहिए।

(iii) इस खाता–बही के प्रत्येक की बाकी की तुलना तलपट में लिखित बाकी से करनी चाहिए।

(iv) इस खाता–बही के खातों की बाकियों का मिलान व्यापार और लाभालाभ–खाता तथा आर्थिक चिट्ठे के तत्सम्बन्धी लेखों से करना चाहिए।

(v) प्रारम्भिक लेखा–पुस्तकों के जोड़ों की जाँच करके सामान्य लेखा–पुस्तक में हुए इन योगों के लेखों का प्रमाणन करना चाहिए।

(vi) अन्तिम लेखों में हुए समायोजनों को रोजनामचे के द्वारा सामान्य लेखा पुस्तकों में लिखा जाता है, इनकी जाँच सम्बन्धित प्रमाणकों से करनी चाहिए।

क्रय खाता बही का प्रमाणन

(Vouching of Purchase Ledger)

क्रय खाता बही में उन सब व्यक्तियों के खाते रखे जाते हैं जिनसे माल उधारा खरीदा जाता है। इसका प्रमाणन करते समय अंकेक्षक को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिएः–

(i) प्रारम्भिक शेषों की जाँच—गत वर्ष की खाता बही के अन्तिम शेषों से प्रारंभिक शेषों का मिलान कर सत्यता की जाँच करनी चाहिए।

(ii) खतौनी की जाँच—चूँकि विभिन्न सहायक बहियों मे किए गए लेखों का दोहरा लेखा इस खाता बही में किया जाता है जैसे—क्रय—बही, क्रय—वापसी—बही, रोकड़ बही तथा देय बिल बही आदि। अतः खतौनी की जाँच सावधानीपूर्वक करनी चाहिए।

(iii) खातों का जोड़ एवं शेष—खाता बही के प्रत्येक खाते का जोड़ सावधानीपूर्वक करना चाहिए और जोड़ के पश्चात् इस बात की भी जाँच करनी चाहिए कि उनकी शेष ठीक निकाले गए हैं या नहीं। शेषों की एक सूची बना लेनी चाहिए तथा इसका मिलान लेनदारों की सूची से करना चाहिए।

(iv) समायोजन खातों से मिलान—इस खाता बही में खोले गए समस्त लेनदारों के योग की जाँच सामान्य खाता—बही में खोले गए क्रय खाता—बही समायोजन खाते (Bought Adjustment Account) में करनी चाहिए।

(v) सन्देह होने पर गहन जाँच—यदि किसी लेनदार से सम्बन्धित खाते पर सन्देह होता है तो उसकी अंकेक्षक को गहन जाँच करनी चाहिए।

विक्रय खाता बही का प्रमाणन

(Vouching of Sales Ledger)

विक्रय खाता बही में उन समस्त देनदारों के खाते खोले जाते हैं जिनको उधार माल बेचा जाता है। इसके सम्बन्ध में प्रमाणन की निम्न विधि अपनानी चाहिएः—

(i) **प्रारम्भिक शेषों की जाँच**—गत वर्ष की खाता—बहियों में दिखाए अन्तिम शेषों से प्रारम्भिक शेषों का मिलान करना चाहिए।

(ii) **खतौनी की जाँच**—इस खाता बही में अन्य सहायक बहियों की खतौनी की जाती है। अतः उनकी सावधानीपूर्वक जाँच करनी चाहिए, जैसे—विक्रय बही, विक्रय—वापसी बही, रोकड़ बही, प्राप्य बिल बही में दिखाए गए व्यवहार आदि।

(iii) **खातों का जोड़ एवं शेष**—इस बही में खोले जाने वाले समस्त खातों के जोड़ की जाँच करनी चाहिए और यह भी देखना चाहिए कि खातों के शेष ठीक निकाले गए हैं या नहीं। इसके अतिरिक्त देनदारों की एक सूची बना लेनी चाहिए और उसमे समस्त देनदारों के शेषों को लिख देना चाहिए। देनदारों की यही रकम स्थिति—विवरण में दिखानी चाहिए।

(iv) समायोजन खातों से मिलान—विक्रय खाता बही में दिखाए गए सभी देनदारों के खातों के योग की जाँच सामान्य खाता बही में खोले गए विक्रय खाता बही समायोजन खाते (Sold Ledger Adjustment Account) के योग से करनी चाहिए।

अंकेक्षक का यह कर्त्तव्य होता है कि वह इस बात को स्पष्ट रूप से अपनी रिपोर्ट में लिखें की स्थिति—विवरण द्वारा व्यापार की सही व वास्तविक आर्थिक दशा का चित्रण होता है या नहीं। उसको यह निश्चय कर लेना चाहिए कि स्थिति—विवरण में दिखाई गई समस्त सम्पत्तियाँ वास्तव में विद्यमान है या नहीं और मूल्यांकन ठीक प्रकार से किया गया है या नहीं।

सत्यापन

(Verification)

सत्यापन (Verification) अंकेक्षण की एक ऐसी विधि है जिसमे अंकेक्षक चिट्ठे में प्रदर्शित सम्पत्तियों एवं दायित्वों की सत्यता को प्रमाणित करता है। ऐसी जाँच किए बिना ही यदि अंकेक्षक रिपोर्ट देता है, तो यह उचित नहीं है। सम्पत्तियों और दायित्वों की सत्यता के विश्वास के आधार पर ही वह चिट्ठे की सत्यता के बारे में रिपोर्ट देने के योग्य होता है।

1. "The Valuation of assets is therefore an attempt to ensure the equitable distribution of the original outlay over the period of the assets usefulness."

– Joseph Lancaster

जे. आर. बाटलीबॉय के अनुसार "अंकेक्षक को इस बात की संतुष्टि कर लेनी चाहिए कि सम्पत्तियाँ वास्तव में स्थिति–विवरण की तिथि पर विद्यमान हैं तथा वे सब प्रभारों के प्रमाणों से मुक्त हैं तथा उनका मूल्यांकन उचित प्रकार से किया गया है। दायित्वों के सत्यापन में उसे यह देखना होता है कि सभी दायित्वों का उचित राशि पर दायित्वों में सम्मिलित किया गया है तथा कोई भी दायित्व नहीं छोड़ा गया है।"

सम्पत्तियों का सत्यापन करते समय अंकेक्षक को न केवल गणित सम्बन्धी शुद्धता की जाँच करनी चाहिए वरन् उसकी स्थिति, विद्यमानता एवं स्वामित्व की भी जाँच करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में उसे जरा भी ढ़ील नहीं देनी चाहिए। The city Equitable Fire Insurance Company Ltd., के मामले में निर्णय देते हुए ऐसा कहा गया था।

सत्यापन के उद्देश्य

(Objects of Verification)

अंकेक्षक का कर्तव्य यह होता है कि वह सम्पत्ति के मूल्यांकन से सम्बन्धित प्रमाण एकत्रित करे। सत्यापन का प्रमुख उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि चिट्ठा सच्चा एवं उचित चित्र प्रस्तुत कर रहा है या नहीं। संक्षेप में सत्यापन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. सम्पत्तियों के सत्यापन का एक प्रमुख उद्देश्य गणित सम्बन्धी शुद्धता को ज्ञात करना है।
2. सम्पत्तियों के सत्यापन कपट तथा अनियमितताओं का पता लगाना।
3. सम्पत्तियों की विद्यमान एवं स्वामित्व के बारे में पता लगाना।
4. सम्पत्तियों का मूल्यांकन उचित मूल्य पर किया गया है अथवा नहीं।
5. चिट्ठे में संस्था की समस्त सम्पत्तियों को सम्मिलित कर लिया गया है।
6. चिट्ठे में वर्णित प्रभार (Charge) के अलावा सम्पत्तियों पर कोई अन्य प्रभार तो नहीं है।
7. दायित्वों के सम्बन्ध में यह देखना कि इन्हें चिट्ठे में सही मूल्य पर सम्मिलित किया गया है।

लाभ–हानि खाते की शुद्धता पूर्ण रूप से सम्पत्तियों एवं दायित्वों के उचित मूल्य पर निर्भर होती है। अतः सम्पत्तियों व दायित्वों का सही मूल्यांकन करना अंकेक्षक का प्रमुख कर्त्तव्य है। मूल्यांकन की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से दी है, जो निम्न प्रकार हैः–

सम्पत्तियों का मूल्यांकन
(Valuation of Assets)

स्थिति–विवरण की तिथि पर विभिन्न सम्पत्तियों एवं दायित्वों का मूल्य करना ही मूल्यांकन कहलाता है। स्थिति–विवरण एवं लाभ–हानि खाते की शुद्धता पूर्ण रूप से सम्पत्तियों एवं दायित्वों के उचित मूल्य पर निर्भर होती है। अतः सम्पत्तियों व दायित्वों का सही मूल्यांकन करना अंकेक्षक का प्रमुख कर्त्तव्य है। मूल्यांकन की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से दी है, जो निम्न प्रकार हैः–

लंकास्टार के अनुसार– ''सम्पत्तियों के उपयोगिता काल में उनके प्रारम्भिक मूल्यों को समान रूप से बाँटने के प्रयत्न को मूल्यांकन कहते हैं। सम्पत्तियों का मूल्यांकन कहते हैं।''

सम्पत्तियों के मूल्यांकन के उद्देश्य
(Objects of Valuation of Assets)

सम्पत्तियों का मूल्यांकन प्रायः निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए किया जाता हैः

1. **आर्थिक स्थिति का सही ज्ञानः** सम्पत्तियों के मूल्यांकन द्वारा किसी भी व्यवसाय की आर्थिक दशा का सही अनुमान लगाया जाता है।

2. **स्थिति-विवरण के दिन सम्पतियों की सही स्थिती**: सम्पत्तियों के मूल्यांकन का एक अन्य उद्देश्य यह है कि स्थिति–विवरण के दिन सम्पत्तियाँ अपने सही मूल्य पर ही उसमें दिखाई गई हैं या नहीं।

3. **पूँजी के विनियोग का ज्ञान** – मूल्यांकन द्वारा इस बात का भी ज्ञान प्राप्त किया जाता है कि पूँजी का विनियोग कैसे किया गया है।

4. **सम्पत्ति के मूल्य में अन्तर** – जिस समय सम्पत्ति क्रय की गई थी उस समय सम्पत्ति का क्या मूल्य था और स्थिति–विवरण के दिन सम्पत्ति का क्या मूल्य है तथा इसका कारण क्या है अर्थात् मूल्य परिवर्तनों के कारणों का ज्ञान भी मूल्यांकन के द्वारा ही किया जाता है।

5. **ख्याति का ज्ञान** – विभिन्न सम्पत्तियों के मूल्यांकन से ख्याति के मूल्य का भी अनुमान लगाया जाता है।

6. **अंकेक्षक की संतुष्टि** – अंकेक्षक की संतुष्टि हेतु भी सम्पत्तियों का मूल्यांकन करना अनिर्वाय होता है क्योंकि अंकेक्षक को इस बात की रिपोर्ट देनी होती है कि स्थिति–विवरण सही व उचित आर्थिक दशा को दिखता है और स्थिति–विवरण उस समय तक सही आर्थिक दशा का चित्रण नहीं कर सकता जब तक कि उसका मूल्यांकन न किया जाए।

मूल्यांकन का महत्व

(Importance of Valuation)

सत्यापन में मूल्यांकन का बहुत अधिक महत्त्व है क्योंकि सत्यापन के अन्तर्गत सम्पत्तियों का सही मूल्यांकन करना होता है जिसकी अनुपस्थिति में संस्था का स्थिति विवरण सही व उचित आर्थिक दशा का चित्रण नहीं कर सकता।

संक्षेप में मूल्यांकन के महत्त्व को निम्न प्रकार बताया जा सकता है–

1. व्यापार कम्पनी की सही आर्थिक दशा का चित्रण होना।
2. सही लाभ–हानि का ज्ञान।
3. गुप्त संचय की जाँच।
5. विनियोजिन पूँजी की सुरक्षा पर विश्वास।
6. व्यापार/कम्पनी की ख्याति का ज्ञान।
7. स्थिति–विवरण की तिथि पर सम्पत्तियों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान।

प्रमाणन, मूल्यांकन एवं सत्यापन में अन्तर

(Difference Between Vouching, Valuation and Verification)

प्रमाणन, मूल्यांकन एवं सत्यापन के अन्तर को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **अर्थ** – प्रमाणन के अन्तर्गत पुस्तकों में की गई प्रविष्टियों की शुद्धता की जाँच उनसे सम्बन्धित प्रमाणकों में से की जाती है।

   मूल्यांकन में इस बात का पता लगाया जाता है कि स्थिति–विवरण के दिन सम्पत्ति अपनी वास्तविक कीमत पर दिखाई गई है या नहीं।

2. विषय सामग्री – प्रमाणन हमेशा प्रारम्भिक लेखों का, खातों एवं उनके शेषों का किया जाता है। जबकि सत्यापन एवं मूल्यांकन स्थिति–विवरण में दिखाई जाने वाली मदों का किया जाता है।

3. **किसके द्वारा** – प्रमाणन प्रायः वरिष्ठ क्लर्कों द्वारा किया जाता है क्योंकि यह अंकेक्षण की एक नैत्यक क्रिया है। मूल्यांकन का कार्य प्रायः प्रबन्धकों द्वारा या तकनीकी विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। सत्यापन अंकेक्षक के द्वारा किया जाता है।

4. **समय** – प्रमाणन का कार्य आधारभूत है और यह वर्षभर चलता रहता है। सत्यापन एवं मूल्यांकन स्थिति–विवरण बन जाने के पश्चात् किया जाता है किन्तु कुछ सम्पत्तियों का मूल्यांकन व सत्यापन वित्तीय वर्ष की समाप्ति के दिन ही किया जाता है जैसे–रोकड़, बिल, प्रतिभूतियाँ, स्टॉक आदि।

सत्यापन के सम्बन्ध में अंकेक्षक के कर्त्तव्य
(Duty of an Auditor in Relation to Verification)

सम्पत्तियों के सत्यापन के सम्बंध में

1. वे समस्त सम्पत्तियाँ जो स्थिति–विवरण में दिखाई गई हैं संस्था की ही हैं किसी और की तो नहीं है।
2. किसी भी सम्पत्ति में कोई ऐसा परिवर्तन तो नहीं किया है जो स्थिति–विवरण में न दिखाया गया हो।
3. अन्य सम्पत्तियाँ जैसे स्थायी क्षय होने वाली अदश्य तथा कृत्रिम आदि सम्पत्तियों का सत्यापन उनके सामान्य सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए अपनी सुविधानुसार करना चाहिए।
4. सम्पत्तियों पर जो प्रभार स्थिति–विवरण में दिखाया गया है उसके अतिरिक्त कोई प्रभार नहीं है।
5. स्थिति–विवरण में प्रत्येक सम्पत्ति का स्पष्ट उल्लेख किया गया है या नहीं।
6. स्थिति–विवरण में उन समस्त सम्पत्तियों को लिख दिया गया है जो संस्था की है और किसी भी सम्पत्ति को छोड़ा नहीं गया है।

दायित्वों का सत्यापन के सम्बन्ध में

अंकेक्षक सम्पत्तियों के साथ–साथ दायित्वों का भी सत्यापन करता है जिसके लिए उसे निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. स्थिति–विवरण की तिथि पर उसमें दिखाए गये दायित्व में संस्था के दायित्व हैं, इस बात को बताना।
2. सभी दायित्व देय हो चुके हैं और उन्हें उचित मूल्य पर स्थिति–विवरण में दिखाया गया है।
3. कोई भी दायित्व स्थिति–विवरण में लिखने से रह नहीं गया है।
4. स्थिति–विवरण में दिखाए गए सभी दायित्व संस्था के हैं, किसी और के नहीं।
5. स्थिति–कववरण में प्रत्येक दायित्व का स्पष्ट उल्लेख किया गया है या नहीं।
6. कहीं संदिग्ध दायित्वों को वास्तविक में तो सम्मिलित नहीं किया गया है।

सम्पत्तियों का व्यवहारिक सत्यापन
(Practical Verification of Assest)

स्वकीय भूमि एवं भवन

(Freehold L & B)

प्रक्रिया :

1. **स्वामित्व की जाँच (Ownership)** : अंकेक्षक को सम्पत्ति के स्वत्वसंलेख (Title deed) से भली–भाँति जाँच करके यह ज्ञात करना चाहिए कि वास्तव में इस सम्पत्ति का स्वामी नियोक्ता ही है।
2. **प्रभार की जाँच (Charge)**: यदि सम्पत्ति पर कोई प्रभार है अथवा सम्पत्ति बंधक हुई है, तो इसका बन्धक रखने वाले से प्रमाण–पत्र लेना चाहिए।

3. **सम्पत्ति की भौतिक जाँच (Physical Inspection)**: अंकेक्षक को भूमि या भवन की भौतिक जाँच करके यह मालूम करना चाहिए कि वास्तव में भूमि या भवन है भी या नहीं और यह किस कार्य में लाई जा रही है।
4. **मूल्यांकन करना (Valuation)**: भूमि व भवन का मूल्यांकन बुक–कीपिंग के सिद्धान्तों के अनुसार हुआ है या नहीं। भूमि का मूल्यांकन हमेशा लागत मूल्य पर करना चाहिए।
5. **सम्पत्ति के निर्माण की जाँच (Construction of Building)**: यदि सम्पत्ति अथवा भवन–निर्माण नियोक्ता के कर्मचारियों द्वारा हुआ है तो इसकी उचित जाँच करनी चाहिए। इसके लिए एक उत्तरदायी अधिकारी से प्रमाण–पत्र ले लेना चाहिए।
6. **लाभगत व्यय (Revenue Expenses):** भूमि व भवन में वर्ष–भर जो मरम्मत व नवनिर्माण होता है उसे आय–व्यय खाने (Revenue Expenses A/C) में ले जाना चाहिए।
7. **बिक्री का प्रमाणन**: यदि भूमि या भवन की बिक्री हुई है, तो इसका प्रमाणन (Vauching) करना चाहिए।
8. **ह्रास के प्रबन्ध की जाँच (Depreciation):** अंकेक्षक को यह जाँच करनी चाहिए कि भूमि व भवन पर उचित ह्रास काटा गया है या नहीं।

पट्टे पर सम्पत्ति

(Leasehold Property)

प्रक्रिया :

1. **स्वामित्व (Ownership)**: पट्टे पर प्राप्त सम्पत्ति या भूमि व भवन के स्वामित्व का जाँच (पट्टे की शर्तें, बीमा आदि का भुगतान, किराया) पट्टालेख (Lease deed) से करने चाहिए।
2. **अस्तित्व (Existence)**: पट्टे पर प्राप्त सम्पत्ति का भौतिक निरीक्षण (Physical Inspection) के द्वारा यह ज्ञात करना चाहिए कि वास्तव में सम्पत्ति संस्था के अधिकार में है।
3. **मूल्यांकन (Valuation)**: इस सम्पत्ति का मूल्याकंन करते समय अंकेक्षक को ध्यान रखना चाहिए कि सम्पत्ति का मूल्य धीरे–धीरे घटता है। इसलिए पुस्तक मूल्य (Book Value) में से प्रत्येक वर्ष अपलिखित की जाने वाली बही को घटाकर ही मूल्यांकन करना चाहिए।
4. **आगम व्यय (Revenue Expenses)**: अंकेक्षक को यह देखना चाहिए कि कोई भी आगम व्यय जैसे– वार्षिक किराया तथा बीमा व्यय को लाभ–हानि खाते में दिखना चाहिए।
5. **प्रभार (Charge)**: पट्टे पर प्राप्त सम्पत्ति गिरवी रखी गई हो तो गिरवी रखने वाले से एक प्रमाण–पत्र प्राप्त करना चाहिए।
6. **सिंकिंग फण्ड (Sinking Fund)**: पट्टे के नवीनीकरण के लिए प्रबन्धकों ने सिंकिगं फण्ड की व्यवस्था की या नहीं। यदि इस कोष की व्यवस्था की गई है तो इस फण्ड को चिट्ठे में दायित्व पक्ष में दिखाया है या नहीं।

फर्नीचर एवं फिक्चर

(Furniture and Fixture)

1. **अस्तित्व (Existence)**: इनका भौतिक निरीक्षण करना चाहिए और फर्नीचर रजिस्टार से फर्नीचर का मिलान करना चाहिए।
2. **स्वामित्व (Ownership)**: यदि यह सम्पत्ति किराये पर या पट्टे पर खरीदी जाए तो उससे सम्बन्धित प्रलेखों से उसके स्वामित्व की जाँच करनी चाहिए। अन्य दशाओं में विक्रेता के बीजक से जाँच की जा सकती है।
3. **लाभगत खर्चे (Revenue Expenditure)**: मरम्मत व नवनिर्माण किए गये लाभगत (Revenue) होते हैं।

4. **प्रभार (Charge)**: यदि इन वस्तुओ को बन्धक रखकर कोई ऋण लिया गया है तो उसकी जाँच बन्धक रखने वाले के प्रमाण–पत्र से करनी चाहिए।

5. **ह्रास की व्यवस्था (Depreciation)**: अन्य सम्पत्तियों की भाँति फर्नीचर, फिक्सचर तथा फिटिंग्स पर भी ह्रास करना चाहिए।

प्लांट तथा मशीनरी

(Plant and Machinery)

प्लांट तथा मशीनरी का सत्यापन करते समय अंकेक्षक को निम्न विधि प्रयोग में लानी चाहिए:

1. **स्वामित्व की जाँच:** प्लांट तथा मशीनरी के क्रय की जाँच विक्रेताओं से प्राप्त बीजक, रकम भुगतान की रसीद तथा आदेश की प्रतिलिपि से की जानी चाहिए।

2. **प्रभार (Charge)**: यदि व्यापारी ने मशीन व प्लांट को बन्धक रखकर कोई ऋण लिया हो तो अंकेक्षक को इस बारे में पूरी जानकारी चाहिए और गिरवी रखने वाले का प्रमाण–पत्र देखकर ऋण की ब्याज एवं शर्तें देखनी चाहिएं।

3. **अस्तित्व की जाँच (Existence)**: अंकेक्षक को स्वयं जाकर प्लांट तथा मशीनरी का निरीक्षण करना चाहिए जो चिट्ठे में वर्णित है कि वास्तव में संस्था में है या नहीं।

4. **पूँजीगत व लाभगत व्यय**: अंकेक्षक को इस बात की भी जाँच करनी चाहिए कि जब तक प्लांट व मशीनरी काम करना शुरू करती है उस समय तक के समस्त व्यय पूँजीगत होते हैं। कार्य प्रारम्भ करने के बाद के मरम्मत व नवीनीकरण के व्यय लाभगत होते हैं।

5. **परिवर्तन:** यदि वर्ष के दौरान किसी सम्पत्ति को बेचा जाता है तो उस पर होने वाले लाभ और हानि को लाभ–हानि खाते में हस्तांरित कर दिया जाता है तथा प्लांट व मशीनरी की रकम में से बेची गई सम्पत्ति की लागत घटा दी जाती है यदि वर्ष के दौरान कोई नया प्लांट व मशीनरी खरीदी गई हो तो विक्रेता का बीजक व भुगतान की रसीद देखनी चाहिए। यदि सम्पत्ति का विस्तार किया गया हो तो इसे भी पूँजीगत खर्चा माना जाता है।

फुटकर औजार

(Loos Tools)

विभिन्न उत्पादक संस्थाओं में अनेक छोटे–बड़े औजार होते हैं जो दैनिक प्रयोग में आते हैं, इस प्रकार के औजारों को फुटकर औजार कहते हैं। इनका सत्यापन निम्न प्रकार करना चाहिए।

1. **अस्तित्व** – फुटकर औजारों की एक सूची होती है जिसके आधार पर इनकी जाँच करनी चाहिए। खरीदे गए औजारों के सम्बन्ध में विक्रेताओं के बीजक तथा भुगतान की रसीद की जाँच करनी चाहिए यदि आवश्यक हो तो इनकी भौतिक जाँच करनी चाहिए।

2. **मूल्यांकन** – प्रतिवर्ष औजारों का मूल्यांकन पुनर्मूल्यांकन विधि के आधर पर करना चाहिए और पुनर्मूल्यांकन मूल्य को ही स्थिति–विवरण में दिखाया जाता है। वर्ष के प्रारम्भ व अन्त के पुनर्मूल्यांकन के अन्तर को लाभ–हानि खाते से अपलिखित कर दिया जाता है। यदि औजारों का पुनर्मूल्यांकित मूल्य बढ़ जाए जो उसे ध्यान में नहीं रखा जाता है क्योंकि औजार पुनर्बिक्री के उद्देश्य से नहीं खरीदे गए थे।

मोटर वाहन आदि

(Motor and Other Conveyance)

इसके सत्यापन की निम्नलिखित विधि है–

1. **स्वामित्व (Ownership)**: रजिस्ट्री की किताब देखकर यह मालूम करना चाहिए कि इनकी रजिस्ट्री संस्था

के स्वामी नियोक्ता) के नाम में हुई है या नहीं तथा इनकी लाइसेंस फीस चिट्ठे की तिथि तक दी गई है या नहीं।

2. **कीमत तथा अस्तित्व (Price and Existence):** यह अधिक अच्छा होगा कि अंकेक्षक स्वयं मोटरकार के लेखे और उसके नम्बर को रजिस्ट्री किए हुए नम्बर से मिलाए। मोटरकार की हालत देखकर इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

3. **ह्रास (Depreciation):** इन सम्पत्तियों पर ह्रास पर्याप्त मात्रा में काटा जाना चाहिए तथा ह्रास के लिए काफी मात्रा में आयोजन (Provision) भी करना चाहिए। चिट्ठे में इस सम्पत्ति में से ह्रास घटाकर दिखाना चाहिए।

4. **लाभगत व्यय (Revenue Expenses):** इनकी लाइसेंस फीस, बीमा, रोड टैक्स, मरम्मत व नवीकरण आदि सम्बन्धी व्यय लाभगत होते हैं तथा रजिस्ट्रेशन व्यय पूँजीगत होते हैं।

5. **किस्तों पर क्रय (Instalments):** यदि ये सम्पत्तियाँ किस्तों पर खरीदी गयी हों तो क्रेता और विक्रेता के बीच के अनुबन्ध को अंकेक्षक को अवश्य देखना चाहिए।

कापीराइट अथवा कति स्वाम्य

(Copy Right)

पुस्तक या अन्य प्रकाशन को प्रकाशित करने व विक्रय का एकाधिकार कापीराइट कहलाता है। इसकी अविधि लेखक के जीवनकाल व मत्यु के उपरान्त 50 वर्षों तक होती है। अंकेक्षक को इसके सत्यापन के लिए निम्न विधि अपनानी चाहिए–

1. अंकेक्षक को कापीराइट सूची की जाँच करनी चाहिए जिससे लेखक का नाम, मूल्य व अन्य शर्तों इत्यादि की जानकारी होती है।

2. कापीराइट के स्वामित्व की जाँच समझौतों (Agreements) से करनी चाहिए एवं प्रकाशित पुस्तकों की भौतिक जाँच करनी चाहिए।

3. यदि कापीराइट का हस्तांकन हुआ है तो इसकी जाँच लिखित प्रमाण–पत्र देखकर करनी चाहिए।

4. कापीराइट का मूल्यांकन प्रत्येक वर्ष पुर्नमूल्यांकन पद्धति के आधार पर करना चाहिए क्योंकि कापीराइट समय बीतने के साथ बेकार हो जाते हैं। पुस्तक मूल्य व पूर्वमूल्य के अन्तर को लाभ–हानि खाते में अपलिखित कर देना चाहिए। शेष चिट्ठे के सम्पत्ति पक्ष की ओर दिखाना चाहिए। यदि पुर्नमूल्यांकन अधिक होता है तो इस पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

एकस्व

(Patents)

कुछ औद्योगिक संस्थाएँ नई वस्तु का आविष्कार करके उसका रजिस्ट्रेशन कराकर उसे बनाने का एकमात्र अधिकार स्वंय प्राप्त कर लेती है इसे एकस्व कहते हैं इसे बेचा भी जा सकता है।

प्रक्रियाः-

1. **अस्तित्व व स्वामित्वः** इस प्रकार के एकाधिकार प्राप्ति की जाँच सरकार से मिले प्रमाणपत्र से करनी चाहिए। यदि इसका क्रय किया गया है तो इसकी जाँच रजिस्टर्ड समझौते से करनी चाहिए।

2. **लाभगत व्ययः** एकस्व के लिए प्रतिवर्ष शुल्क दिया जाता है। अतः नवःनिर्माण का शुल्क लाभगत व्यय होता है न कि पूँजीगत व्यय। अंकेक्षक को यह देखना चाहिए कि प्रतिवर्ष शुल्क का भुगतान किया जा रहा है या नहीं क्योंकि शुल्क न देने से एकस्व अधिकार समाप्त हो जाते है।

3. **पूँजीगत खर्चेः** यदि नियोक्ता ने एकस्व प्रयोगों तथा प्रयोगशाला द्वारा प्राप्त किया है तो इस प्रकार किए गए समस्त खर्चों का पूँजीकरण कर देना चाहिए।

4. **सूची प्राप्त करना**–अंकेक्षक को चाहिए कि वह नियोक्ता से ऐसी सूची प्राप्त करे जिसमें एकस्वों का पूरा विवरण हो जैसे–रजिस्टर्ड नम्बर, तिथि एवं एकस्वों की अवधि इत्यादि।

5. **मूल्यांकन**–एकस्व की अवधि विधान द्वारा निर्धारित की जाती है अतः उसकी रकम को एक निश्चित अवधि में अपलिखित करना आवश्यक होता है। अंकेक्षक को इस बात का पता लगाना चाहिए कि प्रतिवर्ष कितनी राशि अपलिखित की जानी चाहिए और वास्तव में उतनी राशि अपलिखित किया जा सकता हैं। ऐसी दशा में अंकेक्षक को उन कारणों का पता अवश्य लगाना चाहिए जिसके कारण एकस्व समय से पूर्व अनुपयोगी हो गया।

व्यापार चिन्ह

(Trade Mark)

प्रत्येक उत्पादक अपने माल को अन्य माल पथक करने हेतु इस पर कोई विशेष व्यापार चिन्ह अंकित करता है जिसे व्यापार चिन्ह के एकाधिकार के लिए इसका पंजीकरण कराना अनिवार्य होता है। यह भी एक उद्देश्य सम्पत्ति है जिसे ख्याति की तरह स्थिति–विवरण में दिखाया जाता है। इसका सत्यापन निम्न विधि से करना चाहिए।

1. **अस्तित्व एवं स्वामित्व**–सर्वप्रथम अंकेक्षक को व्यापार चिन्ह सूची देखनी चाहिए जिसमें सभी व्यापारिक चिन्हों का निर्देश होता है और साथ ही पंजीकरण की क्रमसंख्या, तिथि, अवधि तथा फीस आदि बातों का ज्ञान होता है। यदि व्यापार चिन्ह किसी अन्य व्यक्ति को कुछ पगड़ी देकर खरीदा गया है तो उसके भुगतान का प्रमाणन उससे प्राप्त रसीद से करना चाहिए। यदि किसी व्यापार चिन्ह का प्रथम बार रजिस्ट्रेशन कराया गया है तो रजिस्ट्री की फीस की रसीद से उनका मिलान करना चाहिए। पुराने व्यापार चिन्ह का अस्तित्व नवीनीकरण की फीस व प्राप्त रसीद से होता रहता है।

मूल्यांकन-व्यापार चिन्ह का प्रतिवर्ष मूल्यांकन होता है और हानि की रकम को लाभ–हानि खाते से अपलिखित कर दिया जाता है। यदि पुर्नमूल्यांकन से इसकी कीमत बढ़ती है तो उस पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है क्योंकि यह सम्पति बेचने के उद्देश्य से नहीं रखी जाती है। प्रायः व्यापार चिन्ह की अवधि बहुत कम होती है अतः इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अवधि के अन्त तक व्यापार चिन्ह की रकम अपलिखित कर दी गई है या नहीं। नवीनीकरण की फीस को लाभगत मानना चाहिए।

पशुधन

(Live-stock)

बहुत से व्यापारों में पशु–धन को भी सम्पत्ति माना जाता है। इन व्यापारों में इन का बहुत ही अधिक महत्त्व होता है जैसे डेरी में गाय, भैंस, कषि में ऊँट, बैल, भैंस आदि का। उनका सत्यापन निम्न प्रकार करना चाहिए–

1. **अस्तित्व**–प्रत्येक संस्था के पास जानवरों का रिकार्ड रखने के लिए रजिस्टर होता है। प्रत्येक पशु को एक नम्बर दे दिया जाता है। रजिस्टर से प्रत्येक पशु की जाँच करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में जानवरों की एक सूची उत्तरदायी व्यक्ति से ले लेनी चाहिए और उससे जानवरों का मिलान करना चाहिए।
2. **मूल्यांकन**–पशु धन का मूल्यांकन पुर्नमूल्यांकन प्रणाली के आधार पर किया जाता है क्योंकि इनके मूल्य में होने वाली कमी का ठीक प्रकार से अनुमान नहीं लगाया जा सकता ह। यदि पशु–धन अधिक लागत के हों तो मरे हुए पुशओं के मूल्य को कुल मूल्य में से घटाकर लाभ–हानि खाते से अपलिखित कर देना चाहिए। पशुओं के सम्बन्ध में किए गए पूँजीगत व आयगत व्ययों का उचित विभाजन करना चाहिए। अंकेक्षक को पशुओं के उचित मूल्य के सम्बन्ध में विशेषज्ञों से प्रमाणपत्र लेना चाहिए।

स्टोर एवं कलपुर्जे

(Stores and Spares)

सम्पत्ति की इस श्रेणी में ऐसी वस्तुओं एवं सामग्री को सम्मिलित किया जाता है, जो माल के उत्पादन में आवश्यकतानुसार प्रयोग होती है। जैसे–तेल, ग्रीस, रंग, ईंधन इत्यादि। स्टोर एवं कलपूर्जों के सत्यापन के लिए निम्नलिखित विधि अपनानी चाहिए–

1. अंकेक्षक को आवश्यक खातों की जाँच करनी चाहिए और देखना चाहिए कि चिट्ठे में इस सम्पत्ति को अलग से दिखाया गया है या नहीं।

2. इनकी एक प्रामाणिक सूची अधिकारियों से अवश्य प्राप्त कर लेनी चाहिए। इस सूची से स्टोर एवं कलपुर्जों की भौतिक जाँच करनी चाहिए।

3. इस सम्बन्ध में अंकेक्षक को यह ध्यान रखना चाहिए कि खाद्य सामग्री को उत्पादन खातों एवं उपयुक्त कलपुर्जों की भौतिक जाँच करनी चाहिए।

ख्याति

(Goodwill)

ख्याति से अभिप्राय व्यापार की प्रतिष्ठा के मूल्य से है। यह एक अदश्य सम्पत्ति है जिसका व्यापार से अलग होने पर कोई मूल्य नहीं होता है। ख्याति के विषय में विस्तत जानकारी उस समय ज्ञात की जाती है जब फर्म या संस्था में नये साझीदार का प्रवेश हो या पुराने साझीदारों के अवकाश ग्रहण करने पर अथवा जब व्यापार खरीदा जाता है।

ख्याति का सत्यापन निम्न प्रकार से होता है।

1. **अस्तित्व**–यदि ख्याति को क्रय किया गया है तो विक्रयकर्ताओं से समझौते/अनुबन्ध को देखकर ख्याति के मूल्य की जाँच की जाती है। यदि ख्याति किसी साझेदार के प्रवेश अथवा अवकाश के समय उत्पन्न होती है तो उसकी जाँच साझेदारी प्रसंविदे से करनी चाहिए।

2. **अपलिखित (Right off)-** ख्याति को अपलिखित करने कि विषय में संचालकों के द्वारा स्वीकत प्रस्ताव अथवा कम्पनी अन्तर्नियम के प्रावधानों को देखना होगा।

3. **मूल्यांकन**–प्रतिवर्ष ख्याति के मूल्य के एक भाग को अपलिखित कर दिया जाता है और ख्याति के पुस्तक मूल्य में से अपलिखित की गई धनराशि को घटाकर अगले वर्ष का पुस्तक मूल्य ज्ञात किया जाता है। ख्याति का मूल्यांकन पुस्तक मूल्य पर करना चाहिए। इसके अतिरिक्त ख्याति के मूल्य का सत्यापन करते समय अंकेक्षक को उन सिद्धान्तों के औचित्य की भी जाँच करनी चाहिए जिन पर ख्याति का मूल्यांकन होता है।

प्राप्य बिल

(Bills Receivable)

प्राप्य बिलों का सत्यापन निम्न प्रकार करना चाहिएः–

1. **सूची प्राप्त करना**- अंकेक्षक को चाहिए कि वह नियोक्ता से एक सूची प्राप्त करे जिसमें चिट्ठे के दिन समस्त प्राप्य बिलों का विवरण हो। इस सूची का मिलान सामान्य खाता बही से करना चाहिए।

2. **बिलों की जाँच व प्राप्य बिल बही से मिलान**- अंकेक्षक को चाहिए कि वह समस्त बिलों की जाँच करे। उसे देखना चाहिए कि बिल बही में ठीक प्रकार लिखे गए हैं व उन पर आवश्यक टिकट लगाए गए हैं या नहीं। समस्त बिलों का मिलान प्राप्य बिल से करना चाहिए।

3. **बैंक से पूछताछ**- बैंक से उन बिलों के बारे में पूछताछ करनी चाहिए जो बैंक भुना लिये गए हैं और जिनकी परिपक्व तिथि अभी तक नहीं आई है। साथ ही बैंक से यह भी पूछना चाहिए कि इन बिलों पर कोई प्रभार तो नहीं है और यदि है तो किस प्रकार का व किस प्रकति का है।

4. **मूल्यांकन**- प्राप्य बिलों का मूल्यांकन निम्न विधि से करना चाहिएः–
    1. जो बिल अनादर (Dishonour) हो गये हैं उन्हें कुल प्राप्य बिलों की रकम में से घटा देना चाहिए।
    2. सन्देहास्पद बिलों के लिए पर्याप्त आयोजन करना चाहिए।
    3. अवधि से पूर्व भुनाए गए बिलों को जो चिट्ठे की तिथि तक देय नहीं हुए है, सम्भावित दायित्व (Contingent Liability) की तरह चिट्ठे में दिखाना चाहिए।

बैंक में रोकड़

(Cash at Bank)

चिट्ठे के दिन कितनी रकम बैंक में जमा थी, इसका सत्यापन निम्न विधि से करना चाहिएः–

1. **रोकड़ बही की जाँच**–रोकड़ बही की जाँच पास बुक, चैक बुक तथा जमा पुस्तक (Pay-in-slip-Book) से करनी चाहिए।
2. **बैंक से प्रमाण-पत्र**–संस्था का जिन–जिन बैंकों में खाता है उन बैंकों से अंकेक्षक को एक प्रमाण–पत्र करना चाहिए कि चिट्ठे के दिन उन बैंकों में क्या शेष था। यदि संस्था ने विभिन्न खातों में रूपया जमा कर रखा है तो प्रत्येक खाते के सम्बन्ध में प्रमाण–पत्र प्राप्त करना चाहिए।
3. **बैंक समाधान विवरण**–यदि रोकड़ बही के बैंक कॉलम तथा पास बुक के शेष में अन्तर हो तो अंकेक्षक को बैंक समाधान विवरण बनाना चाहिए और कारणों की जाँच करनी चाहिए।
4. **ब्याज का प्रमाणन**–बैंक में जमा रोकड़ पर ब्याज भी मिलता है। अतः जमा रोकड़ की सत्यता का पता ब्याज से भी लगाया जा सकता है।

नकद रोकड़

(Cash in Hand)

इसका सत्यापन अंकेक्षक को निम्न प्रकार से करना चाहिए।

1. चिट्ठे की तिथि को अंकेक्षक को संस्था में उपस्थित होकर रोकड़ की भौतिक जाँच करनी चाहिए। यदि सारी रोकड़ को गिनना सरल न हो तो अंकेक्षक को कम से कम बड़े–बड़े नोटों को अवश्य गिन लेना चाहिए व छोटे नोटों की परीक्षण जाँच कर लेनी चाहिए, परन्तु इस सम्बन्ध में यह नहीं भूलना चाहिए कि यह अंकेक्षक के दायित्व को कम नहीं करता है। बैंक में रखे गए सोने व सिक्कों की जाँच तोलकर करनी चाहिए।
2. यदि व्यवसाय में रोकड़ एक से अधिक स्थानों पर है तो अंकेक्षक को सभी स्थानों से रोकड़ एक साथ मँगवाकर उसकी जाँच रोकड़ियों के सामने करनी चाहिए ताकि एक जगह की रोकड़ की कमी को अन्य स्थानों से मँगवाकर पूरा न करा लिया जाए।
3. डी पॉला के सुझाव के अनुसार अंकेक्षक नियोक्ता को यह आदेश दे, दे कि व्यापार की सारी रोकड़ को बैंक में जमा करा दिया जाए। इससे अंकेक्षक पास बुक देखकर उसकी जाँच कर सकता है।
4. वर्ष के बीच में अंकेक्षक को एक या दो बार आकर रोकड़ की अचानक जाँच करनी चाहिए व उसका मिलान रोकड़ बही से करना चाहिए।
5. अंकेक्षक को फुटकर रोकड़ का भी सत्यापन सावधानी से करना चाहिए क्योंकि लापरवाही की दशा में उसे उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

मार्ग में रोकड़

(Cash in Transit)

कई बार ऐसा होता है कि व्यापार की विभिन्न शाखाएँ वर्ष के अन्तिम दिनों में प्रधान कार्यालय को रोकड़ भेजती हैं। प्रायः मुख्य कार्यालय को रोकड़ प्राप्त होने से पूर्व ही शाखाओं से सूचना (Advice) प्राप्त हो जाती है किन्तु अन्तिम दिन तक रोकड़ नहीं प्राप्त हो पाती ऐसी रकम को 'मार्ग में रोकड़' (Cash in Transit) कहते हैं। इस प्रकार की रोकड़ का सत्यापन निम्न प्रकार से करना चाहिएः–

1. **शाखाओं द्वारा भेजे गए विवरण की जाँच**–चिट्ठे में दिखाई गई इस प्रकार की रकम का सत्यापन शाखाओं द्वारा भेजे गए विवरण से करना चाहिए।

2. **अगले वर्ष के लेनदेनों की जाँच**— यह स्वभाविक है कि वर्ष के अन्तिम दिन तक जो रकम मुख्य कार्यालय को प्राप्त नहीं हुई है वह अगले वर्ष के कुछ दिनों में कार्यालय मे अवश्य प्राप्त होगी। अतः अंकेक्षक को अगले वर्ष के व्यवहारों की जाँच सावधानीपूर्वक करनी चाहिए और यह देखना चाहिए कि जो रोकड़ मार्ग में थी वह प्राप्त हुई है या नहीं।

देनदार

(Debters)

देनदारों का सत्यापन करते समय विशेष सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि इसमें गबन के अवसर अधिक होते हैं। हो सकता है किसी देनदार से रकम प्राप्त हुई हो परन्तु उसे पुस्तकों में न लिखा हो और डूबा ऋण मान लिया हो या हो सकता है कि जितनी रकम देनदारों से प्राप्त हुई है उससे काफी कम रकम पुस्तकों में लिखी हो और बाकी राशि को छूट (Discount) मान लिया हो। इस प्रकार इसमें गबन के अवसर अधिक होते हैं। अतः इसका सत्यापन निम्न प्रकार से करना चाहिएः—

1. **अस्तित्व**—देनदारों के अस्तित्व की जाँच करने के लिए अंकेक्षक को नियोक्ता से एक सूची प्राप्त करनी चाहिए और उसमें दिखाए गए देनदारों का मिलान देनदारों के खातों से करना चाहिए। अंकेक्षक को यह भी देखना चाहिए कि कोई खाता सूची में लिखने से तो नहीं रह गया है। इसके अतिरिक्त सूची का मिलान देनदारों को भेजे गए खाता—विवरण (Statement of Account) की नकलों से भी करना चाहिए। संदेह होने पर देनदारों के अस्तित्व का पता करने के लिए उनमें पत्र—व्यवहार करना चाहिए।
2. **छूट एवं डूबते ऋण की जाँच**— अंकेक्षक को चाहिए कि वह संस्था के छूट देने आदि के नियमों की जाँच करे और साथ में यह भी देखे कि छूट देने का अधिकार किसको है और जो छूट दी गई है वह नियम के अनुसार है या नहीं। उसे यह भी देखना चाहिए कि प्रत्येक छूट पर उत्तरदायी व्यक्ति के हस्ताक्षर हैं या नहीं।
3. **डूबते ऋण आयोजन**— अंकेक्षक को नियोक्ता से ऐसे ऋण की सूची प्राप्त कर लेनी चाहिए जिनके डूबने की संभावना है। इसके अतिरिक्त उन ऋणों की सूची भी प्राप्त करनी चाहिए जिन ऋणों को तीन साल से अधिक हो गए हैं। इस सम्बन्ध मे 'लंदन एवं जनरल बैंक 1895' (London and General Bank 1895) का केस महत्वपूर्ण है। इस केस में अंकेक्षक को इस बात के लिए दोषी ठहराया था कि उसने अपर्याप्त डूबते ऋण आयोजन की सूचना अंशधारियों को नहीं दी थी।
3. यदि कुछ ऋण नकद जमानतों पर दिए गए हैं तो उनकी जाँच करनी चाहिए।
4. चिट्ठे में दिखाना—डूबते ऋणों को चिट्ठे में दिखाना चाहिए।

व्यापारिक रहतियां

(Stock-in-trade)

व्यापारिक रहतिये (Stock) को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. कच्चे माल का रहतिया (Stock in Raw-material)
2. चालू कार्य का रहतिया (Work-in-Progresas)
3. निर्मित माल का रहतिया (Stock in Finished Goods)

(i) ***कच्चे माल का रहतिया***— इसका मूल्यांकन लागत मूल्य पर किया जाता है। इसके सत्यापन के लिए सर्वप्रथम सूची की मांग करनी चाहिए जिसमें दिए गए विवरण की जाँच स्टॉक तथा अन्य खातों से करनी चाहिए।

(ii) ***चालू कार्य का रहतिया***— संस्था मे कुछ माल ऐसा भी होता है जो कच्चे माल की दशा से ऊपर किन्तु निर्मित माल की दशा से कुछ नीचे होता है। इसको चालू माल या अर्द्धनिर्मित माल कहते हैं। कम्पनी अधिनियम 1960 के अनुसार इसको चिट्ठे में सम्पत्ति पक्ष में दिखाया जाता है। इसको सदैव लागत मूल्य पर दिखाना चाहिए।

(iii) ***निर्मित माल का रहतिया***—इसका मूल्यांकन इस प्रकार करना चाहिए—

(अ) वर्ष के अन्तिम दिन बचे हुए माल की एक सूची बनानी चाहिए जिसका मिलान माल खाते से करना चाहिए।

(ब) इस प्रकार के माल का मूल्यांकन साधारण रूप से लागत मूल्य पर किया जाता है।

स्टॉक सत्यापन व सामान्य नियम

अंकेक्षक की रहतिये के सत्यापन के सम्बन्ध में निम्नलिखित जाँच करनी चाहिए–

1. संस्था में आन्तरिक निरीक्षण प्रणाली प्रचलित है या नहीं तथा उस पर कितना विश्वास किया जा सकता है।
2. माल खाते का रहतिये से मिलान करना चाहिए।
3. रहतिये का मूल्यांकन किसी उत्तरदायी अधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए व रहतिया सूचियाँ बनाने वाले कर्मचारियों के रहतिया सूची पर हस्ताक्षर देख लेने चाहिए।
4. रहतिया सूचियों का मिलान लेखे से करना चाहिए। अन्तर की दशा में पूछताछ करनी चाहिए।
5. रहतिया सूचियों का मिलान पिछले वर्ष की सूचियों से अवश्य करना चाहिए और उनमें कमी या वद्वि की जाँच करनी चाहिए।
6. रहतिया सूचियों का मिलान रहतिया पुस्तक से करना चाहिए।
7. रहतिया सूचियों की गणनाओं की जाँच करनी चाहिए।
8. पुराने व अप्रचलित रहतिया के मूल्याकंन के आधार की भी जाँच करनी चाहिए और देखना चाहिए कि इसके सिद्धातों को ध्यान में रखा गया है या नहीं।
9. क्रय–विक्रय की सूचनाओं से रहतिया की मात्रा का सत्यापन करना चाहिए।
10. इस सम्बन्ध में अंकेक्षक को ध्यान रखना चाहिए कि कहीं स्वीकति या वापसी पर आए माल को स्टॉक में सम्मिलित तो नहीं कर लिया गया है। इस माल को रहतिया से अलग रखना चाहिए।

दायित्वों का सत्यापन
(Verification of Liabilities)

1. **बैंक अधिविकर्ष (Bank overdraft):** अंकेक्षक को बैंक अधिविकर्ष का सत्यापन करने के लिए–बैंक अधिविकर्ष की बाकी एवं उस पर देय ब्याज के प्रमाणन के लिए बैंक से प्राप्त पुष्टिकरण–पत्र, रोकड़ बही एवं पास–बुक की जाँच करनी चाहिए।
2. **पूँजी-व्यय के लेनदार (Creditors for Capital Expenditure):** पूँजी व्यय के लेनदारों के सत्यापन के लिए इस सन्दर्भ में हुए पत्र–व्यवहार की ध्यान से जाँच करनी चाहिए। सम्पत्तियों में हुई वास्तविक खातों की जाँच अंकेक्षक को करनी चाहिए। पूँजी व्यय के सत्यापन के लिए रोकड़ बही की प्रविष्टियों की जाँच करनी चाहिए।
3. **लेनदार (Creditors):** चिट्ठे में वर्णित लेनदारों का सत्यापन निम्नलिखित विधि से करना चाहिए–
   1. लेनदारों की सूची अधिकारियों से प्राप्त करे जिसका सत्यापन व्यक्तिगत खाता बही के लेखों से करें। इस सूची की जाँच भी बीजक बही, आर्डर बुक तथा माल भीतरी पुस्तक (Goods Inward Books) से करनी चाहिए।
   2. यदि आवश्यक हो तो सम्बन्धित लेनदारों से पत्र–व्यवहार करना चाहिए।
   3. वर्ष के अन्त में प्राप्त हिसाब की जाँच करके उसका मिलान लेनदारों के खातों के बाकी (Balance) से करना चाहिए।
   4. खरीद की सत्यता के लिए इसके सकल लाभ के प्रतिशत को गत वर्ष के सकल लाभ से मिलाना चाहिए
4. **ऋण-पत्र (Debentures):** ऋण–पत्रों का सत्यापन करते समय निम्नलिखित विधि अपनानी चाहिए।

1. सर्वप्रथम अंकेक्षक को पार्षद् सीमानियम एवं सीमानियम एवं पार्षद् अन्तर्नियम का अध्ययन करके वह सीमा ज्ञात करनी चाहिए जहाँ तक कम्पनी ऋण ले सकती है। इसके बाद देखना यह है कि ऋण–पत्रों का निर्गमन इस सीमा के अन्दर किया गया है या नहीं। साथ ही कम्पनी अधिनियम की धारा 293 (2)(D)का ध्यान रखा गया है या नहीं।
2. ऋण–पत्र प्रलेख (Debenture Trust Deed) की प्रतिलिपि की जाँच करनी चाहिए और इसकी जाँच ऋण–पत्र खाते से करनी चाहिए। आवश्यकता के समय अंकेक्षक ऋण–पत्रधारियों से प्रमाण–पत्र प्राप्त करके इनका सत्यापन करे।
3. कभी–कभी ऋण–पत्रों का निर्गमन प्रीमियम पर या कटौती पर किया जाता है। अंकेक्षक को यह देखना चाहिए कि इसका लेखा पुस्तकों में किया गया है या नहीं।
4. यदि ऋण–पत्रों को कटौती पर निर्गमन किया गया है तो अंकेक्षक को यह देखना चाहिए कि ऋण–पत्रों को चिट्ठे में सम–मूल्य पर दिखाया जा रहा है या नहीं।
5. यदि ऋण–पत्रों को प्रीमियम पर निर्गमित किया गया है तो अंकेक्षक को यह देखना चाहिए कि कहीं इस राशि को लाभांश के रूप में तो नहीं बाँटा जा रहा है।
6. कम्पनी ने किसी कोष का निर्माण किया है तो उसकी उपयुक्तता के सम्बन्ध में अंकेक्षक को पार्षद् अन्तर्नियम की धाराओं की व्यवस्थाओं को देख लेना चाहिए।

5. **देय बिल (Bills Payable)**

(i) ***सूची प्राप्त करना***– अंकेक्षक को चाहिए कि वह नियोक्ता से समस्त देय–पत्रों के सम्बन्ध में एक सूची प्राप्त करें और उस सूची की जाँच देय बिल बही (Bills Payable Book) तथा देय–बिल खाते से करे।

(ii) ***भुगतान किए गए बिलों की जाँच***–व्यवसायी जिन–जिन बिलों का भुगतान कर देता है वे बिल उसके पास वापिस आ जाते हैं। अतः देय–बिल राशि की जाँच उन वापिस किए हुए बिलों को देखकर ही की जा सकती है। साथ ही इस प्रकार के बिलों का मिलान रोकड़ बही या बैंक पास बुक से करना चाहिए।

(iii) ***चिट्ठे के बाद के लेखों की जाँच***–अंकेक्षक को चिट्ठे की तिथि के बाद कुछ सप्ताह के लेखों की जो रोकड़ बही में लिखे गए हैं, जाँच इस उद्देश्य हेतु करनी चाहिए कि कहीं ऐसे बिलों का भुगतान नहीं किया हैं जिनको चिट्ठे की तिथि न दिखाया गया हो। संदेह होने पर अंकेक्षक को चाहिए कि वह बिल के लेखकों से पत्र–व्यवहार करके सही राशि का पता लगाए।

(iv) ***बिल का नवीकरण***– यदि किसी बिल का नवीकरण हुआ है और इस सम्बन्ध में यदि लेखापाल को कुछ ब्याज अथवा निरकाई व्यय (Noting Charges) करने पड़े हों तो अंकेक्षक को देखना चाहिए कि इस प्रकार के खर्चो को लाभ–हानि खाते में दिखाया गया है या नहीं। यदि बिल के सम्बन्ध में कोई कमीशन चुकाया गया है तो उसे भी लाभ–हानि खाते में दिखाना चाहिए।

6. ऋण (Loans): ऋण के अन्तर्गत वे समस्त रकमें आती हैं जो व्यवसाय में व्यवसाय को चलाने हेतु उधार ली जाती हैं। ऋण का सत्यापन करते समय निम्न बातों का विशेष ध्यान रहना चाहिएः–

(i) **समझौते की जाँच**–अंकेक्षक को वे समस्त ऋण सम्बन्धी समझौते देखने चाहिए जो ऋण देने वाले व्यक्ति तथा व्यवसाय के बीच हुए हों साथ ही समझौते की शर्तों को ध्यानपूर्वक देना चाहिए।

(ii) **बन्धक की जाँच**–यदि कम्पनी के अन्तर्गत कोई ऋण किन्हीं सम्पत्तियों की जमानत पर लिया गया है तो अंकेक्षक को बन्धक रजिस्टर की जाँच करनी चाहिए और यह देखना चाहिए कि उसमें समस्त प्रविष्टियाँ की गई हैं या नहीं। साथ ही उसे बन्धक रखी गई सम्पत्तियों की भी जाँच करनी चाहिए।

(iii) **लाभगत खर्च**–ऋणों पर दिया जाने वाला ब्याज लाभगत प्रकति का होता है और उसे लाभ–हानि खाते में दिखाया जाना चाहिए। ब्याज के भुगतान का प्रमाणन करने से ऋण की विद्यमानता सिद्ध हो जाती है। अंकेक्षक को यह भी मालूम करना चाहिए कि ब्याज कब–कब देय है और जो ब्याज अभी तक नहीं चुकाया गया है उसे चिट्ठे के दायित्व के पक्ष में लिखा गया है या नहीं।

7. अदत्त व्यय(Outstanding Expenses): अदत्त व्यय के सत्यापन के लिए अंकेक्षक को निम्न विधि का प्रयोग करना चाहिए–

(i) सभी अदत्त व्यय (Outstanding Expenses) जिनका चिट्ठे की तिथि तक भुगतान नहीं किया गया है, लिख लिए गये है और इनकी जाँच नाममात्र खातों (Nominal Accounts), मांग नोट (Demand Note), बिल्स और रसीदों से करनी चाहिए।

(ii) इस वर्ष के अदत्त व्यय पिछली वर्षों के अदत्त व्यय से तुलना करनी चाहिए।

(iii) प्रत्येक प्रकार के दायित्व के लिए उत्तरदायी अधिकारी से प्रमाण प्राप्त करना चाहिए।

(iv) अंकेक्षक को तकनीकी विशेषताओं के आधार पर यह अनुमान लगाना चाहिए कि कौन–कौन से खर्चे अदत्त हो सकते हैं।

(v) जो खर्चे कभी–कभी किए जाते हैं अगली अवधि के बीजकों से करनी चाहिए।

8. सम्भव्य दायित्व अथवा संदिग्ध दायित्व (Contingent Liability): सम्भाव्य या दायित्व से आशय ऐसे दायित्वों से है जो चिट्ठे के दिन नहीं होते और जिनका होना न होना भविष्य में भी निश्चित नहीं होता। यदि भविष्य में कोई घटना हो जाए, तो ऐसे दायित्व उत्पन्न हो सकते हैं और उनका भुगतान कम्पनी को करना पड़ सकता है। यदि घटना भविष्य में घटित नहीं हो तो दायित्व उत्पन्न नहीं होगा। इस प्रकार दायित्व के पैदा होने और न होने के बारे में संदिग्धता (Contingency) रहती है और इसलिए इन्हें संदिग्ध दायित्व (Contingent Liability) कहते हैं। ये संदिग्ध दायित्व चिट्ठे में नहीं जाते हैं।

विधिः

1. **सूची प्राप्त करना**– सम्भव दायित्वों के लिए नियोक्ता से एक सूची प्राप्त करनी चाहिए और फिर उन सभी कारणों की जाँच करनी चाहिये। जिसके कारण ये दायित्व सम्भाव्य हुए हैं।

2. **प्रर्याप्त आयोजन की जाँच**–अंकेक्षक को सम्भाव्य दायित्वों की सूची प्राप्त करने के बाद इस बात की जाँच करनी चाहिए कि प्रत्येक दायित्व के लिए जो आयोजन किया गया है वह पर्याप्त है या नहीं। उसे आयोजन की पर्याप्तता के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट में भी वर्णन करना चाहिए।

3. **संचयी**–पूर्वाधिकार अंशों के लाभांश की दायित्व सम्बन्धी जाँच–संचयी–पूर्वाधिकारी अंशों पर दिए जाने वाले लाभांश के सम्बन्ध में संचालक मंडल की कार्य–वाहक पुस्तक से जाँच करनी चाहिए।

4. **विवादों के सम्बन्ध में दायित्व**–व्यवसायी के विरूद्ध चल रहे मुकदमों के सम्बन्ध में व्यवसायी के वकील से जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

5. **भुनाये गए बिलों के सम्बन्ध में दायित्व**– जो बिल बैंक से भुनाए गए हैं और जिनकी दायित्व तिथि अभी तक नहीं आई है उनकी जाँच बैंक से प्राप्त विवरण से करनी चाहिए।

अध्याय-15
कम्पनी अंकेक्षण
(Company Audit)

कम्पनी का अंकेक्षण करने के लिए विशेष वैधानिक नियम होते हैं, जिनका जानना आवश्यक है। कम्पनी के कार्य संचालन के लिए कम्पनी अधिनियम, 1956 महत्त्वपूर्ण है। भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 के कई संशोधन लिए जा चुके हैं। कम्पनी के अंकेक्षण का नियमन प्रमुख रूप से इसी अधिनियम द्वारा होता है। इसका अध्ययन किए बिना कोई भी अंकेक्षक कम्पनी खातों का सफल अंकेक्षण नहीं कर सकता।

अंकेक्षण से पूर्व की तैयारी
(Preliminaries before Starting Audit)

अंकेक्षण से पहले अंकक्षेक को निम्नलिखित सूचनाएँ प्राप्त कर लेनी चाहिए–

1. क्या अंकेक्षक की नियुक्ति नियमानुसार है।
2. कम्पनी की प्रकति का ज्ञान प्राप्त करना।
3. कम्पनी प्रपत्रों, पुस्तकों तथा रजिस्ट्रारों का निरीक्षण।
4. पिछले वर्ष के चिट्ठा और अंकेक्षण की रिपोर्ट की जाँच करना।
5. कम्पनी अधिकारियों एवं उनके द्वारा लिखी गई पुस्तकों की सूची माँगना।
6. आंतरिक जाँच के सम्बन्ध में लिखित विवरण माँगना।
7. व्यापार के प्रारम्भ तथा समामेलन के प्रमाण–पत्र का निरीक्षण करना।

पार्षद् सीमानियम
(Memorandum of Association)

पार्षद् सीमानियम कम्पनी का महत्त्वपूर्ण प्रलेख होता है कुछ विद्धान इस प्रलेख को कम्पनी का 'जीवनदाता प्रलेख' के नाम से पुकारते हैं, क्योंकि यह प्रलेख कम्पनी के उद्देश्यों को परिभाषित करता है और कम्पनी के अधिकार क्षेत्र को निश्चित करता है। इस प्रलेख के बिना किसी भी कम्पनी का पंजीकरण सम्भव नहीं है। इस प्रलेख में 6 वाक्य (Clauses) होते हैं–(1) नाम वाक्य, (2) स्थान वाक्य, (3) उद्देश्य वाक्य, (4) दायित्व वाक्य, (5) पूँजी वाक्य, तथा (6) हस्ताक्षर वाक्य। इन वाक्यों में से अंकेक्षक के लिए उद्देश्य वाक्य (Object clause) तथा पूँजी वाक्य (Capital clause) बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

पार्षद् सीमा नियम और अंकेक्षक के कर्त्तव्य

अंकेक्षक को निम्नलिखित बातों के लिए पार्षद सीमा नियम की जाँच करनी चाहिएः–

1. पार्षद् सीमा नियम को ध्यानपूर्वक देखें और उद्देश्य–वाक्य की ओर विशेष रूप से ध्यान दें। उसे देखना चाहिए कि कम्पनी जो कार्य कर रही है वह सीमा नियम द्वारा अधिकत है या नहीं।

2. पूँजी सम्बन्धी नियमों का पालन उचित रूप से किया गया है या नहीं। कहीं प्राप्त पूँजी की राशि अधिकत पूँजी की राशि से अधिक तो नहीं है।

3. यदि नियमानुसार अधिकत पूँजी में वद्धि की गई है, तो सम्बन्धित प्रस्ताव की नकल प्राप्त करनी चाहिए।

4. अंकेक्षक को यह देखना चाहिए यदि पार्षद सीमा नियम में कोई परिवर्तन (जो अधिक आसान नहीं है) किया गया है, तो ऐसा करने में धारा 17 में दिए गए नियमों का पालन किया गया है अथवा नहीं।

पार्षद् अन्तर्नियम
(Article of Association)

यह कम्पनी का दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रलेख है। यदि कम्पनी अपने 'अन्तर्नियम' नहीं बनाती है, तब कम्पनी को कम्पनी अधिनियम की सारण 'अ' (Table 'A') में दिए गए नियमों का पालन करना होता है। ये कम्पनी के वे नियम हैं, जो कि कम्पनी की आन्तरिक व्यवस्था को नियन्त्रित करने के लिए बनाए जाते हैं। कम्पनी के सीमा नियम तो उसके कार्य–क्षेत्र को निर्धारित करते हैं और अन्तर्नियम यह बताते हैं कि उस सीमा के भीतर अमुक कार्य किया जाए, आन्तरिक प्रबन्ध एवं व्यवस्था किस प्रकार होनी चाहिए तथा कम्पनी के विभिन्न पक्षकारों, अंशधारियों, ऋण–पत्रधारियों, आदि के अधिकार क्या हैं।

पार्षद् अन्तर्नियम और अंकेक्षक के कर्त्तव्य

पार्षद् अन्तर्नियम के सम्बन्ध में अंकेक्षक के निम्नलिखित कर्त्तव्य हैं:–

(i) **अन्तर्नियमों का अध्ययन करना**–कम्पनी का अंकेक्षण आरम्भ करने से पूर्व अन्तर्नियमों का बहुत ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। पार्षद अन्तर्नियम के द्वारा अंकेक्षक के कर्त्तव्यों को सीमित नहीं किया जा सकता और न किसी त्रुटि के सम्बन्ध में ही उसको उत्तरदायित्व से मुक्त किया जा सकता है, यदि किसी कम्पनी के अन्तर्नियम में ऐसा कोई वाक्य है तो व्यर्थ होगा।

(ii) **विशेष नियमों का अध्ययन करना**–अंकेक्षक को अन्तर्नियमों के विविध नियमों का अध्ययन तो करना ही चाहिए, साथ–साथ कुछ विशिष्ट नियमों का विशेष रूप से अध्ययन करना चाहिए, जैसे–अंशधारियों के अधिकार, अंशों का निर्गमन, पूँजी का परिवर्तन, प्रबन्धकीय पारिश्रमिक, ऋण लेने के अधिकार, लाभांश तथा संचय; अंशों का अभिगोपन अंशों का हरण करना; सदस्यों को मत देने के अधिकार आदि।

(iii) **अन्तर्नियम में परिवर्तन की वैधानिकता देखना**–धारा 31 के अनुसार पार्षद अन्तर्नियमों में एक विशेष प्रस्ताव पारित करके परिवर्तन सम्भव है। यदि यह परिवर्तन एक सार्वजनिक कम्पनी (Public Co.) को निजी कम्पनी (Private Co.) में बदलने से सम्बन्धित है, तो यह तब तक कार्यशील न होगा, जब तक सरकार की अनुमति न प्राप्त कर ली गयी हो। अंकेक्षक को यह देखना चाहिए कि जो भी परिवर्तन किए गए हैं उनमें धारा 31 का उल्लंघन तो नहीं किया गया है।

(iv) **सारणी 'अ' का अध्ययन**–यदि अन्तर्नियमों के स्थान पर कम्पनी ने सारणी 'अ' का प्रयोग किया है तो अंकेक्षक को चाहिए कि वह सारणी 'अ' का गहन अध्ययन कर ले।

प्रविवरण
(Prospectus)

कम्पनी अधिनियम की धारा 2 (36) के अनुसार, 'प्रविवरण से आशय से आशय ऐसे किसी भी प्रलेख से है जोकि प्रविवरण के रूप में वर्णित या निर्गमित हो। प्रविवरण की परिभाषा के अन्तर्गत ऐसा कोई भी नोटिस, परिपत्र; विज्ञापन अथवा अन्य प्रपत्र सम्मिलित है, जिसके द्वारा कम्पनी अंशों अथवा ऋण–पत्रों के क्रय के लिए जनता को आमन्त्रित करती है।

प्रविवरण और अंकेक्षक के कर्त्तव्य– यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रपत्र होता है, क्योंकि जनता इसके आधार पर ही अंश खरीदती है, अतः अंकेक्षक को इसे सावधानी से अध्ययन करके उसमें निम्नलिखित बातें नोट करनी चाहिएँ–

(i) अभिदान (Subscription) के लिए अर्पित पूँजी की राशि, विभिन्न प्रकार के अंश और उनके अधिकार।

(ii) निर्गमन की शर्तें, प्रार्थना और आबंटन पर देय राशियाँ और भविष्य की याचनाओं (calls) पर दी जाने वाली राशि।

(iii) न्यूनतम अभिदान (Minimum Subscription) की धनराशि।

(iv) विक्रेताओं (Vendors) के साथ प्रविष्ट हुए किसी अनुबन्ध के विवरण।

(v) अंशों पर कमीशन के लिए देय धन राशि।

(vi) प्रारम्भिक व्ययों (Preliminary Expenses) की राशि या अनुमानित राशि।

(vii) संचालकों की योग्यता, पारिश्रमिक तथा कर्त्तव्य।

(viii) सैक्रेट्रीज एवं ट्रेजरार्स की नियुक्ति एवं पारिश्रमिक।

(ix) कम्पनी द्वारा किसी विशेष अनुबन्ध (Material Contract) के विवरण।

अंश-पूँजी सम्बन्धी व्यवहारों का अंकेक्षण

(Audit of Share Capital Transactions)

किसी नवनिर्मित (Newly formed) कम्पनी के अंश–पूँजी सम्बन्धी व्यवहारों का अंकेक्षण करने के लिए उन्हें दो भागों में बाँटा जा सकता है–

1. नकद रोकड़ के लिए निर्गमित अंश (Shares issued for cash)
2. नकद रोकड़ के अलावा प्रतिफल के लिए निर्गमित अंश (Shares issued for consideration other than cash)

नकद रोकड़ के लिए निर्गमित अंशों के सम्बन्ध में अंकेक्षक का दायित्व

(Auditor's Duty Regarding Shares Issued for Cash)

1. अंशों के लिए प्रार्थना–पत्रों और आबंटन–पत्रों (Allotment Letters) की प्रतिलिपियों से प्रार्थना–पत्रों और आबंटन पुस्तक (Application and Allotment Book) से जाँच करना चाहिए।
2. अंशों के निर्गमन से सम्बन्धित पुस्तकों की जाँच– (i) प्रार्थना तथा आबंटन पुस्तक, (ii) संचालक सभा की कार्यवाही पुस्तक, (iii) सदस्यों के रजिस्टर आदि से सम्बन्धित प्रक्रिया को किस सीमा तक अपनाया गया है।
3. प्राप्त धनराशि को प्रार्थना–पत्रों से मिलाना।
4. खेद–पत्र की सहायता से रोकड़ बही के लेखों की जाँच करनी चाहिए।
5. यदि कम्पनी ने अंशों को प्रीमियम (अंशों के अंकित मूल्य मूल्य से अधिक कीमत पर विक्रय) पर निर्गमित किया गया है तो अंकेक्षक को यह पता लगाना चाहिए कि प्राप्त प्रीमियम की राशि को अंशों प्रीमियम खाता (Share Premium A/c) में क्रेडिट किया गया है या नहीं।
6. अंकेक्षक को यह जाँच करनी चाहिए कि धारा 75 के आदेशों का पालन किया गया है या नहीं। एक कम्पनी को अंशों का आंबटन करने के एक महीने के अन्दर या रजिस्ट्रार द्वारा निर्धारित समय में 'आबंटन का विवरण' नामक एक रिपोर्ट रजिस्ट्रार को देनी होगी। इसमें निम्नलिखित सूचना सम्मिलित होनी आवश्यक है–

(a) आंबंटित अंशों की क्रम–संख्या और अंकित राशि।

(b) आबंटकियों के नाम, पता व उनका व्यवसाय।

(c) अंशों पर चुकाई गई या चुकाई जाने वाली राशि का विवरण। यदि अंश नकद के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से निर्गमित किए गए हैं तो अनुबन्ध की प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के निरीक्षण के लिए प्रस्तुत करनी चाहिए।

(d) यदि बोनस अंश निर्गमित किए गए हैं तो उनकी संख्या और राशि के बारे में विवरण, आबंटकियों का नाम, पता व उनके व्यवसाय का विवरण है।

(e) यदि अंश बट्टे पर निर्गमित किए गए हैं तो साधारण पुस्तक की प्रतिलिपि तथा कम्पनी कानून आयोग की आज्ञा की प्रतिलिपि इसके साथ लगी होनी चाहिए। यदि बट्टे की दर 10% से अधिक है तो कम्पनी कानून आयोग विशेष परिस्थितियों में ही ऊँची दर स्वीकार करेगा।

यदि कम्पनी अधिनियम के इन प्रावधानों का कोई उल्लंघन करता है तो वह प्रत्येक व्यक्ति, जो इस उल्लंघन के लिए दोषी है, जुर्माने से दण्डित किया जा सकता है।

7. किस्तों की माँग से सम्बन्धित संचालकों की कार्यवाही पुस्तक (Director's Minutes) से पता लगाना चाहिए की यह प्रविवरण और अन्तर्नियमों के आदेशानुसार ही है। माँग पुस्तक (Call Book) को सदस्यों के रजिस्टर के साथ मिलाना चाहिए और किस्तों के विषय में माँगे हुए धन की और प्राप्त धन कि जाँच करनी चाहिए।

8. कुल निर्गमित पूँजी अधिकत पूँजी से अधिक तो नहीं है।

9. अंशों के निर्गमन से सम्बन्धित आर्थिक पुस्तकों की प्रविष्टयों की गहन जाँच करना।

10. यह पता लगाना कि सभी संचालकों ने योग्यता अंश के लिए हैं या नहीं।

नकद रोकड़ के अलावा प्रतिशत के लिए निर्गमित अंश

(Shares Issued for a Consideration other than Cash)

कम्पनी द्वारा आबंटिक किए गए अंशों के वैद्य होने के लिए प्रतिफल (Consideration) होना आवश्यक है। जहाँ अंश नकदी पर देय हैं, अंशधारियों द्वारा चुकाया गया धन आबन्टन के लिए प्रतिफल है। किन्तु कभी–कभी अंशों का आबन्टन नकदी के लिए नहीं, अपितु किसी दूसरे प्रतिफल के लिए होता है, जैसे–व्यक्तियों का संस्थाओं को जिनसे कम्पनी ने या तो कोई सम्पत्ति प्राप्त की हो या जिन्होंने कम्पनी को अपनी सेवाओं को जिनमें कम्पनी ने या तो कोई सम्पत्ति प्राप्त की हो या जिन्होंने कम्पनी को अपनी सेवाएँ दी हैं। नकदी के अतिरिक्त प्रतिफल के लिए अंशों का आबन्टन सत्यापित करने के लिए अंकेक्षक को निम्नलिखित कदम उठाने चाहिएः–

(a) अंश पाने वाले व्यक्ति के साथ अनुबंध की और आबन्टन के सम्बन्ध में संचालकों के कारवाई–विवरण की जाँच की जाए।

(b) यह देखना चाहिए कि अनुबन्धों को आबन्टन के विवरण के साथ रजिस्ट्रार के पास फाइल कर दिया गया है।

(c) उसे चाहिए कि वह आबंटित अंशों की सदस्यों के रजिस्टर के साथ जाँच करे और पुस्तकों में उनकी प्रविष्टियों का प्रमाण न करे।

(d) ऐसे अंशों को चिट्ठे में निर्गमित की गई पूँजी (Issued Capital) के अन्तर्गत एक पथक् शीर्षक देकर दिखाते हैं।

शोध्य पूर्वाधिकारी अंश

(Redeemable Preference Shares)

धारा 80 के अन्तर्गत, अंशों से सीमित दायित्व वाली कम्पनी, यदि उसके अन्तर्नियम ऐसी आज्ञा दें, पूर्वाधिकारी अंश जो कम्पनी की इच्छा पर शोध्य हों, निर्गमित कर सकती है।

शोध्य पूर्वाधिकारी अंश और अंकेक्षक के कर्त्तव्य

(Redeemable Preference Shares and Auditors Duty)

निर्गमन से सम्बन्धित–

1. अंकेक्षक को देखना चाहिए कि उस कम्पनी के अन्तर्नियम इस प्रकार के अंशों के निर्गमन करने का अधिकार प्रदान करते हैं अथवा नहीं।
2. ऐसे अंशों की राशि को चिट्ठे में अलग से प्रदर्शित किया गया है अथवा नहीं। चिट्ठे में शोधन की अवधि व शर्तों का स्पष्ट वर्णन करना चाहिए।
3. निर्गमन का अंकेक्षक को प्रमाणन करना चाहिए और प्राप्त राशि के लिए भी वह आवश्यक खातों का निरीक्षण करें।

शोधन से सम्बन्धित–

1. वह देखे कि शोधन कम्पनी अधिनियम की धारा 80 के अन्तर्गत ठीक–ठीक किया गया है।
2. अंशों के निर्गमन द्वारा शोधन किया गया है तो उसे कार्रवाई–विवरण पुस्तिका तथा अन्तर्नियमों की जाँच करनी चाहिए।
3. शोधन से सम्बन्धित राशि के भुगतान की प्रविष्टियों का प्रमाणन करना चाहिए।

अधिमूल्य पर अंशों का निर्गमन और अंकेक्षक के कर्त्तव्य

(Issue of Shares at Premium and Auditors Duty)

धारा 78 के अधीन, यदि कोई कम्पनी अपने अंशों को अधिमूल्य (Premium) पर निर्गमित करती है तो अंशों पर प्राप्त अधिमूल्य की राशि को 'अंश अधिमूल्य खाते' (Share Premium Account) में हस्तांतरित कर देना चाहिए।

अंकेक्षक के कर्त्तव्य (Duties)

1. **धारा 78 का पालन**–अंकेक्षक यह देखे कि कम्पनी अधिनियम की धारा 78 का पूर्ण रूप से पालन किया गया है या नहीं।
2. **अन्तर्नियमों की जाँच**–कम्पनी के अन्तर्नियमों को भी देखना चाहिए और इस सम्बन्ध में दिए हुए नियमों का पालन हुआ अथवा नहीं।
3. **राशि का उपयोग**– इस राशि को अंश अधिमूल्य खाते में हस्तांतरित किया गया है या नहीं। इसे पूँजीगत लाभ माना जाना चाहिए और पूँजीगत हानियों को अपलिखित करने लिए उपयोग में लाया जाना चाहिए।
4. **रिपोर्ट में लेखा**–अंकेक्षकों को यदि विश्वास हो कि अधिनियम का पालन पूर्णरूपेण नहीं किया गया है, तो उसे इस बात की सूचना निःसंकोच होकर अंशधारियों को देनी चाहिए व अपनी रिपोर्ट में इसका उल्लेख करना चाहिए।

अंशों का बट्टे पर निर्गमन
(Issue fo Shares at Discount)

जब कम्पनी अपने अंशों का निर्गमन उन पर अंकित मूल्य से कम पर करती है तो इसे अंशों का बट्टे पर निर्गमन कहते हैं। अंशों को बट्टे पर निर्गमन करने के सम्बन्ध में यदि कम्पनी अपने अंशों का निर्गमन बट्टे पर करना चाहती है तो इसके लिए कम्पनी कानून आयोग की सहमति प्राप्त करनी होती है। आयोग सहमति उसी समय प्रदान करता है जब वह इस सम्बन्ध में सन्तुष्ट हो जाता है और इस सम्बन्ध में कुछ शर्तों का भी, जिनको वह उचित समझे, उल्लेख किया जा सकता है। यदि इस प्रावधान का उल्लंघन किया गया है तो कम्पनी और दोषी अधिकारी पर 50 रूपए तक का जुर्माना लगाया जा सकता है।– धारा 79

अंकेक्षक के कर्त्तव्य

(Auditor's Duty)

1. सर्वप्रथम अंकेक्षक को देखना चाहिए कि धारा 79 का पालन किया गया है या नहीं।
2. कम्पनी के अन्तर्नियमों का पालन किया गया है या नहीं।
3. अंशों के कटौती लेखों की जाँच करनी चाहिए।
4. कम्पनी ने इस कटौती की राशि को अपलिखित किया है या नहीं। यदि इस राशि को अपलिखित नहीं किया गया है तो इसको चिट्टे में दिखाना चाहिए।
5. यदि अंकेक्षक यह समझता है कि इस सम्बन्ध में धारा 79 का पालन नहीं किया गया है तो इसका उल्लेख अपनी रिपोर्ट में करना चाहिए।

अंशों पर पेशगी-प्राप्ति अथवा पूर्ण प्राप्त माँगें
(Calls in Advance)

भारतीय कम्पनी अधिनियम की धारा 92(1) अनुसार, यदि किसी कम्पनी में अन्तर्नियम आज्ञा दें तो वह किसी सदस्य से अदत्त मांगें; अग्रिम प्राप्त कर सकती है।

अंकेक्षक के कर्त्तव्य (Duties)

1. अंकेक्षक को अन्तर्नियमों का अध्ययन करना चाहिए और इस प्राप्ति के सम्बन्ध में अधिकार तथा देय ब्याज की दर के विषय में पता लगाना चाहिए।
2. याचना पर पेशगी–प्राप्ति की राशि का मिलन, सदस्य रजिस्ट्रर, याचना पर पेशगी–प्राप्ति खाता तथा रोकड़ बही के लेखों से करना चाहिए।
3. पेशगी–प्राप्ति राशि पूँजी का भाग होती, अतः अंकेक्षक को देना चाहिए कि अलग चिट्ठे में दर्शाया गया है या नहीं।

अवशिष्ट याचनाएँ और अंकेक्षक के कर्त्तव्य
(Calls in Arrears and Auditors Duty)

जब कम्पनी के कुछ अंशधारी याचना किया हुआ धन कम्पनी को नहीं देते हैं, तो राशि उनके द्वारा भुगतान होने से रह जाती है उसे अवशिष्ट याचना कहते हैं। यह राशि चिट्ठे में उचित रीति से दिखाई जाती है। प्रायः कम्पनी के अन्तर्नियमों में अवशिष्ट याचना राशि पर ब्याज लेने का अधिकार दिया हुआ रहता है।

अंकेक्षक के कर्त्तव्य (Duties)

1. अंकेक्षक को देखना चाहिए कि अन्तर्नियम में दी गई व्यवस्थाओं का पालन किया गया है अथवा नहीं।
2. अवशिष्ट याचनाओं की एक सूची प्राप्त करके उसका मिलन सदस्य रजिस्टर से करना चाहिए।
3. अवशिष्ट याचना राशि चिट्टे में विधिपूर्वक दिखाई गई है। यह भी देखना चाहिए। यहाँ विधिपूर्वक से आशय है कि अंशधारियों को तीन भागों में बाँटकर उन पर अवशिष्ट याचना की राशि निकालकर चिट्ठे में दिखानी चाहिए, अर्थात् प्रबन्ध अभिकर्ता, सचिव तथा खजांची की जो अवशिष्ट राशि हो वह एक शीर्षक में, संचालकों की अवशिष्ट राशि दूसरे शीर्षक में अन्य अंशधारियों की राशि तीसरी शीर्षक में दिखाई जानी चाहिए। यह सम्पूर्ण राशि पूँजी में से घटाकर दिखाई जाती है।
4. उसे यदि कोई सन्देह हो, तो इसका उल्लेख अपनी रिपोर्ट में अवश्य करना चाहिए।

अंशों का हरण और अंकेक्षण के कर्त्तव्य
(Forfeiture of Shares and Auditors Duty)

जब अंशधारी अवशिष्ट याचना की राशि का भुगतान नहीं करते हैं, तो अन्तर्नियमों में दिए गए नियमों के अनुसार उन अंशधारियों द्वारा प्रार्थना और आबन्टन पर दिया हुआ रूपया कम्पनी द्वारा हरण (Forfeit) कर लिया जाता है। इसी को अंशों का हरण कहते हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि अंशधारी का नाम सदस्य रजिस्टर से हटा दिया जाता है और वह अंश पर चुकाई गई राशि की वापसी का अधिकार खो देता है।

अंकेक्षकों के कर्त्तव्य (Auditor's Duty)

1. अंकेक्षक के कर्त्तव्यों का अध्ययन करना चाहिए। इसके पश्चात् अंकेक्षक को यह पता लगाना चाहिए कि सदस्य को अंश जब्ती के सम्बन्ध में उचित नोटिस दिया गया है या नहीं।
2. इस सम्बध में संचालकों द्वारा स्वीकति प्रस्ताव की जाँच संचालकों की कार्यवाही विवरण पुस्तक से करनी चाहिए।
3. अंशों की जब्ती से सम्बन्धित लेखों की जाँच तथा उसकी सत्यता का पता लगाना चाहिए।
4. अंशों के हरण से प्राप्त राशि को चिट्ठे में एक दायित्व की भाँति ''जब्ती खाते'' (Shares Forfeited Account) में दिखया गया है या नहीं।
5. हरण या जब्ती के सम्बन्ध में लेखा–पुस्तकों में ठीक से प्रविष्टियाँ कर दी गई हैं या नहीं।
6. इस राशि को पूँजी लाभ माना जाता है। अंकेक्षक को यह देखना चाहिए कि अंशों को दुबारा निर्गमित करने के बाद इस खाते में कोई राशि बचती है तो उसका प्रयोग अन्तर्नियमों की व्यवस्थाओं के अनुसार हुआ है या नहीं।

बोनस अंश

(Bonus Shares)

जब कम्पनी के पास इतने अधिक लाभ संचित हो जाते हैं जो कम्पनी की आवश्यकता से अधिक हैं तो कम्पनी इन लाभों का बोनस अंश जारी करके अंश–पूँजी में परिवर्तन कर लेती है।

कम्पनी बोनस अंश का निर्गमन केवल उसी दशा में कर सकती है जब अन्तर्नियम द्वारा अधिकत हो। बोनस अंशों का निर्गमन कम्पनी द्वारा अंशधारियों को बिना किसी भुगतान के किया जाता है। बोनस अंश का जारी होना कम्पनी और अंशधारी दोंनों के लिए ही हितकर है क्योंकि कम्पनी को अंश–पूँजी प्राप्त हो जाती है और अंशधारियों को अंश बिना किसी भुगतान के प्राप्त हो जाते हैं।

अंकेक्षक के कत्तव्य (Auditors Duty)

1. अंकेक्षक को देखना चाहिए कि कम्पनी के अन्तर्नियम बोनस अंश निर्गमन की आज्ञा देते हैं या नहीं।
2. यदि बोनस अंशों के निर्गमन से अंश–पूँजी में वद्धि की गई है तो ऐसा करने के लिए पार्षद् सीमानियम तथा अन्तर्नियम में परिवर्तन करने के लिए प्रस्ताव पास करके रजिस्टर के पास सूचना भेजी गई या नहीं।
3. रिजर्व फण्ड खाता, जर्नल प्रविष्टि, सदस्यों का रजिस्टर तथा पूँजी खाते की जांच करनी चाहिए।

अंशों के हस्तांतरण का अंकेक्षण

(Share Transfer Audit)

यदि कोई अंशधारी किसी कम्पनी के अंश अपने पास नहीं रखना चाहता, तो वह अपने अंशों को दूसरे को बेच सकता है। इस बेचने की क्रिया को अंशों का हस्तांतरण करना कहते हैं। साधारणतया अंशों के हस्तान्तरण का अंकेक्षण आवश्यक नहीं माना जाता है, परन्तु कभी–कभी अंकेक्षण को विशेष रूप से पारिश्रमिक देकर उस हस्तांतरण के अंकेक्षण के लिए कहा जाता है।

अंकेक्षक के कर्त्तव्य (Auditors Duty)

1. संचालकों की सभाओं की कारवाई विवरण–पुस्तिका की जाँच करके यह देखना कि सभी हस्तान्तरण संचालक मंडल से स्वीकत हैं।
2. उसे पुराने अंश प्रमाण–पत्रों को रद्द कर देना चाहिए और नए प्रमाण–पत्रों के प्रतिपर्णों (Counterfoils) विवरणों का सत्यापन (Verification) करना चाहिए।
3. यदि कोई प्रमाण–पत्र किसी खोए या नष्ट किए गए प्रमाण–पत्र के स्थान पर निर्गमित किया गया है तो यह देखना चाहिए कि वह संचालक मण्डल की स्वीकति से निर्गमित किया गया है।
4. यदि बन्धक पर रखे गए अंशों का हस्तान्तरण किया गया हैं, तो यह देखना चाहिए कि सम्बन्धित संस्थाओं को उचित नोटिस दिए चुके हैं।
5. यदि किन्ही अंशधारियों की मत्यु पर या दिवालिएपन के कारण अंशों का पारेषण (Transmission of Shares) किया गया है तो अंकेक्षक को अन्तर्नियम एवं अन्य आवश्यक प्रपत्रों एवं संलेखों की जाँच करनी चाहिए।

अंश प्रमाण-पत्रों का निर्गमन और अंकेक्षण के कर्त्तव्य

(Issue of Share Certificates and Auditors Duty)

अंशों का प्रमाण–पत्रों निर्गमन करने के सम्बन्ध में धारा 113 में निम्न बातों का उल्लेख है–प्रत्येक कम्पनी को अपने अंशों या ऋणों का आबन्टन करने के 3 माह के अन्दर अंश प्रमाण–पत्र बना लेने और सौंपने के लिए तैयार रखने चाहिए। यदि इन अंशों या ऋणपत्रों के हस्तांतरण के रजिस्ट्रेशन के लिए प्रार्थना–पत्र है, तो इस प्रार्थना–पत्र के 2 माह के भीतर प्रमाण–पत्र तैयार कर दिए जाने चाहिए। यह व्यवस्था तब ही लागू होती है जबकि अंशों या ऋणपत्रों के निर्गमन के लिए भिन्न प्रकार के नियम न बन गए हों । कम्पनी या किसी अधिकारी पर, जो इस नियम का उल्लंघन करने का दोषी होगा, 500 रू० प्रतिदिन के हिसाब से जब तक यह दोष चलता रहे, आर्थिक दण्ड हो सकता है।

1. अंश प्रमाण–पत्रों का सदस्य रजिस्टर की प्रविष्टियों में मिलान करना चाहिए। विशेषतः अंशों की संख्या, क्रमांश, मूल्य तथा प्रदत्त राशि का निरीक्षण करना चाहिए।
2. यह देखना चाहिए कि इस सम्बन्ध में धारा 113 का पालन किया गया है अथवा नहीं।

अंश-अधिपत्र का निर्गमन
(Issue of Share Warrant)

भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 114 के अधीन अंशों से सीमित दायित्व वाली कम्पनी केन्द्रीय सरकार की स्वीकति लेकर अपने पूर्णदत्त अंशों के लिए कम्पनी की कॉमनसील के अन्तर्गत अंशों के लिए अधिपत्र (Share Warrant) निर्गमित कर सकती है। उसमें उल्लिखित अंशों का अधिकारी हो जाता है।

अंश–अधिपत्र प्राप्त होने के बाद कोई भी अधिपत्रधारी अपने अंशों का हस्तान्तरण इस अधिपत्र की सुपुर्दगी देकर कर सकता है। इस अधिपत्र के निर्गमन के पश्चात् कम्पनी सदस्यों के रजिस्टर में से अंश अधिपत्रधारी का नाम काट देती है।

अंकेक्षक के कर्त्तव्य (Auditors Duty)

1. सर्वप्रथम अंकेक्षक को देखना चाहिए कि कम्पनी के अन्तर्नियमों में ऐसी आज्ञा दी गई है या नहीं।
2. उसे यह देखना चाहिए कि केन्द्रीय सरकार की अनुमति ली गई है या नहीं।
3. अन्त में अंकेक्षक को देखना चाहिए कि धारा 114 तथा 115 का पालन किया गया है या नहीं।

अंश स्टॉक का निर्गमन/स्टॉक और अंश
(Issue of Share Stock)

अंशों द्वारा सीमित दायित्व वाली कम्पनियाँ पूर्णदत्त अंशों को स्टॉक परिवर्तित कर सकती हैं, यदि कम्पनी की साधारण सभा में प्रस्ताव पास कर लिया गया हो और पार्षद अन्तर्नियम द्वारा ऐसा करने के लिए अधिकार दे दिया गया हो।

जब कम्पनी के अंश स्टॉक में परिवर्तित कर दिए जाते हैं तो अंशों के अंकित मूल्य को ध्यान में रखते हुए उन्हें किसी भी अंश में विभाजित और हस्तान्तरित किया जा सकता है। केवल पूर्वदत्त अंश ही स्टॉक में परिवर्तित किए जा सकते हैं जब अंश स्टॉक में परिवर्तित किए जाते हैं तो इसकी सूचना रजिस्ट्रार को देनी पड़ती है। एक स्टॉकधारी के भी वही अधिकार हैं जो अंशधारी के होते हैं। स्टॉक भी अंशों में परिवर्तित किया जा सकता है। धारा 94 (1)

अंकेक्षक के कर्त्तव्य (Auditors Duty)

1. अंकेक्षक को देखना चाहिए कि अंशों का स्टॉक में परिवर्तन वैधानिक है या नहीं।
2. कम्पनी के पार्षद् सीमानियम और अन्तर्नियम का भी अध्ययन करना चाहिए।
3. कम्पनी द्वारा धारा 94 (1) की सभी व्यवस्थाओं का पालन किया गया है या नहीं।

अभिगोपन
(Underwriting)

जब कुछ व्यक्ति या संस्थाएं कम्पनी को इस बात का आश्वासन देती हैं कि यदि जनता ने उसके निर्गमित अंशों को नहीं खरीदा तो वह उन्हें खरीद लेंगे, यह एक प्रकार से कम्पनी और अंशों को एक मुश्त खरीदने वाले के बीच बीमा होता है। इससे कम्पनी को अंशों की राशि एकत्रित करने में कोई कठिनाई या आपत्ति नहीं होती। ऐसा आश्वासन देने वाले व्यक्ति या संस्था को ''अभिगोपन'' (Underwriter) और इनके इस कार्य को ''अभिगोपन'' (Underwriting) कहते हैं। अभिगोपक (Underwriter) है जो कम्पनी द्वारा निर्गमित अंशों को, यदि जनता ने नहीं खरीदा तो वे स्वंय खरीद लेते हैं।

अभिगोपन कमीशन के सन्दर्भ में अंकेक्षक के कर्त्तव्य-

1. अंकेक्षक को देखना चाहिए कि कमीशन के भुगतान के सम्बन्ध में धारा 76 का पालन हुआ है या नहीं।

2. कम्पनी के अन्तर्नियमों की व्यवस्थाओं को भी देखना चाहिए।
3. अंश निर्गमन मूल्य के 5% या अन्तर्नियमों में निश्चित दर, दोनों में जो कम हो, उससे अधिक कमीशन नहीं दिया जाना चाहिए।
4. ऋण–पत्र की दशा में ऋण–पत्र जारी करने के मूल्य का 2½% या पार्षद् अन्तर्नियम में निर्धारित राशि या दर, दोनों में जो भी कम हो, कमीशन उससे अधिक नहीं होना चाहिए।
5. अंकेक्षक को देखना चाहिए कि कमीशन का भुगतान करने के अनुबन्ध की प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के पास उसी समय दे दी गई है, जब प्रविवरण जारी किया गया था।
6. यह कमीशन व्यापारिक व्यय नहीं है इसलिए इसको धीर–धीरे अपलिखित करना चाहिए और यदि यह अपलिखित नहीं हुआ है तो चिट्टे में दिखाना चाहिए।

पूँजी में से ब्याज का भुगतान

(Payment of Interest out of Capital)

एक साधारण नियम तो यह है कि कोई भी कम्पनी पूँजी से ब्याज का भुगतान नहीं कर सकती। परन्तु भारतीय अधिनियम, 1956 की धारा 208 के अन्तर्गत कम्पनी अपनी पूँजी में से ब्याज का भुगतान कर सकती है। कम्पनी अधिनियम की धारा 208 (1) के अनुसार यदि अंशों का निर्गमन किसी निर्माण कार्य या यन्त्र (Plant) आदि के खर्चों के लिए किया जाता है, जो कि एक लम्बी अवधि तक किसी प्रकार लाभ अर्जित करने योग्य नहीं है, तो कम्पनी अपनी दत्त पूँजी पर ब्याज की अदायगी निर्माण व्यय समझकर कर सकती है।

अंकेक्षक के कर्त्तव्य (Auditor's Duty)

1. सर्वप्रथम अंकेक्षक को यह देखना चाहिए कि धारा 208 का पालन किया गया है या नहीं।
2. कम्पनी के अन्तर्नियमों में दी गई व्यवस्था का पालन किया गया है या नहीं।
3. ब्याज की दर उचित है इसकी विस्तत जाँच करनी चाहिए।
4. संचालकों की कार्यवाही विवरण पुस्तक से स्वीकत प्रस्ताव की जाँच करनी चाहिए।
5. यदि संचालकों ने किसी नियम का उल्लंघन किया है तो इसका उल्लेख अंकेक्षक को अपनी रिपोर्ट में करना चाहिए।

प्रारम्भिक व्यय और अंकेक्षक के कर्त्तव्य

(Preliminary Expenses and Auditors Duty)

प्रारम्भिक व्यय से आशय ऐसे खर्चों से है, जो कि कम्पनी के निर्माण में एवं उसकी प्रारम्भिक अवस्था में किए जाते हैं। ''प्रवर्तन व्यय', 'निर्माण व्यय' अथवा 'संगठन व्यय' प्रारम्भिक व्यय के ही पर्यायवाची शब्द हैं।

1. प्रारम्भिक व्यय का उनसे सम्बन्धित प्रमाणकों से मिलान–करना चाहिए।
2. अंकेक्षक को देखना चाहिए कि उक्त व्यय अपनी सीमा से अधिक तो नहीं किए गए हैं।
3. यदि कम्पनी ने अंशों को प्रीमियम पर निर्गमित किया है तो प्राप्त प्रीमियम राशि से इस व्यय को अपलिखित करना चाहिए।
4. अन्तर्नियमों में यदि इस सम्बन्ध में कुछ निर्देश दिए गए हों तो उनका पालन करना चाहिए।

दलाली और अंकेक्षक के कर्त्तव्य

(Brokerage and Auditors Duty)

कुछ बैंक व दलाल, जो कि अंशों व ऋण–पत्रों को जनता में बेचते हैं, कम्पनी इस सेवा के बदले में उन्हें जो पारिश्रमिक का भुगतान करती है, उसे दलाली (Brokerage) कहते हैं। जो अंशधारी या ऋण–पत्रधारी इन दलालों के द्वारा अंश या ऋणपत्र खरीदते हैं, उनके प्रार्थना–पत्रों पर ये (दलाल या बैंक) अपनी मोहर (Stamp) लगा देते हैं।

अंकेक्षक के कर्त्तव्य (Duties)

1. दलाली के प्रबन्ध में अन्तर्नियमों को देखना कि उसका पालन किया गया है या नहीं।
2. संचालकों की सभा की कार्रवाई विवरण पुस्तिका का निरीक्षण करे।
3. दलाली की राशि के भुगतान का प्रमाणन करने के लिए प्रार्थना–पत्रों की जाँच करनी चाहिए और देखना चाहिए कि इन पर दलालों या बैंको की मोहर लगी है या नहीं।
4. दलाली के सम्बन्ध में की गई प्रविष्टियों की जाँच करें।

समामेलन या कार्यारम्भ से पूर्व लाभ और अंकेक्षक के कर्त्तव्य

(Profits Prior to Incorporation and Auditors Duty)

एक सार्वजनिक कम्पनी कानूनी तौर पर उसी समय व्यापार कर सकती है, जब वह रजिस्ट्रार से व्यापार प्रारम्भ करने का प्रमाण–पत्र प्राप्त कर लेती है। कुछ कम्पनियाँ बनने के पूर्व ही किसी चालू व्यापार को क्रय करके, समामेलन (Incorporation) या व्यापार प्रारम्भ करने (Commencement) के प्रमाण–पत्र लिए बिना ही लाभोपार्जन करती है। यह लाभ 'समामेलन से पूर्व का लाभ' कहलाता है।

अंकेक्षक के कर्त्तव्य

(Duties)

1. अंकेक्षक को इस बात की जाँच करनी चाहिए कि लाभ का विभाजन किस प्रकार किया गया है तथा ऊपर जो सिद्धान्त बनाए गए है उनके अनुसार ही कार्य हुआ है या नहीं।
2. उसे यह भी देखना चाहिए कि ये लाभ अंशधारियों में वितरित न किए जाएँ, क्योंकि वे पूँजीगत लाभ होते हैं। इस विषय पर विभाज्य लाभों वाले अध्याय में सविस्तार प्रकाश डाला गया है।

संचित पूँजी

(Reserve Capital)

धारा 99 के अनुसार एक सीमित कम्पनी, एक प्रस्ताव पास करके किसी विशेष उद्देश्य के लिए न माँगी हुई पूँजी का कुछ भाग संचित कर सकती है। इस पूँजी को संचित या सुरक्षित पूँजी कहते हैं। संचित पूँजी या सुरक्षित पूँजी जनता से माँगी जा सकती है जब तक कि कम्पनी समाप्त (Wound up) नहीं हो जाती। यह कम्पनी के समापन के समय लेनदारों के लिए ही होती है। एक बार जो पूँजी संचित कर ली जाती है, वह साधारण पूँजी में परिवर्तित नहीं की जा सकती जब तक कि न्यायालय की अनुमति न ले ली जाए। संचित पूँजी को कोई दायित्व (Reserve Liability) का नाम भी दिया जाता है। संचित पूँजी का कोई भी हिस्सा ऋणदाताओं के पक्ष में नहीं किया जा सकता।

(i) अंकेक्षक का यह कर्त्तव्य है कि वह इस बात की जाँच करें कि सुरक्षित पूँजी के लिए धारा 99 के प्रावधान का पालन किया गया है या नहीं।

(ii) इसके लिए विशेष प्रस्ताव पास किया गया है या नहीं।

अधिकार अंशों का निर्गमन

(Issue of Right Share)

जब कम्पनी अंश–पूँजी को बढ़ाना चाहती है और अंशों का पुनः निर्गमन करती है तो वह अपने वर्तमान अंशधारियों (Existing shareholders) को उनकी अंश सम्पत्ति के अनुपात में नये अंशों को खरीदने का अधिकार देती है। कम्पनी द्वारा इस सम्बन्ध में विद्यमान अंशधारियों को एक सूचना भेज दी जाती है जिसमें अंशों की संख्या आदि का वर्णन होता है। लेकिन इस प्रकार की सूचना का समय कभी भी 15 दिन से कम नहीं होना चाहिए यदि अंशधारी निर्धारित समय में इस सूचना का कोई उत्तर नहीं देते तो यह मान लिया जाता है कि अंशधारी अंशों का क्रय करने के इच्छुक नहीं है।

इस संदर्भ में अंकेक्षक को निम्नलिखित जाँच करनी चाहिए–

(i) क्या केन्द्रीय सरकार की स्वीकति ली गई तथा अनिवासियों (Non-residents) के लिए रिजर्व बैंक की स्वीकति ली गई।

(ii) इन अंशों के निर्गमन सम्बन्धी प्रस्ताव की जाँच करनी चाहिए।

(iii) प्राप्त आवेदन की जाँच करनी चाहिए।

ऋण पत्र

(Debentures)

साधारण शब्दों में ऋण–पत्र की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि ऋण–पत्र कम्पनी द्वारा निर्गमित एक प्रपत्र है जो कम्पनी द्वारा अपनी सार्व–मुद्रा के अन्तर्गत जारी किया जाता है, जो ऋण लेने के प्रमाण है तथा जिसमें ऋण प्राप्त करने तथा अदा करने की शर्तों का उल्लेख होता है तथा उस तिथि का भी उल्लेख होता है जिस तिथि को ऋण का भुगतान होना होता है।

1. पार्षद सीमा नियम, अन्तर्नियमों तथा साधारण सभा की कार्रवाई सारांश को ऋण लेने के अधिकार हेतु जाँचो।
2. क्या ऋण–पत्रों के आबंटन सम्बन्धी आयोजन पूरे कर लिए गए हैं।
3. जहाँ संचालकों को उधार लेने का अधिकार मिला हो वहाँ पर संचालकों की सभा की कार्यवाही सारांश को ऋण–पत्र निर्गमन करने तथा सम्पत्ति को बन्धक रखने के सम्बन्ध में जाँच करे।
4. जहाँ ऋण–पत्र नकद में निर्गमित किए जाएं वहाँ पर रोकड़ प्राप्ति का प्रमाणन करो लेकिन जहाँ वे किसी अन्य प्रतिफल के लिए निर्गमित हों वहाँ पर उस अनुबन्ध की जाँच करो।
5. ऋण–पत्र प्रन्यास–पत्र (Trust Deed) को या वास्तविक ऋण–पत्रों की परीक्षा करो तथा उसमें निहित शर्तो का पता लगाओ तथा यह देखो कि वे पूरी की जा रही हैं।
6. बनाए गए प्रभार (Charge) को देखो कि वह कम्पनी के प्रभार रजिस्टर में चढ़ाया गया है तथा इस प्रभार से सम्बन्धित विवरण रजिस्ट्रार के पास फाइल होने के लिए भेज दिए गए हैं। रजिस्ट्रार से प्राप्त रजिस्ट्रेशन प्रमाण–पत्र की जाँच करो।

7. यदि ऋण–पत्र की जमानत के लिए निर्गमित किए गए हों तो यह देखो कि उन्हें चिट्ठे में ठीक प्रकार से दिखाया गया है।
8. बाकी ऋण–पत्रों की राशि की ऋण–पत्रधारियों के रजिस्टर के शेषों के साथ मिलान करो।
9. ऋण–पत्र शोधन पर, शोधन की जाँच, रद्द किए हुए ऋण–पत्रों तथा संचालकों की कार्रवाई–सारांश से करो।
10. दिए गए ब्याज तथा देय ब्याज की राशि को जाँचो।
11. यह देखो कि ऋण–पत्रों के सब व्यवहार ठीक प्रकार से पुस्तकों में प्रविष्ट कर लिए गए हैं तथा वे चिट्ठे में भी ठीक प्रकार से दर्शाए गए हैं।

वैधानिक रिपोर्ट

(Statutory Report)

धारा 165 के अनुसार, वैधानिक सभा सार्वजनिक कम्पनी की सबसे पहली एवं महत्त्वपूर्ण सभा होती है और इसके जीवन–काल में केवल एक ही बार बुलाई जाती है। अंशों द्वारा सीमित तथा गारण्टी द्वारा सीमित हर सार्वजनिक कम्पनी, किन्तु अंश–पूँजी रखने वाली कम्पनी द्वारा व्यापार प्रारम्भ करने सम्बन्धी अधिकार प्राप्त करने की तिथि से कम से कम एक महीना बाद व अधिक से अधिक 6 महीन के भीतर, कम्पनी के सदस्यों की ऐसी सभा बुलाई जानी चाहिए। वैधानिक सभा को बुलाने का उद्देश्य वैधानिक रिपोर्ट को पास करना तथा उस पर बहस करना होता है। सभा बुलाए जाने की तिथि से कम से कम से 21 दिन पूर्व संचालक मण्डल द्वारा कम्पनी के प्रत्येक सदस्य को यह वैधानिक रिपोर्ट भेजी जानी चाहिए। ऐसी रिपोर्ट में कम्पनी में कम्पनी के गठन सम्बन्धी सभी पहलुओं की सूचना उल्लिखित होती है।

अंकेक्षक के कर्त्तव्य

(Auditors Duty)

1. अंकेक्षक को इस रिपोर्ट का सत्यापन करने के लिए निम्नलिखित पुस्तकों एवं प्रपत्रों की जाँच करनी पड़ती है–
   (a) पार्षद् सीमानियम तथा पार्षद् अन्तर्नियम
   (b) कम्पनी का विवरण,
   (c) बैंक की पास–बुक तथा रोकड़ बही,
   (d) संचालक सभा की कार्यवाही विवरण पुस्तक,
   (e) विक्रेताओं (Vendors), अभियोजकों तथा दलालों के साथ किए गए अनुबन्ध,
   (f) आवेदन–पत्र, आंबटन रजिस्टर तथा सदस्यों का रजिस्टर
2. अंकेक्षक वैधानिक रिपोर्ट के विषय में निम्नलिखित तीन बातों के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करता है–
   (a) कम्पनी द्वारा अंशों का आबंटन,
   (b) आबंटित अंशों पर प्राप्त धनराशि,
   (c) ऋण–पत्रों, निर्गमन की गहन जाँच करनी चाहिए।

3. अंश–पूँजी निर्गमन की गहन जाँच करनी चाहिए।

4. कम्पनी की सभी प्राप्तियों तथा भुगतानों की जाँच करना।

प्रबन्ध सम्बन्धी पारिश्रमिक का अंकेक्षण

(Audit of Managerial Remuneration)

कम्पनी के प्रबन्ध के अन्तर्गत प्रायः संचालकगण, प्रबन्ध संचालक, प्रबन्ध अभिकर्त्ता सचिव एवं कोषाध्यक्ष आदि आते हैं। अतः इन लोगों की सेवाओं के लिए दिया गया पारिश्रमिक ही 'प्रबन्ध सम्बन्धी पारिश्रमिक' कहलाता है।

प्रबन्ध सम्बन्धी पारिश्रमिक की सर्वाच्च सीमा

धारा 198 के अन्तर्गत, एक सार्वजनिक कम्पनी (अथवा इसकी सहायक निजी कम्पनी) द्वारा अपने संचालकों, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं, सचिव एवं कोषाध्यक्ष अथवा मैनेजर को चुकाया जाने लगा। सभी पारिश्रामिक किसी वित्तीय वर्ष के लिए वर्ष के शुद्ध लाभों के 11% से अधिक नहीं हो सकता। इस आशय के लिए लाभों को संचालकों के पारिश्रमिक घटाने से पूर्व–प्रस्तावित रूप से निकाला जाएगा। शुद्ध लाभ की गणना किस प्रकार की जाएगी, उसका उल्लेख अधिनियम की धाराएँ 349, 350 व 351 में किया गया है।

इस धारा का प्रभाव निम्न पर नहीं पड़ेगाः–

1. यदि कम्पनी एक विशेष प्रस्ताव स्वीकार करे और केन्द्रीय सरकार से भी लोक हित में होने के आधार पर अनुमति मिल जाए, जो प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं को उक्त सीमाओं से (धारा 348 में शुद्ध लाभ की 10% सीमा और धारा 198 में शुद्ध लाभ की 11% सीमा से) अधिक पारिश्रमिक भी दिया जा सकता है।

2. प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं को कम्पनी के क्रय एवं विक्रय प्रतिनिधियों के रूप में दिए जाने वाले कमीशन तथा माल या सेवा की पूर्ति के लिए भुगतानों पर सर्वोच्च सीमा का प्रभाव नहीं पड़ेगाा।

3. संचालकों की सभा (Board Meeting) में सम्मिलित होने के लिए जो पारिश्रमिक संचालकों को धारा 309(2) के अन्तर्गत दिया जाता है, वह 11% की सीमा में सम्मिलित नहीं होगा।

यदि किसी वित्तीय वर्ष में कम्पनी को कोई लाभ न हो अथवा अपर्याप्त लाभ हो तो वह केन्द्रीय सरकार की अनुमति से, अपने प्रबन्धकों जिसमें (i) संचालक तथा (a) प्रबन्ध अभिकर्त्ता, (b) प्रबन्ध संचालक, (c) सचिव तथा कोषाध्यक्ष अथवा (d) प्रबन्धक में से एक हो 50,000 रू. वार्षिक का न्यूनतम पारिश्रमिक कम है तो वह आदेश देकर, उपर्युक्त शर्तों के अधीन, उसमें वद्धि कर सकती है।

कोई भी कम्पनी अपने निजी पदाधिकारी या कर्मचारी को कर–मुक्त पारिश्रमिक नहीं दे सकती।

ऐसे संचालक को (अथवा संचालकों को जब कई संचालक है), जो कम्पनी का पूर्णकालीन (Full Time) या प्रबन्ध संचालक नहीं है और जिसके पारिश्रमिक में कोई भी मासिक भुगतान शामिल नहीं है, कम्पनी विशेष प्रस्ताव द्वारा (जो कि 5 वर्ष तक प्रभावपूर्ण रहेगा, तत्पश्चात् इसके नवीनीकरण की आवश्यकता होगी), निम्न का भुगतान करने की अनुमति दे सकती हैः–

1. यदि कम्पनी का कोई प्रबन्ध व पूर्णकालीन संचालक, प्रबन्ध अभिकर्त्ता और कोषाध्यक्ष या प्रबन्धक है, तो कमीशन कुल राशि, जो कम्पनी के शुद्ध लाभ के 1% से अधिक नहीं हो।

2. अन्य दशा में, कमीशन की राशि, जो कम्पनी के शुद्ध लाभ के 3% से अधिक न हो।

केन्द्रीय सरकार की अनुमति से कम्पनी एक साधारण सभा में उक्त 1% या 3% (जैसी भी परिस्थिति हो उसके

अनुसार) कमीशन से भी अधिक पारिश्रमिक देना स्वीकत कर सकती है। यदि कोई संचालक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अधिक पारिश्रमिक प्राप्त कर लेता है, तो उसे यह अधिक राशि कम्पनी की लौटानी होगी। इस आशय के लिए, शुद्ध लाभ की गणना, धारा 198 के अनुसार होगी। वह संचालक जो कम्पनी से कमीशन प्राप्त करता है और जो कम्पनी का पूर्णकालीन या प्रबन्ध संचालक है, ऐसी कम्पनी की किसी सहायक कम्पनी से कोई कमीशन या अन्त पारिश्रमिक पाने का अधिकारी नहीं होगा।

अंकेक्षक को संचालकगण व प्रबन्धक को दिए गए पारिश्रमिक का प्रमाणन करते समय निम्न बातों को देखना चाहिएः–

1. उक्त सभी व्यक्तियों को दिया गया पारिश्रमिक अधिनियम द्वारा निर्धारित सीमा में है ।
2. शुद्ध लाभ, जिस पर पारिश्रमिक दिया गया है, निर्धारित विधि द्वारा ठीक निकाला गया है।
3. परिश्रमिक को लाभ–हानि खाते में ठीक प्रकार से दर्शाया गया है।
4. कम्पनी के अन्तर्नियमों एवं पक्षकारों के पारिश्रमिक से सम्बन्धित किसी विशेष प्रस्ताव अथवा किसी विशेष अनुबन्ध की शर्तों का भी अध्ययन करे।
5. भुगतान की गई राशि को पक्षकारों की रसीदों से जाँचे और यह देखे कि जो राशि अदत्त रह गई है वह हिसाब में सम्मिलित हो गई या नहीं।
6. यदि पक्षकारों ने पारिश्रमिक का कोई भाग किसी वर्ष छोड़ दिया हो, तो यह देखना चाहिए कि क्या उन्होंने कम्पनी को इस विषय में लिखित सूचना दी है, और क्या यह बात संचालकों की रिपोर्ट में संकेत की गई है।

वार्षिक खातों का अंकेक्षण

(Audit of Annual Accounts)

रिपोर्ट देना

(To give Report)

धारा 226(2) के अन्तर्गत, प्रत्येक अंकेक्षक का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने कार्यकाल में हुई प्रत्येक सामान्य सभा में प्रस्तुत किए जाने वाले अंकेक्षित हिसाब पर और चिट्ठे एवं लाभ–हानि खाते पर तथा उस प्रलेख पर जिसे कम्पनी अधिनियम, 1956 ने चिट्ठे या लाभ–हानि खाते का 'अंग' (Part of) या 'संलग्न किए जाने वाला' (annexed to) घोषित कर दिया है, रिपोर्ट दे।

'अंग' (Part to) या 'संलग्न किया जाने वाला'(annexed to) कोई प्रलेख, ये शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ऐसे विवरण पर, जो चिट्ठे लाभ–हानि खाते से केवल लगा हो (merely attached), रिपोर्ट देना अंकेक्षक के कर्त्तव्यों का भाग नहीं हैं। जैसे, संचालक रिपोर्ट चिट्ठे के साथ लगाई जाती है परन्तु संलग्न नहीं की जाती (is attached to and not annexed to) धारा 222 के अनुसार, वह सूचना, जिसे अधिनियम खातों मे देना आवश्यक होता है और जिसे वह खातों के साथ संलग्न किये जाने वाली किसी विवरण मे देने की अनुमति देता है, खातों के स्थान पर संचालकों की रिपोर्ट में भी दी जा सकती है। यदि सूचना संचालक–रिपोर्ट में दी जाए, तो संचालक रिपोर्ट खातों के साथ संलग्न (annexed) कर दी जाएगी और तब संचालक–रिपोर्ट की ऐसी सूचना पर रिपोर्ट देना अंकेक्षक के लिए आवश्यक होगा।

रिपोर्ट में उल्लेखित बातें

(Facts to be Mentioned in Report)

एक अंकेक्षक को अपनी रिपोर्ट में यह लिखना पड़ता है कि उसके विचार से उसे दी गई सूचनाओं व स्पष्टीकरण

के आधार पर कम्पनी के खाते, अधिनियम के अनुसार वांछनीय सूचना देते हैं तथा कम्पनी के सत्य और उचित विवरण का चित्रण करते हैं। उसे अपनी रिपोर्ट में स्पष्टतः निम्न बातों पर अवश्य प्रकाश डालना चाहिएः–

(i) उसे जिन सूचनाओं और स्पष्टीकरण की आवश्यकता थी वह प्राप्त हुए या नहीं।

(ii) उसकी राय में कम्पनी ने धारा 209 में वर्णित लेखा पुस्तकों रखी हैं या नहीं।

(iii) कम्पनी का चिट्ठा व लाभ–हानि खाता अधिनियम में दिए गए नियमों के अनुरूप ही है या नहीं।

(iv) कम्पनी का चिट्ठा तथा लाभ–हानि खाता कम्पनी का 'सच्चा तथा उचित चित्र' (True and fair view) खींचता है अथवा नहीं।

मर्यादित रिपोर्ट देना

(To give Qualified Report)

अंकेक्षक को यदि इस बात का जरा भी सन्देह है कि कम्पनी का चिट्ठा तथा लाभ–हानि खाता कम्पनी की आर्थिक–स्थिति का वास्तविक रूप में 'सच्चा तथा उचित' चित्र नहीं खींचता, तो उसे निःसंकोच होकर अपनी रिपोर्ट मे उन शंकाओं को व्यक्त कर देना चाहिए। अंकेक्षक की ऐसी रिपोर्ट ही 'मर्यादित रिपोर्ट (Qualified Report) कहलाती है।

रिपोर्ट पर हस्ताक्षर

(To Sign the Report)

धारा 229 के अनुसार अंकेक्षक की रिपोर्ट पर केवल वही व्यक्ति हस्ताक्षर कर सकता है जो कि धारा 224 के अनुसार कम्पनी द्वारा नियुक्त किया गया है, अथवा यदि एक साझेदारी संस्था नियुक्त की गई, तो भारत में व्यवसाय करने वाला ऐसा साझेदार ही केवल अंकेक्षक की रिपोर्ट एवं अन्य प्रलेखों पर हस्ताक्षर कर सकता है या उसे प्रमाणित कर सकता है, जिन पर उसे हस्ताक्षर करने चाहिए या जिसे विधान के अनुसार उसे प्रमाणित करना चाहिए।